औपनिवेशिक विज्ञान बनाम हिंदी में विज्ञान की चिंता

(Colonial Science Vs Concern Regarding Sciences in Hindi)

पीएच.डी (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक

प्रो. ओमप्रकाश सिंह

शोधकर्ता

सुजीत कुमार त्रिपाठी

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नहेरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110067

Dated: 28 /06 /2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **"AUPNIVESHIK VIJNAN BANAM HINDI MEIN VIJNAN KI CHINTA" [COLONIAL SCIENCE VS CONCERN REGARDING SCIENCE IN HINDI]** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Sujit K. Tripathi

SUJIT KUMAR TRIPATHI
Name of Student

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 28 /06 /2022

Certificate

This is to certify that the Mr. **Sujit Kumar Tripathi**, a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled **"AUPNIVESHIK VIJNAN BANAM HINDI MEIN VIJNAN KI CHINTA" [COLONIAL SCIENCE VS CONCERN REGARDING SCIENCE IN HINDI]**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Prof. Omprakash Singh
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

डॉ. ओम प्रकाश सिंह
Dr. Omprakash Singh
प्रोफेसर/Professor
भारतीय भाषा केन्द्र/भा.सा. एवं सं.अ.सं.
Centre for Indian Languages/SLL & CS
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
Jawaharlal Nehru University
नई दिल्ली / New Delhi - 110067

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अध्यक्ष / Chairperson
भारतीय भाषा केन्द्र / CIL
भा. सा. एवं सं. अ. सं. / SLL & CS
ज. ने. वि. / J.N.U
नई दिल्ली / New Delhi-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

आकाशधर्मी पिता की
पुण्य-स्मृति को सादर समर्पित

माँ
जिससे भाषा सीखी
पिता
जिनसे संस्कार
जिनके होने से मैं हूँ,
है मेरा सारा संसार

प्रस्तावना

प्रस्तावना

विषय विशेष के बारे में बोधपूर्ण तथ्यान्वेषण और सूक्ष्मतर विश्लेषणविवेचन और इस प्रकार किए गये विवेचन में नये सिद्धांतों का उद्घाटन तथा उनकी बृहत्तर सामाजिक उपयोगिता स्थापित करना किसी भी अकादमिक स्तर के शोध का परम लक्ष्य होना चाहिए। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्थूल अर्थों में नवीन और विस्मृत तत्वों के अनुसंधान को शोध का प्रमुख उद्देश्य माना है। इस अर्थ में प्रस्तुत शोध प्रबंध जिसका शीर्षक 'औपनिवेशिक विज्ञान बनाम हिंदी में विज्ञान की चिंता' एक सर्वथा विशिष्ट अभिरुचियों को उजागर करने की संभावना से भरा शोध प्रबंध है।

प्राय: शोध की संभावनायें तलाशते हुए, विषय विशेष में किसी समस्या पर विचार कर एक निर्णय पर पहुंचने की अनुकूलता बन जाती है परंतु औपनिवेशिक विज्ञान के बरक्स हिंदी में विज्ञान संबंधी चिंतन पर शोध करते हुए किसी एक निर्णय पर पहुँचना संभव नहीं दिखाई देता। इसका प्रमुख कारण विषय की व्यापकता के साथ उपलब्ध सामग्रियों का सर्वथा अभाव समझा जा सकता है। साहित्य का समाज से संबंध, समाज का विज्ञान से संबंध और फिर साहित्य का विज्ञान से संबंध ऐच्छिक रूप से बदलता रहता है। सत्तातंत्र की विशेष अभिरुचियाँ भी इन संबंधों को गहरे प्रभावित करती हैं। इन सब का समेकित अनुशीलन इस शोध की संभावना और उद्देश्य का प्रमुख अंग माना जा सकता है।

प्रत्यक्ष रूप से इस शोध प्रबंध और निहित विषयानुशीलन का एक प्रारंभिक लक्ष्य हिंदी भाषा-भाषी समाज के विज्ञान विषयक रुझानों को समझना-समझाना भी है। हालांकि इन रुझानों का कोई व्यवस्थित रूप सभी कालखंडों में एक जैसा नहीं जान पड़ता।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय 'औपनिवेशिक विज्ञान बनाम हिंदी में विज्ञान की चिंता' एक गंभीर और सूचनापरक विश्लेषण सम्मत विषय है। गंभीर इस अर्थ में कि इस विषय के साथ समुचित न्याय कर सकने के लिए शोध के बोध का विवेक सम्मत होने के साथ विचार सम्मत भी होना जरूरी है। इस शोध की संभावना, चुनौतियां और लक्ष्य एक भिन्न प्रकार के अवयव से संचालित हैं जिसमें भाषा, विज्ञान और भाषा-विज्ञान, तथा तथ्यों के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक साक्ष्य की जांच पड़ताल शामिल है।

प्राय: हर प्रकार के शोध की अपनी निश्चित विषय-परिधि और अनुशीलन का निश्चित मानदंड हुआ करता है किंतु इस विषय पर शोध करते हुए यह समस्या बार-बार सामने आती रहेगी कि इसकी एक निश्चित परिधि तय कर पाना कदाचित संभव नहीं है, जिसके कारण विषय में बहुआयामी विश्लेषण शामिल करने पड़ेंगे। साहित्य के सभी अंगों यथा पत्रकारिता, जीवनी, दस्तावेज, कविता, निबंध आदि, फिर उनमें विज्ञान लेखन की संभावनाओं की तात्कालिक स्थिति, की भी समीक्षा का विवेचन करना शोध का उद्देश्य रहेगा। इस प्रकार के लेखन का सामाजिक और साहित्यिक महत्व और विशेषत: सत्तातंत्र के शैक्षणिक प्रावधानों और समय-समय पर विज्ञान संबंधी बदलती नीतियों को भी विषय के समुचित विकास के लिए आवश्यक अंग के रूप में शामिल करने की योजना बनाई गई है।

शोध के विषय का चतुर्दिक महत्व का होना और विशेषकर वर्तमान युग के हिंदी भाषी समाज की वैज्ञानिक समझ के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान लेखन की उपयोगिता और अपर्याप्त उपलब्ध विषय-सामग्री एक चुनौती बनकर पूरे क्रम में आते रहेंगे, ऐसी मेरी मान्यता है।

शोध का विषय मौलिक हो सकता है, शोध में प्रयुक्त सामग्री मौलिक हो सकती है परंतु किया गया शोध शुद्ध मानदंडों पर कभी मौलिक नहीं होता। ऐसा दावा करना कि यह शोध नितांत मौलिक है यह इस विषय से संबंधित दूसरे शोध कार्यों को आईना दिखाने जैसा होगा। ईमानदारी से कहूँ ऐसी चेष्टा किसी शोधार्थी को नहीं करनी चाहिए। हाँ, यह सच है कि इस विषय पर मौलिक काम इतना कम है कि उंगलियों पर गिनाया जा सकता है। सम्पूर्ण शोध प्रकिया के दौरान मूलत: मौलिक सामग्रियों पर ही विशेष ध्यान केंद्रित करने के उपक्रम पर विचार किया जाना है।

शोध-प्रबंध के विषय को देखते हुए इसे सुविधाजनक और व्यवस्थित अध्ययन के दृष्टिकोण से तथा अकादमिक रूप देने के लिए अग्रलिखित 6 अध्यायों में विभाजित किया गया है।

अध्यायों का वर्गीकरण विषय के काल-क्रमानुसार विकास को ध्यान में रखकर किया गया है। इन 6 अध्यायों के बाद उपसंहार, चार परिशिष्ट तथा अन्त में सहायक ग्रन्थों/पत्र-पत्रिकाओं की संदर्भ-सूची दी जा रही है।

अध्यायों के क्रम इस प्रकार हैं –

पहला अध्याय - भारत में विज्ञान और प्रौदयोगिकी के इतिहास का विकास

दूसरा अध्याय - हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन - भारतेन्दु – युग

(1850 ई० -1900 ई०)

तीसरा अध्याय - हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन - द्विवेदी - युग

(महावीर प्रसाद द्विवेदी) (1901 ई० - 1920 ई०)

चौथा अध्याय - हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिंतन - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का

योगदान - "विश्व प्रपञ्च की भूमिका के संदर्भ में"

परिशिष्ट के क्रम इस प्रकार हैं-

परिशिष्ट: 1 भारतेन्दु युग में विज्ञान विषयक लेखों / पुस्तकों की सूची।

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

परिशिष्ट: 2 द्विवेदीयुग के विज्ञान विषयक लेखों की सूची 'सरस्वती' के सन्दर्भ में

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

परिशिष्ट:3 द्विवेदीयुग विज्ञान - विषयक पुस्तकों की सूची

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

परिशिष्ट: 4 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्राप्त विज्ञानादि विषयक पुस्तकों की संक्षिप्त सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची को सीधे दो शीर्षकों में बाँटा गया है -

* पुस्तकों की सूची

* पत्र-पत्रिकाओं की सूची

प्रस्तुत विषय की प्रकृति ऐसी है कि संदर्भ-ग्रन्थों की सूची को आधार-ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ (प्राथमिक तथा द्वितीयक) में बाँटना सम्भव नहीं है। विषय-विवेचन के लिए किसी एक ग्रन्थ को आधार-ग्रन्थ नहीं बनाया गया है। हाँ, 'विश्व-प्रपञ्च', 'द रिडिल ऑफ द यूनिवर्स' तथा 'सरस्वती' की फाइलों को अवश्य ही अधिक महत्व दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के तीसरे अध्याय के खण्ड-1 में विषय से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये हैं तथा उनके उत्तर देने का प्रयास किया गया है। ये प्रश्न इस प्रकार हैं-

पहला प्रश्न - आज़ादी से पहले औपनिवेशिक युग में भारत में सामान्य तौर पर विज्ञान के विकास की क्या स्थिति रही है? इस स्थिति के पीछे कौन-कौन से ऐतिहासिक राजनीतिक कारक रहे हैं?

दूसरा प्रश्न - सामाजिक परिवर्तन की किन शक्तियों के दबाव में निजभाषा में विज्ञान विषयक साहित्य का प्रणयन संभव हो सका तथा वे कौन-कौन सी संस्थायें, समितियाँ और विभूतियाँ रहीं जिन्होंने इस परिवर्तन में एक ऊर्ध्वगामी गति का संचार किया?

खण्ड-1 में भारतेन्दु युग की कुछ महत्वपूर्ण विज्ञान विषयक रचनाओं की संक्षिप्त सूची (विस्तृत सूची परिशिष्ट-1 में) तथा उस युग की महत्वपूर्ण विज्ञान विषयक पुस्तक राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' की 'विद्यांकुर' पर एक समीक्षापरक टिप्पणी भी सम्मिलित है।

खण्ड-2 की विषय-वस्तु का निर्माण, मुख्यतः, द्विवेदीयुग में हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन के विकास सम्बन्धी अध्ययन को आधार बनाकर, किया गया है। इस क्रम में सबसे पहले, द्विवेदीयुगीन हिन्दी में विज्ञान विषयक साहित्य से जुड़ी कुछ सामान्य बातें, फिर श्रीधर पाठक सम्पादित एक महत्त्वपर्ण विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान का परिचय' के प्रथमांक में छपे लेख फिर, द्विवेदीयुग में हिन्दी साहित्य और हिन्दी में विज्ञानलेखन से जुड़े लेखकों की समीक्षा की गई है।

इसके बाद विवेचन का मुख्य आकर्षण, द्विवेदीयुगीन प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में विज्ञान-लेखन की स्थिति की जाँच-पड़ताल है। इससे सम्बन्धित विस्तृत सूची परिशिष्ट-2 में सम्मिलित है।

* तीसरे अध्याय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित विश्व-प्रपञ्च की भूमिका तथा उन्नीसवीं सदी के जर्मन प्राणितत्ववेत्ता ई. एच. हैकेल की पुस्तक वाल्टररसेल (Weltrathsel) के जोसेफ मैकबेक कृत अंग्रेजी अनुवाद 'द

रिडिल ऑफ द यूनिवर्स' (The Riddle of the Universe) के हिन्दी अनुवाद 'विश्व प्रपञ्च' पर विशेष ध्यान दिया गया है।

'विश्व प्रपञ्च' (1920 ई), द्विवेदीयुग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। विज्ञान विषय सम्बन्धी आरंभिक से लेकर अधुनातन जानकारी से लैस इस पुस्तक को शोध-प्रबन्ध में विषय विवेचन के लिये शामिल न करने का कोई कारण नहीं दिखता।

'विश्व प्रपञ्च' के जिस संस्करण का उपयोग इस हेतु किया जा रहा है वह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से मनोरंजन पुस्तक माला योजना के अंतर्गत छापा गया 33 वां - 34 वां पुष्प है। यह संयुक्त संस्करण 1962 ई० का है। इससे पहले यह पुस्तक दो खण्डों में 1920 ई० में छपकर पाठकों के सम्मुख आई (सन्दर्भ के लिए देखिए 'विश्व प्रपञ्च' की सुधाकर पाण्डेय लिखित प्रकाशकीय)। पहले-पहल हिन्दी साहित्य में विश्व प्रपञ्च को प्रतिष्ठित करने वाले हिन्दी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा हैं।

शुक्ल जी का विश्व प्रपञ्च दो खण्डों में सन 1920 ई० में प्रकाशित हुआ था। बाद में बहुत दिनों तक वह पुस्तक विस्मृति के अंधकार में खोई रही। उसको याद करने और उसके महत्व को पाठकों के सामने लाने का काम रामविलास शर्मा ने सन 1959 ई० में किया। डॉ० रामविलास शर्मा ने जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पत्ति शास्त्र को नया जीवन दिया। उसी तरह रामचन्द्र शुक्ल के विश्व प्रपञ्च को भी।

विश्व प्रपञ्च पर केन्द्रित इस अध्याय को दो खण्डों में बाँटा गया है। खण्ड-1, 'द रिडिल.....' और उसके अनुवादक जोसेफ मैकबेक तथा लेखक ई. एच. हेकेल पर केंद्रित है तथा खण्ड-2. विशुद्ध रूप से विश्व प्रपञ्च की भूमिका और उसके महत्व पर केंद्रित है।

* अध्याय चार में पांच चुने हुए विज्ञान विषयक लेख शामिल किये गये हैंये लेख या तो सरस्वती से या फिर उसके समानान्तर अन्य पत्रिकाओं यथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' 'विज्ञान' आदि में छपे विज्ञान विषयक लेख हैं। ये लेख इस शोध प्रबन्ध में इसलिए शामिल किये गए हैं ताकि द्विवेदीयुग में विज्ञान - विषयक लेखों में प्रयुक्त भाषा तथा उससे जुड़ी समस्याओं तथा विषय की गम्भीरता की एक झलक जिज्ञासुओं को मिल सके। इन लेखों के चयन का आधार उनमें वर्णित विषय की गम्भीरता और भाषा की कारीगरी है।

इसके अतिरिक्त इन लेखों पर संक्षिप्त टिप्पणी भी साथ ही कर दी गई है ताकि लेख में वर्णित विषय के आशय को सामान्य जिज्ञासुओं को भी समझने में सुविधा हो सके। इन लेखों के आंशिक हिस्से ही नमूने के तौर पर प्रस्तुत किये जा रहें हैं।

लेखों से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण सूचनायें जैसे लेखक का नाम, प्रकाशन स्थल, प्रकाशन वर्ष आदि की जानकारी अध्याय के शुरू में ही दे दी गई है। अध्याय पांच भी द्विवेदीयुग की सामग्री को ही समर्पित है।

1920 ई० से लेकर 1947 ई० के बीच भारत में विज्ञान लेखन से सम्बंधित चिंतन के विकास क्रम को छठे अध्याय का विषय बनाया गया है।

इस प्रस्तावना के माध्यम से मैं यहाँ यह भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि मेरा यह शोध-प्रबंध मुख्यतः सूचनापरक विश्लेषण (Informative Analysis) की प्रकृति का ही है। मैंने पूरे शोध के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि इस प्रबन्ध के माध्यम से लोगों तक द्विवेदीयुग, (1901 ई०-1920 ई०) के संदर्भ में हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन की अधिकाधिक सूचना पहुंचाई जाये।

मैं निवेदन करना चाहूँगा कि मैंने विज्ञान का आशय व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकार के विज्ञान से लिया है। कहने का मतलब यह कि सूचनाओं के क्रम में जहाँ एक ओर भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, कामशास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, आदि विषयों को छुआ गया है वहीं दूसरी ओर लोकोपयोगी विज्ञान जैसे स्वास्थ्य रक्षा, चिकित्साशास्त्र, बाल तथा स्त्री रोग विज्ञान, कताई, बुनाई, अभियान्त्रिकी, कृषिशास्त्र आदि विषयों को भी समान महत्व दिया गया है।

मैं यह भी निवेदन करना चाहूँगा कि पूरे शोध-प्रबन्ध में किसी भी युग विशेष में लेखकों की, संस्थाओं की, पत्र-पत्रिकाओं की नितान्त साहित्यिक गतिविधियों पर कोई विशेष चर्चा करने का कहीं कोई प्रयास नहीं किया गया है। प्रबन्ध को प्रयासपूर्वक केवल विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन पर ही केन्द्रित किया गया है। बात पूरी करने से पहले इतना और जोड़ना चाहूँगा कि शोध के लिए यह विषय अभी भी अनेक सम्भावनाओं से भरा है इसीलिए चुनौतियाँ भी बहुत हैं। मैं यहाँ यह स्वीकार करने में कोई झिझक महसूस नहीं कर रहा हूँ कि इस शोध प्रबन्ध में अभी बहुत कुछ और जोड़कर इसे और भी उपयोगी बनाया जा सकता है किन्तु सैद्धान्तिक तौर पर शोध-प्रबन्ध

की अपनी एक सीमा होती है। यह सीमा ही इस अपेक्षाकृत व्यापक विषय के विधिवत् विकास के सामने सबसे बड़ी चनौती के रूप में पूरे शोध के दौरान बार-बार आती रही है।

संदर्भित समय से जुड़ी हुई रचनाओं, सामग्रियों की पुरातनता के कारण अधिकांशतः वे अप्राप्य रहीं या फिर केवल देखकर सूचना एकत्रित कर सकने भर के लिये प्राप्त हो सकी। देखकर खुशी हुई कि साहित्य प्रेमियों ने बहुत सावधानी से इन रचनाओं, सामग्रियों को संजोकर-सहेजकर रखा है। कहना चाहँगा कि अधिकांश रचनाओं को प्राप्त करना कठिन अवश्य रहा है, किन्तु वे रचनाएं अनुपलब्ध नहीं हैं। इसीलिए अधिक से अधिक जितना संभव हो सका, उन्हें इस प्रबन्ध की सीमा के भीतर समेटने का प्रयास किया गया है।

अंत में अपनी बात मैं, श्रद्धेय गुरुवर एवं इस शोध के निर्देशक प्रो. डॉ ओमप्रकाश सिंह जी के प्रति नत-भाव से हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए, पूरी करना चाहता हूँ जिनके पूरी गतिविधि के दौरान आदि से अंत तक सतत् मार्गदर्शन, प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही यह सब कुछ संभव हो सका है और हाँ, अपनी भार्या प्रिंसी त्रिपाठी का भी विशेष आभारी हूँ जिनके समय-समय पर उचित परामर्श और स्नेह तथा हर प्रकार की छोटी-बड़ी सहायता ने शोध-कार्य को और भी अधिक रूचिकर बनाने में सहायता पहुँचाई।

अपने अनुज डॉ० सुमित कुमार त्रिपाठी का भी मैं आभारी हूँ कि उन्होंने प्रूफरीडिंग के दौरान अपना उत्साह निरंतर बनाये रखा और काम को अंजाम दिया। गार्गी कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, के एसोसिएट प्रोफेसर डॉ० श्रीनिवास त्यागी ने पूरे शोध प्रबंध लेखन के दौरान अपनी विशेष टिप्पणियों के साथ इसे मूर्त रूप देने में विशेष मदद की। त्यागी सर का हृदय से आभारी हूँ। बड़े भाई प्रो. प्रेम तिवारी जो आज-कल दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य मे रत हैं का भी विशेष आभारी हूँ, कि उन्होने शोध प्रबंध-सामग्री संकलन में यथा संभव सहायता पहुंचाई।

प्रो. प्रमोद तिवारी जो केंद्रीय विश्वविद्यालय गुजरात, गाँधी नगर में शिक्षण कार्य कर रहे है का भी इस शोध प्रबंध को मूर्त रूप देने मे विशेषतम योगदान है और उनके प्रति मेरा विशेष आभार है।

किम्धिकम् !

सुजीत कुमार त्रिपाठी

अनुक्रम

अध्याय विवरण	**पृष्ठ संख्या**
प्रस्तावना	I-XV
अध्याय- एक	1-25
भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इतिहास का विकास	
खण्ड-1 : प्राचीन भारत में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विकास	
खण्ड-2 : मध्यकालीन भारत में वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास	
खण्ड-3 : औपनिवेशिक भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास	
अध्याय-दो	26-52
हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन	
भारतेन्दु युग (1850 ई० -1900 ई०)	
अध्याय- तीन	53-66
हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन	
द्विवेदीयुग (1901 ई० -1920 ई०)	
अध्याय- चार	67-103
हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिंतन	
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान (विश्व प्रपञ्च के संदर्भ में)	

अध्याय- पाँच 104-121

द्विवेदीयुग की प्रमुख पत्रिकाओं से चुने हुए लेख

(विज्ञान की चिंता पर टिप्पणी)

अध्याय- छह **122-147**

1920 से लेकर 1947 के बीच भारत में विज्ञान लेखन से सम्बन्धित चिंतन

(आधुनिक विज्ञान पत्रकारिता के विकास का शैशव काल)

उपसंहार 148-152

परिशिष्ट-एक 153-158

परिशिष्ट-दो 159-173

परिशिष्ट-तीन 174-180

परिशिष्ट-चार 181-189

सन्दर्भ सूची 190-198

अध्याय-एक

भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इतिहास का विकास

खंड -1

प्राचीन भारत में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विकास

भारत में विज्ञान के विकास के इतिहास का विधिवत लिखित साहित्य प्राचीन काल से ही प्राप्त है। अगर यह कहा जाए कि भारत में विज्ञान की परंपरा ज्ञान-विज्ञान की प्राचीनतम परम्पराओं में से एक है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। "लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व जब विश्व के अन्य स्थानों पर घुमंतू जातियां अपनी बस्तियां बसाना सीख रही थीं, उस समय से ही भारत में सिंधु घाटी सभ्यता के लोग वैज्ञानिक तरीके से अपनी नगर योजानाएं बनाकर रहने लगे थे।"[1]

भारतीय परिप्रेक्ष्य में 2000 ई. पू० से ही भवन निर्माण कला, धातु-विज्ञान, वस्त्र-विज्ञान, परिवहन योजनायें आदि, विश्व के अन्य समुदायों की अपेक्षा अधिक उन्नत स्थिति में विकसित हो चुकी थीं। इसके बाद आर्यों के आगमन के साथ भारत में विज्ञान की परंपरा और भी विकसित हुई। आर्यों के आगमन के बाद से विज्ञान ने गणित, ज्योतिष, रसायन शास्त्र, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, धातु-विज्ञान आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की। विज्ञान की यह परंपरा लगभग 200 ई. पू० से शुरू होकर लगभग 11 वी सदी तक बहुत उन्नत अवस्था में पहुँच गई थी। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, बोधायन, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, कणाद आदि से होते हुये विज्ञान के विकास की यह परंपरा राजा सवाई जय सिंह तक निर्बाध रूप से चली।

यह धारणा कि विज्ञान केवल यूरोप में शुरू हुआ था, दुनिया भर में शिक्षित लोगों के मन में गहराई से आरोपित था। अरब देशों के अलकेमिस्टों का यदा-कदा जिक्र किया जाता था, लेकिन भारत और चीन का बहुत कम जिक्र था। भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी और अन्य विज्ञान निकायों के कार्यों की बदौलत प्राचीन काल के दौरान भारत में विज्ञान के विकास ने 20वीं सदी में आकर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि भारत लगातार एक विज्ञानोन्मुख देश रहा है। "वैदिक युग से लेकर आधुनिक समय तक सामान्य उतार-चढ़ाव के साथ विज्ञान की प्रगति के साक्षी रहे हैं हम। वास्तव में, हमें शायद प्राचीन ग्रीस को छोड़कर किसी सभ्यता का उदाहरण नहीं मिलता है, जिसने ज्ञान और विज्ञान को उतना ऊंचा स्थान दिया जैसा कि भारत ने।"[2] यह अध्याय विज्ञान के उस क्षेत्र पर रोशनी डालेगा जिसमें प्राचीन भारत में भारतीय उत्कृष्ट प्रदर्शन करते रहे।

गणित

वैदिक हिंदुओं ने गणित की दो विशेष शाखाओं में विशेष रुचि दिखाई, यथा ज्यमिति और खगोल विज्ञान। बलिदान उनका प्रमुख धार्मिक मंगलाचरण था। "प्रत्येक बलिदान निर्धारित आकार और माप की एक वेदी पर किया जाना था। वे इस बारे में बहुत सख्त थे और मानते थे कि वेदी के रूप और आकार में थोड़ी सी अनियमितता भी पूरे अनुष्ठान को निष्प्रभावी कर देगी और प्रतिकूल प्रभाव भी पैदा कर सकती है। इसलिए सबसे ज्यादा ध्यान बलि-वेदी के सही आकार पर रखा गया। इस प्रकार ज्यामिति की समस्याओं की उत्प और फलस्वरूप ज्यामिति का विज्ञान केंद्र में आता चला गया।"[3] फिर खगोल विज्ञान का अध्ययन शुरू हुआ। धर्म के प्रसार, संवर्धन और संचरण लिए एक सहायक के रूप में विज्ञान की इस प्रकार उत्पत्ति बिल्कुल अप्राकृतिक नहीं है। "वैदिक हिंदू के मामले में विज्ञानोन्मुखता का विशिष्ट कारण धार्मिक ही था। लेकिन समय के बीतने के साथ-साथ, वे विज्ञान के विकास की प्रकिया में अपने धार्मिक उद्देश्यपूर्ति से आगे निकल गए और अपने स्वयं के लिए खेती करने, जीवनोपयोगी अन्य संसाधनों को एकत्रित करने और मानव जीवन के विकास के साथ एक वृहत्तर समाज के सर्वांनीण उत्थान के लिए विज्ञान के चरणबद्ध विकास का सहारा लेने लगे। निम्नलिखित अनुच्छेद में हम प्राचीन भारत में गणित के इतिहास पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।"[4]

वैदिक काल

"छान्दोग्य उपनिषद अन्य विज्ञानों के साथ संख्याओं के विज्ञान का उल्लेख करता है। मुण्डकोपनिषद में विज्ञान और गणित के ज्ञान को श्रेष्ठ और अवर के रूप में वर्गीकृत किया गया है। गनिता शब्द, जिसका अर्थ है गणना का वैदिक साहित्य में प्रचुर रूप से प्रयोग हुआ है। वेदांग ज्योतिषी और सूर्य सिद्धांत गणित को उन सभी विज्ञानों के बीच सर्वोच्च सम्मान प्रदान करता है जो, वेदांग बताते हैं। "गनिता में खगोल विज्ञान, अंकगणित और बीजगणित शामिल थे, लेकिन ज्यामिति नहीं। इसके बाद ज्यामिति, विज्ञान के एक अलग समूह से संबंधित थी जिसे कल्पा के नाम से जाना जाता था। वैदिक गणित के उपलब्ध स्रोत बहुत खराब स्थिति में हैं। इस विषय पर लगभग सभी कार्य नष्ट-प्राय हो गए हैं । वेद के छह विदयालयों से संबंधित वैदिक ज्यामिति पर छह छोटे ग्रंथ हैं।"[5] इस प्रकार, वैदिक गणित में एक अंतर्दृष्टि के लिए हमें साहित्यिक कार्यों जैसे माध्यमिक स्रोतों पर अधिक निर्भर रहना।

वैदिक गणित के बाद

समाज की भौतिक जरूरतों से तय गणितीयज्ञान के एक निश्चित स्तर का विकास सभी सभ्यताओं की एक आम घटना है। गौर करने वाली बात यह है कि वैदिक हिंदू ऐसी जरूरतों से काफी दूर चले गए। तर्कहीन मात्रकों और प्राथमिक सर्ड (करणी), अनिश्चित 'समस्याओं और समीकरणो', तृतीयक और ज्यामितीय श्रृंखला, समस्याओं, पर उनका ध्यान अपेक्षाकृत अधिक गया। यद्यपि वास्तुकला की समस्याएं, भाषा के विज्ञान जैसे मीटर और वाणिज्यिक लेखांकन की जटिलताओं ने गणित के विकास को प्रोत्साहित किया, इसकी सबसे बड़ी प्रेरणा निस्संदेह खगोलीय निकायों की गति द्वारा समय की गणना की समस्याओं के विचार से आई। भारत में, गणित का एक बड़ा हिस्सा खगोलीय उन्नति की अगली कड़ी के रूप में विकसित हुआ और यह कोई दुर्घटना नहीं है कि वैदिक-युग के बाद का अधिकांश गणित केवल सिद्धांतो के सहयोग से से ही पनप पाया। "सैद्धान्तिक खगोल विज्ञान का प्रारंभिक काल ईसाई युग की पहली कुछ शताब्दियों से माना जा सकता हैं। इन शताब्दियों और संभवतः पूर्व ईसाई युग के कुछ अंतिम कालखंड में लोगों ने खगोलीय तत्वों और घटनाओं के साथ-साथ एक संगठित समाज की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से व्यक्त करने, वर्णन करने और लेखांकन के लिए आवश्यक गणित का विकास कर लिया था।"[6]

जैन पुजारियों ने गणित के अध्ययन और विकास में उल्लेखनीय रुचि दिखाई। उन्होंने अनुयोग (धार्मिक साहित्य) की चार शाखाओं में से एक को गोशयोग (गणितीय सिद्धांतों) की स्पष्टता के लिए समर्पित किया और समख्याणा (गणना के विज्ञान) और ज्योतिष (खगोल विज्ञान) में प्रवीणता, को जैन पुजारी होने की एक महत्त्वपूर्ण शर्त के रूप में निर्धारित किया गया। गणितीय विषयों के बारे में इन विचारो, और बाद में जैनी गणितीय कार्यों जैसे महावीर (A.D. 850 ई.) के 'गणेश सरसंगराहा' और श्रीपति के गणेशतिलका में इन गणितीय विचारों को मान्यता प्राप्त है। यह विषय व्याख्या करता हैः परिकरमा (भौगोलिक संचालन), व्यासधारा (समीकरण संकल्प), रज्जु (ज्यामिति), कलासवर्ना (अंश), यवत-तवत (रैखिक समीकरण), वर्गा (चतुर्भुज समीकरण), घाना (घन समीकरण), वर्गावरगा (बाइक्वाड्रेटिक समीकरण), और विकलपा (क्रम परिवर्तन और संयोजन)।

यह देखा जाना चाहिये कि गनिता में तब तक दोनों प्रमुख शाखाओं "अंकगणित (पटिगनिता) और बीजगणित (बिजागणिता, एव्याकागंता, या कुट्टाका) में भेदभाव तब तक नहीं हुआ जब तक कि ब्रह्मगुप्त (A.D. 598) ने दोनों के पृथक महत्त्व पर जोर देने की मांग नहीं की। "विशेष रूप से अंकगणित के लिए समर्पित ग्रंथों के बारे में विशेष प्रयास आठवीं सदी ईस्वी से दिखाई देने लगे। ज्यामिति, जिसका 'बौधायन द्वारा' की रचना तक पर्याप्त आर्विभाव हो चुका था, ने गनिता की जगह ले ली और बाद में काफी हद तक अंकगणित से स्वतंत्र विधा बन गई।"[7]

अंक गणित विकास

यह सर्वविदित है कि अंकगणित का विकास काफी हद तक संख्या व्यक्त करने की विधा के तौर पर किया गया था। गणित की इस शाखा में भारतीयों द्वारा प्रारंभिक लाभ, कौशल और उत्कृष्टता, मुख्य रूप से दशमलव स्थान-मूल्य जैसी अवधारणा विकास की गई अर्थात, संख्याओं के समूहों या दस अंकों की मदद से किसी भी संख्या को व्यक्त करने की प्रणाली, और दस के गुणकों में स्थान-मूल्य तथा शून्य जैसे विचार शामिल किये गये। "संख्या व्यक्त करने की भारतीय विधि पर एक व्यापक साहित्य मौजूद है, विशेष रूप से शून्य के साथ दशमलव स्थान-मूल्य अंकन पर।"8

गणितज्ञों और प्राच्य विज्ञानियों में आम तौर पर इस बात पर सहमति होती है कि शून्य वाली प्रणाली की उत्पत्ति भारत में ही हुई है और वे दुनिया के अन्य हिस्सों में यहीं से संचारित हुई।

उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि, दशमलव स्थान-मूल्य नोटेशन के विकास का मतलब एक नए प्रकार के अंकगणित के विकास से है। आइए बड़ी संख्या में वर्ग और घन की निकासी का मामला लें। भारत में यह विधि पहली बार आर्यभट्टियम में दिखाई दी (A.D. 499)। इसके बाद ब्रह्मगुप्त (A.D. 598) ने हालांकि स्क्वायर रूट (वर्गमूल) निकालने के लिए कोई नियम नहीं दिया । इसके बाद महावीर (A.D. 850), श्रीधाराचार्य (A.D. 991), आर्यभट्ट द्वितीय (A.D. 950), भास्कर द्वितीय (A.D. 1150) और कमलाकर (A.D. 1658) ने मौलिक रूप से इसके नियम दिए। किसी भी 'इंटीमेट नंबर' के 'क्यूब रूट' निकालने की विधि का आर्यभट्ट के गणेशपद से पता लगाया जा सकता हैं। ब्रह्मगुप्त ने यही विधि अपने ब्रह्मसुत्त सिद्धिदात्री में दिया है।

बीजगणित

बीजगणित की शुरुआत, या अधिक सही ढंग से, बीजगणितीय समस्याओं को हल करने के ज्यामितीय तरीकों, को बौधायन, काव्यायन और कुछ अन्य मनीषियों के अतिरिक्त सल्व-सूत्र से पता लगाया गया है। आरंभिक स्तर पर रैखिक, समीकरणों के समाधान से जुड़ी ये समस्याएं विभिन्न प्रकार की बलि-वेदियों के निर्माण और उनके लिए ईंटें बिछाने की व्यवस्थाओं के संबंध में उठीं। गणित की एक अलग शाखा के रूप में बीजगणित का प्रार्दुभाव अनिश्चित विश्लेषण (कुट्टाका) की तकनीकों के विकास के बाद ब्रह्मगुप्त के समय से हुआ। दरअसल, ब्रह्मगुप्त ने कुट्टाका और कुट्टाकागणिता शब्दों का इस्तेमाल किया था। बिजांगिता शब्द, जिसका अर्थ है तत्वों या अज्ञात मात्राओं बीज के साथ गणना का विज्ञान। चतुर्वेद पृथुदका स्वामी पृथुदकास्वामिन (A.D. 860) द्वारा इसका प्रयोग सर्वप्रथम किया गया था। ब्रह्मगुप्त ने गणित विषय के निम्नलिखित वर्गीकरण किए:

(1) 'एकवर्णा समीकरण - समीकरण' जिसमें रैखिक और चतुर्भुज समीकरण शामिल हैं।

(2) अनेकवर्णा समीकरण - समीकरण और भविटा-समीकरण जिनमें अज्ञात के मूल संख्या-उत्पाद होते हैं।

रेखागणित

गणित की अन्य शाखाओं की तरह, वैदिक काल के बाद भारत में 'ज्यामिति' व्यावहारिक समस्याओं से निपटने के लिए विकसित की गई थी। महत्त्वपूर्ण परिणामों के कुछ उदाहरण प्राप्त हैं, जिसमें समकालीन यूनानियों के हाथों के द्वारा किए गए अमूर्त और सामान्यीकृत विज्ञान शामिल हैं। ‘‘ज्यामितीय उपचार प्राप्त करने वाली समस्याओं 'परोमजतं' (विमान के आंकड़े), खाटा (खुदाई या घन आंकड़े), सिटी (ईंटों के ढेर), क्राका (करणी समस्याओं या घन आंकड़े), और छाया (समानताएं और अनुपात की समस्यायें) के रूप में इन विषयों की चर्चा की गई।’’ ‘‘अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत तक ‘‘यूकेलिड के तत्वों का अनुवाद पुनर्खंडिता शीर्षक के तहत जगन्नाथ (ईस्वी 1652) द्वारा संस्कृत में कर लिया गया था, सही कोण, त्रिकोण का समाधान, (जिनके पक्ष 'ए, बी, सी' संबंध $a^2+b^2=ca$ से जुड़े हुए हैं) प्राचीन भारतीयों की एक पसंदीदा गणितीय क्रिया विधि रही। आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त ने ऐसे त्रिकोणों के सामान्य समाधान दिए, जिन पक्ष तर्कसंगत संख्या के विवेचन में दिए जा सकते हैं"।

गणना

ब्रह्मगुप्त और भास्कर 2 की रचनाओं में ‘एकीकरण’ के रुढ़िवादी विचार पाए जाते हैं। भास्कर-2, विशेष रूप से, एक क्षेत्र के एकीकरण के अनुरूप समाकलन की विधि द्वारा क्षेत्र और आयतन निर्धारित करने का प्रयास कर रहे थे। पहली विधि में, सतह पर किसी भी बिंदु के बारे में समानांतर ‘हलकों’ की एक श्रृंखला खींचकर सतह को प्राथमिक 'सर्किलों' में विभाजित किया गया है। भास्कर के अनुसार इस तरह के 'सर्किलों' की संख्या ऐच्छिक हो सकती है। गोले का आयतन ज्ञात करने के लिए, इसे बड़ी संख्या में पिरामिडों में विभाजित किया गया है, जिसके सतह पर उनके आधार और केंद्र के साथ मेल खाते हुए उनके शीर्ष समायोजित हैं। इन पिरामिडों की मात्राओं का योग क्षेत्र का आयतन देता है।

वेदांग ज्योतिष इसे वेदों को बनाने वाले सभी विज्ञानों में सर्वोच्च सम्मान स्थान देता है। भारत में, गणित का एक बड़ा हिस्सा खगोलीय उन्नति की अगली कड़ी के रूप में विकसित हुआ। भारत में प्राचीन काल के दौरान आर्यभट्ट प्रथम (A.D. 476), ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, आपस्तम्ब, बौधायन, कात्यायन, मानव, और कुछ अन्य वैज्ञानिकों के प्रयास से विज्ञान फला फूला।[9]

खंड -2

मध्यकालीन भारत में वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास

मुस्लिम शासन भारत में 13 वां शताब्दी की शुरुआत के साथ शुरू हुआ और लगभग पांच सौ साल तक चला और 1707 ई. में सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के साथ इस शासन का अंत हुआ। इस अवधि के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में काफी काम किया गया। गणित, चिकित्सा, ज्योतिष, खगोल विज्ञान जैसे विज्ञान बहुतायत में फले-फूले। यह भी सच है कि मध्यकालीन भारत में, राजाओं द्वारा राज्य नीति के रूप में विज्ञान को संरक्षण नहीं दिया गया था। इस कालखंड में विशाल स्मारकों का निर्माण, वेधशालाओं का निर्माण, ग्रंथों के अनुवाद की मात्रा पश्चिम की तुलना में बहुत कम थी। इस खंड में भारतीय इतिहास के मध्यकालीन चरण के दौरान अरब दुनिया के प्रभाव और विज्ञान के विभिन्न पहलुओं के विकास पर उसके प्रभाव पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा।

मध्यकालीन युग में विज्ञान

मध्यकालीन युग में पारंपरिक स्वदेशी शास्त्र को सीखने-समझने के प्रयास को पहले से ही काफी झटका लगा था। इस अवधि के दौरान अरब देशों में प्रचलित शिक्षा पद्धति को धीरे-धीरे अपनाया जाने लगा था। परिणामस्वरूप, मकतब और मदरसे अस्तित्व में आने लगे थे। ये संस्थान शाही संरक्षण प्राप्त थे। मदरसों की यह श्रृंखला, कई स्थानों पर खोली गई, एक निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन किया गया। दो भाइयों, शेख अब्दुल्ला और शेख अजीजुल्लाह, जो तर्कसंगत विज्ञान के विशेषज्ञ थे, ने संभल और आगरा में मदरसों का नेतृत्व किया। देश में स्थानीय रूप से उपलब्ध प्रतिभाओं के अतिरिक्त, फारस और मध्य एशिया के विद्वानों को भी मदरसों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए आमंत्रित किया जाने लगा।

मुस्लिम शासकों ने अपने स्तर पर प्राथमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में सुधार करने का प्रयास किया। प्राथमिक शिक्षा के लिए अध्ययन के पाठ्यक्रमों में अंकगणित, में सुरेशन, ज्यामिति, खगोल विज्ञान, लेखा, लोक प्रशासन और कृषि जैसे कुछ महत्त्वपूण विषयों को शामिल किया गया था।[10]

शिक्षा में सुधारों के प्रयास के बाद भी विज्ञान ने बहुत अधिक प्रगति नहीं की। भारतीय पारंपरिक वैज्ञानिक संस्कृति और, अन्य देशों में विज्ञान के लिए प्रचलित मध्ययुगीन दृष्टिकोण, के बीच एक प्रकार का संश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा था।"[11]

राजघरानों और सरकारी विभागों को प्रावधान-भंडार और उपकरणों की आपूर्ति करने के लिए कारखानों और बड़ी कार्यशालाओं का निर्माण किया जाने लगा था। कारखानों ने न केवल निर्माण एजेंसियों के रूप में काम किया, बल्कि युवा लोगों को तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केंद्र के रूप में भी काम किया। करखानों में अलग-अलग शाखाओं में कारीगरों और शिल्पकारों को प्रशिक्षित किया जाने लगा, जिन्होंने बाद में अपने स्वयं के स्वतंत्र कारखानों की स्थापना भी की। इस प्रकार यन्त्र विज्ञान आम जनमानस के करीब आता चला गया और लोगों की इसमें सहज स्वीकृति बनती चली गई थी।

गणित

इस अवधि के दौरान गणित के क्षेत्र में भी कई काम किए गए। नरसिंह दैवजन्ना के पुत्र नारायण पंडित गणितकौमुद्री और बीज गणित भाष्य नामक ग्रंथ में, अपने कार्यों के लिए जाने गये थे। इनकी स्थापनाए गंगाधारा, करमदीपिका, सुदंतादीपिका और लीलावती में विशेष लिखी गई है। इन ग्रंथो में साइन, कोसाइन स्पर्शरेखा और कॉटेजेंट जैसे त्रिकोणमितीय शब्दों का बहुत प्रयोग किया गया है। नीलकंठ सोमसुतवन ने तंत्रसंग्रह का निर्माण किया, जिसमें त्रिकोणमितीय फलनों के नियम भी हैं। "गणेश दैवज्ञ ने बौद्धविलासिनी का निर्माण किया। वल्हल्ला परिवार के कृष्ण ने भास्कर के बीजगणित के पहले और दूसरे आदेशों के अनिश्चित समीकरणों के नियमों का विस्तार किया। नीलकंठ ज्योतिर्विद ने ताजिक का संकलन किया, जिसमें बड़ी संख्या में फारसी और तकनीकी शब्द थे। फैजी ने अकबर के कहने पर, भास्कर के बीजगणित का अनुवाद किया। अकबर ने शिक्षा प्रणाली को अधिक सुसंगत बनाने के लिए दूसरों विषय के साथ अंकगणित की अध्ययन का विषय बनाने का आदेश दिया।"[12]

जीवविज्ञान

इसी प्रकार जीवविज्ञान के क्षेत्र में भी अपेक्षित उन्नति हुई। हम्सादेव ने तेरहवी शताब्दी में जीव विज्ञान शीर्षक से पक्षी शास्त्र के क्षेत्र में सराहनीय काम किया। "तुजुक-इ-जहांगिरी में जहांगिर ने प्रजनन और संकरण पर अव्वन्य अवलोकन और प्रयोगों को दर्ज किया इसमें जानवरों की लगभग 36 प्रजातियों का वर्णन है। अनेक दरबारी कलाकारों ने, विशेष रूप से, मंसूर ने, जानवरों के सुरुचिपूर्ण और सटीक चित्र बनाए। इनमें से कुछ अभी भी कई संग्रहालयों और निजी संस्थानों में संरक्षित हैं। एक प्रकृतिवादी के रूप में, जहाँगीर को पौधों के अध्ययन में भी रुचि थी।"[13]

रसायन विज्ञान

मध्यकाल में, कागज का उपयोग शुरू हो गया था। रसायन विज्ञान का एक महत्त्वपूण अनुप्रयोग कागज के उत्पादन में था। कश्मीर, सियालकोट, जफराबाद, पटना, मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद, औरंगाबाद और मैसूर कागज उत्पादन के प्रसिद्ध केंद्र बन गए। कागज बनाने की तकनीक कमोबेश पूरे देश में अलग-अलग समय पर विकसित होती चली गई।[14]

मुगलों को बारूद के उत्पादन की तकनीक और तोपखाने में इसके उपयोग का ज्ञान जो कि रसायन विज्ञान का एक अन्य अनुप्रयोग था, के बारे में पता था।[15]

खगोल

खगोल विज्ञान का क्षेत्र अन्य एक और क्षेत्र था जो इस अवधि के दौरान पर्याप्त फला-फुला। खगोल विज्ञान में, पहले से ही स्थापित खगोलीय धारणाओं के समाधान के लिए कई टिप्पणियां प्रचलन में आई।

सुल्तान फिरोज शाह जो कि एक खगोलशास्त्री भी था। एक खगोलीय, यंत्र विकसित किया। वहीं केरल में परमेस्वर और महाभास्करिया, खगोलविदों और पंचांग निर्माताओं के प्रसिद्ध परिवार से आते थे। नीलकंठ सोमसुतवन ने आर्यभट्टीयम की टिप्पणी का निर्माण किया। कमलाकर ने इस्लामिक खगोलीय विचारों का अध्ययन किया। "जयपुर के महाराजा सवाई जय सिंह को खगोल विज्ञान का प्रथम संरक्षक माना जा सकता था। उन्होंने दिल्ली, उज्जैन, वारणसी, मथुरा और जयपुर में पांच खगोलीय वेधशालाएँ स्थापित की।

दवा

आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति में उतनी प्रगति नहीं हुई जितनी कि प्राचीन काल में हुई थी। हालाँकि, आयुर्वेद पर कुछ महत्त्वपूण ग्रंथों जैसे 'सारंग धर संहिता' और चिकत्सा संग्रह, तथा भावमिस्रा के भावप्रकाश संकलित किए गए थे। तेरहवी शताब्दी में लिखी गई सारंग धर संहिता में नैदानिक उद्देश्य के लिए सामग्री और मूत्र-परीक्षा में अफीम के उपयोग का विवरण शामिल है। उल्लिखित दवाओं में रस चिकित्सा प्रणाली की धातु शुद्धि और आयातित दवाएं भी शामिल हैं। रस चिकित्सा प्रणाली, मुख्य रूप से खनिज दवाओं, दोनों मयूरियल और नॉनमयूरियल का उल्लेख करती है। तमिलनाडु में प्रचलित सिद्ध प्रणाली को प्रतिष्ठित सिद्धों के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है।[16]

कृषि

"मध्यकाल में, कृषि पद्धतियों का पैटर्न कमोबेश उसी तरह था जैसा कि प्राचीन भारत में था। विदेशी व्यापारियों द्वार फसलों, के साथ-साथ बागवानी योग्य पौधों को भारत में लाया जाने लगा। प्रमुख फसलें गेहूं, चावल, जौ, बाजरा, दालें, तिलहन, कपास, गन्ना और इंडिगो थीं। पश्चिमी घाट ने अच्छी गुणवत्ता की काली मिर्च का उत्पादन जारी रखा और कश्मीर ने केसर और फलों के लिए अपनी परंपरा को बनाए रखा। दक्षिण भारत से इलायची, चंदन, नारियल, अदरक और दालचीनी का निर्यात बखूबी चलता रहा।

तम्बाकू, मिर्च, आलू, अमरूद, शरीफा, काजू और अनानास वह महत्त्वपूर्ण वनस्पति सामग्री दी गई थी जो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत को उपहार स्वरूप दिये गए थे। इसी अवधि के दौरान मालवा में अफीम के पौधों से अफीम का उत्पादन भी शुरू हुआ।

"बिहार क्षेत्र मे बेहतर बागवानी पद्धतियों को बड़ी सफलता के साथ अपनाया गया। व्यवस्थित मैंगोग्राफटिंग की शुरुआत गोवा के जेसुइट्स ने सोलहवीं शताब्दी के मध्य में की थी। इंपीरियल मुगल गार्डन में फलों के पेड़ों की व्यापक खेती हुई। सिंचाई के लिए कुएं, टैंक, नहरें, रहट, चरस और धानकली चरस (एक तरह की चमड़े की बनी बाल्टी) का इस्तेमाल किया जाने लगा। मध्यकाल में, कृषि कार्य को राज्य द्वारा भूमि माप और भूमि के वर्गीकरण की एक ठोस वैज्ञानिक नींव पर रखा गया था।"[17]

भारत में अरब विज्ञान का प्रभाव

भारत और अरबों के बीच वैज्ञानिक सहयोग बगदाद के अब्बासिद खलीफा के समय से मिलता है जब खगोल विज्ञान, गणित और चिकित्सा पर कई पुस्तकों का अनुवाद किया गया था।

भारत के प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान ने अरब वैज्ञानिकों को प्रभावित करना जारी रखा। हिंद विज्ञानों में, अरब की रुचि यूनानी शिक्षा में उनकी रुचि, के समानांतर थी।

खलीफा न केवल ब्रह्म-सिद्धार्थ के अनुवाद का कारण बना, बल्कि उसने अपने सहयोगियों को उससे एक ऐसा काम तैयार करने के लिए कहा, जो ग्रहों की गति की गणना के लिए आधार के रूप में प्रयोग हो सके। यह "750 ई. में हिंदू पंडितों के सहयोग से इब्राहिम अल-फजारी और याकूब इब्ने तारिक दवारा किया गया था और किताब को अल-जिज, अल सिनी, अल-अर्ब, या अल-कबीर कहा गया।"[18]

"यह अनुवाद संभवतः वह प्रमुख निधि था जिसके माध्यम से भारतीय अंक ज्ञान को भारत से बगदाद स्थानांतरित किया जा सका होगा। इन हिंदू पंडितों की मदद से, अल-फाजरी ने, ब्रह्मगुप्त की दूसरी किताब खंडखंडिका का अनुवाद किया और इसे 'अरकंड' का अरबी नाम दिया। इस्लामी दुनिया में खगोल विज्ञान के विकास ने काफी प्रभाव डाला। यह वह अवसर था कि जब अरब खगोल विज्ञान की हिंदू प्रणाली से परिचित हो गए। उन्होंने एलेक्जेंडरियन वैज्ञानिक टॉलेमी की तुलना में पहले ब्रह्मगुप्त (सातवीं शताब्दी) से खगोल विज्ञान सीखा।" [19]

गणित और खगोल विज्ञान पर ग्रीक और संस्कृत ग्रंथों का उपयोग मुस्लिम वैज्ञानिकों द्वारा विज्ञान में नए क्षेत्रों को विकसित करने के लिए आधार के रूप में किया गया था। "हिंदू विज्ञान ने अरब विज्ञान पर अधिक स्थायी प्रभाव छोड़ा। संख्याओं के लिए अरबी शब्द हंडसा है, जिसका अर्थ है भारत। संख्या लिखने का यह तरीका, गणितज्ञों के लिए बहुत ही रोमांचक था। इराक में अरब वैज्ञानिकों, विशेष रूप से मुहम्मद इब्न मूसा अल-खवरीजमी ने बीजगणित को विकसित करने के लिए नई संख्याओं का उपयोग किया। अंग्रेजी शब्द एल्गोरिथ्म उसी खलीफा के नाम से लिया गया है। कुछ गणितीय और खगोलीय शब्द संस्कृत से उधार लिए गए थे। इब्न अल-मुक्फा ने पंचतन्त्र का अरबी में 'काइला' वा 'डिमना' के रूप में अनुवाद किया।"[20]

दिल्ली के सुल्तानों को यांत्रिक मशीनों में बहुत दिलचस्पी थी। सिरत फिरोज शाही (1370 ई.) पुस्तक में 13 ऐसे उपकरणों को सूचीबद्ध किया गया था जिनका उपयोग पत्थरों और भारी निर्माण सामग्री के परिवहन में किया जाता था। बांकीपुर पुस्तकालय में सिरत की एक पांडुलिपि संरक्षित है। सुल्तान नासिर शाह (1500 ई. -11 ई.) के शासन के दौरान मुहम्मद इब्न दाउद के नाम से एक विद्वान ने कई अरबी पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया जो उस समय राज्य की आधिकारिक भाषा थी। साक्षरता को प्रोत्साहित करने के लिए कई मदरसे खोले गये। उन्होने गरीबों के मुफ्त इलाज के लिए अस्पतालों की स्थापना की।"[21]

यूनानी चिकित्सा पद्धति के विकास ने चिकित्सकों को प्रोत्साहित किया। सुल्तान फिरोज शाह ने संस्कृत से चिकित्सीय लेखों का अनुवाद किया। उन्होंने हिन्दू खगोल विज्ञान और ज्योतिष पर काम करने का आदेश दिया और उनका फारसी में 'दलाली फिरोज शाही' के नाम से किया। संगीत के कार्यों को भी बढ़ावा मिला। (1357 ई.) में तुगलक के शासन का एक कालानुक्रमिक इतिहास लिखा गया जिसका नाम 'तारिख-ए-फिरोज शाही था। संस्कृत शिक्षा के वास्तविक हित और संरक्षण की शुरुआत कश्मीर के सुल्तान जैन उल आब्दीन (1420 ई. - 1470 ई.) से हुई जिन्होंने महाभारत और राजा-तरंगिणी के अनुवादों को कश्मीरी भाषा में अंजाम दिया। इन सभी ग्रंथों से हमें तत्कालीन विज्ञान की स्थिति की एक झलक मिल जाती है।

मध्यकालीन भारत में गणित

"उपलब्ध संस्कृत साहित्यों का भारत में मुस्लिम शासन के दौरान प्राय: अनुवाद ही किया गया था। यूक्लिड के तत्वों का अल्लामा द्वारा अरबी में अनुवाद किया गया था।"[22]

नसीरुद्दीन तुसी, और कुतुब अल-दीन शराजी ने 1311 ई. में फारसी में इसका अनुवाद किया था। इन अनुवादों के आधार पर, अब्दुल हमीद मुहर्रार गजनवी ने 26 साल बाद दस्तूर-अल-बाब और इल्म-अल-हसब लिखा।

"गणित में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले पंजाब के प्रतिष्ठित परिवारों में से एक उस्ताद अहमद लाहोरी उर्फ अहमद अल-मिमार, (1580 ई. - 1649 ई.) ताजमहल और लाल किले के वास्तुकार थे। उनके एक पुत्र अताउल्लाह

रशीदी ने बादशाह शाहजहाँ के शासनकाल में गणित की अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया। उन्होंने फारसी में 'खुलसा रज' भी लिखा जो अंकगणित, बीजगणित और माप से सम्बन्धित हैं। उनकी एक अन्य पुस्तक 'खजिनातुल अदद' में अंकगणित, यूक्लिड की ज्यामिति और बीजगणित के विषय मिलते हैं।"[23]

उस्ताद अहमद के पोते इमाद अल-दीन रियादी भी एक बहुमुखी वैज्ञानिक थे। उन्होंने इल्म-अल-हसब पर एक टिप्पणी लिखी, जिसका शीर्षक 'हाशिया-बार- शरारा खुल्सा' था जिसमें एक प्रस्तावना, दस अध्याय और एक परिशिष्ट शामिल था। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'हाशिया बार शरहा चागमनी' के नाम से 'शरह चघमानी' पर एक टिप्पणी लिखी। उन्होंने खगोल विज्ञान और ज्यामिति की समस्याओं पर एक पुस्तक भी लिखी।

फारसी और अरबी से संस्कृत में कई अनुवाद किए गए थे। महाराज सवाई सिंह ने त्रिकोणमिति के अध्ययन के क्षेत्र में प्रमुख योगदान दिया, जो कि एक डिग्री (अंश) और उसके भागों, अर्थात् मिनट और सेकंड में साइन (ज्या) को खोजने से संबंधित था। उस्ताद अहमद लाहौरी के एक और पोते अबुल खैर खैरुल्लाह ने जीजम शाही पर एक टिप्पणी लिखी, जिसका अनुवाद अल्मागेस्ट नाम से किया और साथ ही इस पर एक टिप्पणी भी लिखी। उन्हें 1718 ई. में देहली वेधशाला का निदेशक नियुक्त किया गया था। उनकी अन्य प्रमुख कृतियां थीं 'मजमुआ अल-मदखिल' 'अल - नजूम' और 'मजमुआ अल-सबूत अल- कुदसिया खजिनातुल इल्म या ट्रेजरी ऑफ नॉलेज ख्वाजा अजीमाबादी द्वारा (अंग्रेजी शब्दावली के साथ) अंकगणित, ज्यामिति, खगोल विज्ञान और फारसी में उनके अनुवाद के साथ एक फारसी पुस्तक थी। यह रिसाला दार ब्याल अमल-अलक़ और शम्सुल हंडसा के लेखक फखरुद्दीन खान बहादुर की कृतियों में भी परिलक्षित होता है, जो माप, ज्यामिति और त्रिकोणमिति पर आधारित हैं।

मध्यकालीन भारत में खगोल विज्ञान

20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, कई नई खगोलीय पांडुलिपियाँ, मूल रचनाएँ और टीकाएँ, समीक्षकों द्वारा संपादित और अनुवादित की गई हैं, और भारत और विदेशों में कई सक्षम विद्वानों द्वारा इन पर टिप्पणी भी की गई। भारतीय खगोल विज्ञान की मौलिकता बारहवीं शताब्दी की शुरुआत में भास्कर-2 की खगोलीय और गणितीय प्रस्तुतियों के साथ समाप्त दिखाई देती है।[24]

प्रारंभिक मध्यकालीन चरण में खगोल विज्ञान

आरंभिक मध्ययुगीन काल के दौरान महान खगोलशास्त्री और गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त और भास्कर के बीच, भारतीय उपमहाद्वीप में गोविंद स्वामी, शंकरनारायण, आर्यभट्ट द्वितीय, श्रीपति और सतानंद जैसे बुद्धिजीवियों की गणना होती है।

"उन्हें गोविंद स्वामी को खगोल विज्ञान और गणित पर उनके मौलिक काम के लिए जाना जाता है। जिसे गोविंदकृती कहा जाता है, जिसके संदर्भ ज्ञात हैं, लेकिन मूल पांडुलिपि अभी भी अप्राप्य है। गोविंदस्वामी के शिष्य और युवा समकालीन, शंकरनारायण को और केरल के सेरा राजवंश के रविवर्मन को मुख्य खगोलविद नियुक्त किया गया"।[25]

खंड-3

औपनिवेशिक भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विकास

यूरोप में पुनर्जागरण की एक प्रमुख उपलब्धि के रूप में भारत के लिए प्रत्यक्ष समुद्री मार्ग की 1498 ई. में की गई खोज थी। पुर्तगालियों की महान व्यावसायिक सफलता ने डच, अंग्रेजी और फिर फ्रांसीसी को समुद्र की और निकलने के लिए प्रेरित किया। व्यापारियों की जरूरतों ने यूरोप में विज्ञान के विकास के लिए एक प्रोत्साहन स्वरुप कारक के रूप में कार्य किया। व्यापार ने न केवल यूरोपीय अर्थव्यवस्था बल्कि सामाजिक स्थिति को भी बदल दिया था। मानव जाति के इतिहास में पहली बार, धन का उत्पादन भगवान और राजा के सौजन्य से नहीं, बल्कि मानव के प्रयास पर निर्भर हो चला था। व्यापारी और कारीगर अब समाज के सम्मानित और प्रभावशाली सदस्य बन गए थे। जब से नए अमीर वर्ग ने विज्ञान के लिए अपने धन का प्रयोग आरम्भ किया वह विज्ञान का संरक्षक बन गया। नए अनुभवों ने पिछली परम्पराओं की पकड़ को कमजोर कर दिया था। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक विज्ञान यूरोपीय लोगों के साथ भारत में आया था। "इन शुरुआती आगंतुकों के लिए अपने नए वातावरण के साथ खुद को परिचित कराने की कोशिश करना तथा अस्तित्व के साथ-साथ लाभ के लिए भी विज्ञान का विकास परम स्वाभाविक बन पडा था।[26]

भारत में आधुनिक विज्ञान की शुरुआत

"आरंभिक वर्षों में, यूरोपीय भारत के तटीय क्षेत्रों तक ही सीमित थे। जीसस सोसाइटी की स्थापना 1540 ई. में हुई थी। 1542 ई. में पहला जेसुइट भारत आया और 200 ई. से अधिक वर्षों तक सक्रिय रहा। 1759 ई. में पुर्तगाल के राजा ने अपनी कॉलोनियों से सभी जेसुइट्स को हटा दिया और 1773 ई. में पोप ने इसे एक आदेश से पूरी तरह से समाप्त कर दिया। 1833 ई. में इस परम्परा को कलकत्ता में आने वाले पहले अंग्रेजी जेसुइट्स के साथ इसे 1814 ई. में पुनर्जीवित किया गया था। 1580 ई. में फादर मोनसेरेट (1536 ई. - 1600 ई.) ने बादशाह अकबर के लिए सूरत से फतेहपुर सीकरी तक भौगोलिक अक्षांश का अवलोकन किया। अकबर ने अपने सौतेले भाई मिर्जा हकीम के खिलाफ काबुल में जब मार्च किया, तो वह मोनसेरेट को अपने दूसरे बेटे मुराद के लिए एक शिक्षक के रूप में ले गया था।"27

"जेसुइट्स ने अपनी टिप्पणीयो और डायरियों को यूरोप भेज दिया जहां उन्हें ईमानदारी से संरक्षित किया गया। यूरोप अभी तक भारत के साथ वेज्ञानिक सहयोगिता के लिए तैयार नहीं था। 1702 ई. और 1741 ई. के बीच पेरिस में प्रकाशित दुनिया भर के जेसुइट टिप्पणीयो के 34 संस्करणों को औपनिवेशिक विद्वानों द्वारा पढ़ा गया था, और 1780-83 ई. में एक संक्षिप्त संस्करण प्रकट हुआ, जिसमें से छह खंड भारत को समर्पित थे।

भारत में आधुनिक विज्ञान का प्रारंभिक उपयोग छिटपुट और यादृच्छिक था तथा कमोबेश स्थानीय जिज्ञासा से प्रेरित था। इसमें से अधिकांश का कोई समकालीन महत्त्व नहीं था और इसे बहुत बाद में विज्ञान के मुख्य निकाय में शामिल किया गया था।

औपनिवेशिक-उपकरण चरण पुर्तगालियों की भूमिका

पुर्तगालियों द्वारा भारत में इस्तेमाल किए जाने वाले सोने के सिक्कों में सेना के तोप-गोले को दर्शाया गया है, अक्षांश को निर्धारित करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला प्रीटेलस्कॉपिक बेसिक नेविगेशनल इंस्ट्रूमेंट भी कहीं-कहीं चित्रलिपि में मिलता हैं। यह पुर्तगाल का विज्ञान को महत्त्व देने का तरीका था, जिसमें उनकी शक्ति का परिचय मिलता हैं। मुगलों के पहले ही पुर्तगाली भारत आ चुके थे। उनकी छोटी आबादी को देखते हुए वे यह नहीं जानते थे कि समुद्र पर होने वाली डरावनी मौतों से सफलतापूर्वक कैसे निपटना है। पुर्तगालियों ने भारत के भ-राजनीतिक समीकरणों को एक पैरामीटर के रूप में नौसेना को पेश किया, जिससे भारतीय शासकों को नुकसान हुआ। जब इसकी शक्ति अपने चरम पर थी, तब भी मुगल साम्राज्य को भारतीय मुसलमानों को मक्का जाने से रोकने के लिए पर्तगाली प्रयासों को विफल करने के लिए धार्मिक रुप से तटस्थ ब्रिटिशों की मदद लेनी पड़ी। जब तक मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तब तक यूरोप पहले से ही औद्धोगिक क्रांति के कगार पर था, ताकि विज्ञान और उपनिवेशवाद एक-दूसरे के रुप प्रेरित पोषक बन सकें।[28]

फ्रेंच पहल

भारत में राजनीतिक शून्य को भरना इसकी भौगोलिक संरचना को बिना समझे संभव नहीं रहा। औपनिवेशिक विज्ञान वेत्ताओं की तुलना में फ्रांसीसी वैज्ञानिक इस अर्थ में मोर्चे पर अधिक सफल दिखे। भारत का पहला सार्थक

नक्शा 1752 ई. में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता जीन-बैप्टिस्ट बोर्गिग्नॉन डैनविले द्वारा फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी के अनुरोध पर संकलित किया गया था, जिन्होंने इसे जेसुइट डेटा को आधार बनाकर तैयार किया था।

अंग्रेजों का उदय

भौगोलिक और नौसैनिक सहायता के रूप में खगोल विज्ञान भारत में लाया जाने वाला पहला आधुनिक विज्ञान था। "इसका प्रारंभिक उपयोग हालांकि छिटपुट था और ज्यादातर व्यक्तिगत जिज्ञासा से प्रेरित था। व्यवस्थित वैज्ञानिक प्रयास तब आवश्यक हो गया जब प्लासी की 1757 ई. की लड़ाई ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को भारतीय राजनीति के हिस्सेदार के रूप में बदल दिया। कंपनी बहादुर अपनी जरूरतों के प्रति पूरी तरह सचेत था। विज्ञान की शक्तियों को पूरा उपयोग केवल वर्तमान और भविष्य की भूमि का सर्वेक्षण योग्य नेविगेशन, राजस्व में वृद्धि और उचित प्रशासन के रूप में हुआ था।"[29]

पहली जरूरत भौगोलिक ज्ञान की थी। 1757 ई. में जब क्लाइव अभी भी नवाबों की राजधानी मुर्शिदाबाद में था, तो उसने ईस्ट इंडिया कंपनी में प्रस्ताव दिया कि यदि सटीक और उपयोगी भौगोलिक सर्वेक्षण किया जा सके। तो हमें लाभकारी सीमाओं का निपटान करने में सहायता होगी। तदनुसार, नई भूमि नीतियों के अंतर्गत एक सर्वेयर (1761 ई. में) नियुक्त किया गया था, और 1767 ई. में, कंपनी द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर दीवानी अधिकार प्राप्त करने के दो साल बाद, मेजर जेम्स रेनेल को बंगाल का सर्वेयर-जनरल बनाया गया। रेनेल की 'बंगाल और बिहार एटलस' 1779-81 ई. में दिखाई दी, और 1782-92 में 'हिंदोस्तान का नक्शा' नामक दस्तावेज सामने आया।

रूट मैप तैयार करने के लिए हर सेना के साथ सर्वेयर भेजे गए। सैन्य भूगोल के महत्त्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1790 ई. में जब गवर्नर जनरल ने मैसूर के सुल्तान टीपू के खिलाफ कमान संभाली, तो उन्होंने अपने निजी कर्मचारियों को सर्वेयर-जनरल नियुक्त किया।

द ट्रिगोनोमेट्रिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया:

1799 ई. में टीपू सुल्तान के अवसान ने कंपनी के क्षेत्र को पूर्वी तट से पश्चिम तक फैला दिया। जिस तरह प्लासी में रेनेल था, उसी तरह श्रीरंगपट्टम में रेनेल के सर्वेक्षण के विपरीत (जो पारंपरिक, मार्ग सर्वेक्षण शैली में चलाया गया था) लैंबटन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर भौगोलिक विज्ञान के महत्त्व को रेखांकित किया।

मेजर विलियम लैंबटन (1753 ई.-1823 ई.) ने फ्रांस और इंग्लैंड में हाल ही में शुरू किए गए सर्वेक्षणों की तर्ज पर अपना मॉडल तैयार किया। प्रायद्वीपीय भारत का त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण 1800 ई. में से चलाये जाने वाले हाथ उपकरणों के साथ शुरू किया गया था। 1 जनवरी 1818 ई. को सर्वेक्षण को ग्रेट ट्रिगोनोमेट्रिकल सर्वे ऑफ इंडिया (जीटीएस) का नाम दिया गया और पूरे देश को कवर करने के लिए इस दिशा में आगे कदम बढ़ाया गया। यहां तक कि ट्रांस-हिमालयी क्षेत्र को भी पूरी तरह से कवर किया। जीटीएस 1830 ई. में लेफ्टिनेंट कर्नल सर जॉर्ज एवरेस्ट (1790 ई.1866 ई.) के अधीन आया, जिन्हें आगे चलकर सर्वेयर-जनरल भी नियुक्त किया गया था। जीटीएस ने बड़ी सटीकता के साथ बड़ी संख्या में स्थानों के देशांतर और अक्षांश का मान तय किया। भारत में इतने बड़े भूसर्वेक्षन के सटीक आंकडे, आर्कडेकन जॉन हेनरी प्रैट (1808-71 ई.) के महत्त्वपूर्ण 'भू-स्थानिक सिद्धांत' और 'पृथ्वी का गणितीय मॉडल' में मिलचा है। जिसे एवरेस्ट भूगोल के रूप में जाना जाता है। 1787 ई. की शुरुआत में, ब्रिटिश सर्वेक्षण सभा के संस्थापक जनरल विलियम रॉय के अनुसार "कोरोमंडल तट और बंगाल में अक्षांश की एक डिग्री की लंबाई निर्धारित करना बहुत आवश्यक है। रेनेल और अलेक्जेंडर डेलरिम्पल, लंदन में कंपनी के हाइड्रोग्राफर के रुप में एक संयुक्त बयान दिया: " हमारे लिए विज्ञान की मदद से जो भी लाभ पृथ्वी के आंकड़े के सटीक निर्धारण से प्राप्त हो सकता है, कोई अन्य लाभ इसकी बराबरी नहीं कर सकता।"[30]

कृषि और पशुपालन

खेती और पशुपालन भारत दो सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियां थीं। उनमें औपनिवेशिक सरकार के हित हालांकि चयनात्मक और आत्म केंद्रित थे। कृषि में उनकी रुचि केवल निर्यात में थी। "जानवरों के बीच लंबे समय तक कंपनी का ध्यान केवल घोड़ों पर केंद्रित था जो सेना में सेवा के लिए आवश्यक समझे जाते थे। बंगाल में 1779 ई. की शुरुआत में एक सेना विभाग स्थापित किया गया था, और 1784 में बिहार में एक गाँव के पास एक विशाल 1350

एकड़ की भूमि पर घोड़ा प्रजनन फार्म स्थापित किया गया था। 1808 में जिसका चार्ज एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पशु चिकित्सक, विलियम मूरक्रॉफ्ट (1767 ई.-1825 ई.) को सौंप दिया गया था, जिसे एक भौगोलिक खोजकर्ता के रूप में भी जाना जाता है।"[31] 1874 ई. में खेती को लगभग बंद कर दिया गया था। यूरोप के विकास ने सामान्य रूप से अन्य मवेशियों को भी देखने के लिए कंपनी को मजबूर किया। 1865 ई.-1867 ई. के दौरान ब्रिटेन में गंभीर मवेशी प्लेग (rinderpest) महामारी से प्रभावित, 1869 ई. में एक भारतीय मवेशी प्लेग आयोग की स्थापना की गई थी।

कर्नल जॉन हर्बर्ट ब्रोकेनकोट हॉलन (1829 ई. - 1901 ई.), बॉम्बे सेना में प्रमुख पशु चिकित्सा सर्जन। इसकी सिफारिश पर, 1890 ई. में पूना में एक इम्पीरियल बैक्टीरियलोलॉजिकल प्रयोगशाला की स्थापना की गई और डॉ० अल्फ्रेड लिंगार्ड ने इसका प्रमुख नियुक्त किया। आमतौर पर, कुछ वर्षों के लिए, लिंगार्ड ने मुख्य रूप से घोड़ों में सुरा की जांच पर काम किया। उनकी सिफारिश पर, 1893 ई. में प्रयोगशाला को कुमा की पहाड़ियों में मुक्तसर में स्थानांतरित कर दिया गया था। सर्दियों के महीनों के दौरान निरंतर गतिविधि के लिए, बरेली जिले के इजतनगर में, मैदानी इलाकों में एक शाखा खोली गई थी। नाम को 1925 ई. में एक अधिक प्रभावशाली इंपीरियल पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान में बदल दिया गया।

परिधि पर भारतीय

मैदान से पौधों का संग्रह, नमूनों की तैयारी और उनके रेखाचित्र खींचना एक यूरोपीय प्रकृतिवादी परियोजना के महत्त्वपूर्ण हिस्से थे। ये कार्य भारतीयों को सौंपा गया था। चित्र और नमूनों के स्वामित्व को बनाए रखने के लिए, अंशकालिक प्रकृतिवादियों ने कंपनी को बिल देने के बजाय अपने कर्मचारियों को अपनी जेब से भुगतान करना पसंद किया, जैसा कि बुकानन और रोक्सबर्ग ने अपने नुकसान के लिए किया था। नमूनों और कागज की रक्षा करने के लिए जिस पर उन्हें चींटियों के हमलों से बचाया गया था, लकडी के अलमारियाँ के पैरों को पानी के गर्त में डुबो कर रखा गया था। वाष्पीकरण द्वारा खोए पानी को फिर से भरने के लिए, एक 100 व्यक्ति को काम पर रखा गया था, जिसका काम शाम को छाया आने तक पानी से भरे कुंडों को रखना था। कलकत्ता गार्डन में इसके स्टाफ के कलाकार थे। कई यूरोपीय लोगों ने उनके लिए काम करने वाले कलाकारों के नाम दर्ज करने की जहमत नहीं उठाई। अन्य मामलों में, हम नाम जानते हैं लेकिन कुछ और नहीं।

हमारी हताशा के लिए, लेकिन आश्चर्य की बात नहीं है कि इतना नियोजित कोई भी भारतीय किसी भी खाते को पीछे नहीं छोड़ता है। जो भारतीय पहली बार चौकस यूरोपीय आंख के नीचे वनस्पतियों को स्केच करने के लिए ले गए थे, वे चित्रकला परंपरा वाले परिवारों से आए थे। हाल के दिनों में, यह जांचने में रुचि रही है कि ये कलाकार कैसे काम करते हैं, दो अलग-अलग परंपराओं के संयोजन का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस छोर पर, बिखरे हुए जानकारी के टुकड़े और टुकड़े एकत्र किए गए हैं और एक प्रासंगिक खाता बनाने का प्रयास किया गया है। मद्रास प्रेसीडेंसी में अपने 27 साल के करियर में, वाइट ने दो तेलुगु कलाकारों को नियुक्त किया। रंगिया ने 1826 ई. में 1845 ई. तक वाइट्स के आगमन से और 1845 ई. में पूर्व के शिष्य गोविंदू से 1853 ई. में वाइट्स के रिटायरमेंट तक काम किया। रंगिया को विलियम ग्रिफिथ द्वारा माइक्रोस्कोप का उपयोग सिखाया गया था। यहां तक कि गोविंदू को जेनेरिक नाम गोविंदू में अमर कर दिया। रंगिया ने वाइट्स के पूर्ववर्ती के रूप में अच्छी तरह से सेवा की हो सकती है, और गोविंदू ने ह्यूग क्लीघोर्न और रिचर्ड हेनरी बेडडोन (1830 ई.-1911 ई.) के लिए मद्रास में पोस्ट-वाइट काम करना जारी रखा। ध्यान दें कि केवल उनके पहले नाम ही रिकॉर्ड में हैं। रुंगिया राजू समुदाय के थेय गोविंदू शायद उससे संबंधित था। यह बताने के लिए अप्रत्यक्ष सबूत हैं कि उनके पूर्वजों ने तंजौर के राजाओं के लिए काम किया था। यह अनुमान लगाया गया है कि क्या शुरुआती दक्षिण भारतीय वनस्पतियों को कपड़ा या अभ्रक पेंटिंग से यूरोपीय प्राकृतिक इतिहास में स्थानांतरित किया गया था। उत्तर भारत के कलाकार मंदिर के बजाय शाही दरबारी परंपरा से आते हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा के लिए उल्लेखनीय एक चित्रकार, लछमन सिंह या लक्ष्मण सिंह हैं जो कलकत्ता उद्यान में कार्यरत थे। उन्होंने जॉर्ज पॉटर के चित्र को चित्रित किया।

मुर्शिदाबाद शैली 1828 ई. में, जब वालिच यूरोप से दूर था। उनकी सेवाओं को रोले ने सहारनपुर में उधार लिया था जहाँ उन्होंने तीन प्राणी चित्र बनाए थे। दिलचस्प बात यह है कि लछमन सिंह ने पंजाब पहाड़ी राज्यों में से एक में कोर्ट पेंटर के रूप में काम करने के लिए मंत्र दिया।[32] लेकिन, एक बार जब लिथोग्राफी की नई कला शुरू की गई, तो प्रतिभाशाली व्यक्ति जिनका पेंटिंग के साथ कोई पूर्व संबंध नहीं था, वे पेशेवर बन सकते हैं। यह एक व्यापक घटना का हिस्सा था। पारंपरिक जाति के पेशे के समीकरण ने एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। पुराने प्रोफेशन जो अपेंटिसशिप के माध्यम से सीखे गए थे, पहले की तरह संबंधित जाति के संरक्षण में बने रहे। लेकिन अगर शिक्षण

संस्थानों में एक पेशा पढ़ाया जाता है, तो यह जाति से अलग हो गया। परिभाषा के अनुसार नए पेश किए गए पेशों में कोई जातिगत धारणा नहीं थी और इसे किसी एक द्वारा अपनाया जा सकता था।

विचार-विमर्श

जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई थी तो आधुनिक विज्ञान अभी तक अस्तित्व में नहीं आया था। विज्ञान एक वैज्ञानिक और औद्योगिक यूरोप का निर्माण तीन तरीकों से हुआ। दूसरे, एशिया से प्राकृतिक उत्पादन-आधारित प्रक्रियाओं और अनुभवजन्य प्रौद्योगिकियों की शुरूआत ने यूरोप को औद्योगिक और वैज्ञानिक अनुसंधान करने के लिए प्रेरित किया जिससे औद्योगिक क्रांति हुई। तीसरा, यूरोप को प्रकृति में इसकी पूर्ण वैश्विक विविधता और महिमा से परिचित कराया गया।

औपनिवेशिक विज्ञान का विकास एक जटिल और बहुआयामी घटना थी। कंपनी की आवश्यकताएं क्या थीं और यूरोपीय क्या थे विज्ञान के क्षेत्र में इस पर मांग करता है? भारत में विज्ञान के यूरोपीय पुरुषों ने खुद को कैसे संचालित किया? उनकी आत्म-धारणा क्या थी और उन्हें यूरोपीय सेवकों द्वारा कैसे देखा और व्यवहार किया जाता था? औपनिवेशिक योजना में भारतीय कहाँ खड़े थे? अपने अस्तित्व के कारण ब्रिटिश-प्रायोजित विज्ञान क्षेत्र विज्ञान था। भूगोल, भूविज्ञान, भूविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, जीवाश्म विज्ञान, पुरातत्व, चिकित्सा और यहां तक कि खगोल विज्ञान-ये सभी भारत की भौतिक और सांस्कृतिक नवीनता से उपजी हैं। ब्रिटिश शासक भारत में अपने हित के लिए विज्ञान में रुचि नहीं रखते थे, लेकिन अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए इसका उपयोग कर रहे थे। जब भी उनकी व्यावहारिक जरूरतों ने उंगली उठाई विज्ञान की एक विशेष शाखा की ओर, उस विज्ञान की ओर ध्यान दिया गया। विज्ञान को आगे बढ़ाते हुए इसे आगे भी बढ़ाया। इस प्रकार साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया में भारत को विश्व विज्ञान के क्षेत्र में एक स्टेशन स्टेशन के रूप में जोड़ा गया। यूरोप की विज्ञान में केंद्रीयता अनुशासन-विशिष्ट थी। यह भौतिकी और रसायन विज्ञान और उन पर आधारित प्रौद्योगिकियों में उपलब्धियों से उत्पन्न हुआ। यह वनस्पति विज्ञान और जूलॉजी तक विस्तारित नहीं हुआ।

निष्कर्ष

भारत में आधुनिक विज्ञान का प्रारंभिक उपयोग छिटपुट और स्थानीय जिज्ञासा से प्रेरित था। इसमें से अधिकांश का कोई समकालीन महत्त्व नहीं था और इसे बहुत बाद में जाकर विकास की प्रक्रिया में विज्ञान के मुख्य निकाय में शामिल किया गया था। इसके अतिरिक्त, इसने स्वयं भारतीयों को अछूता छोड़ दिया गया था। अपने अस्तित्व के कारण ब्रिटिश-प्रायोजित विज्ञान क्षेत्र विज्ञान था। भूगोल, भूविज्ञान, भूविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, जीवाश्म विज्ञान, पुरातत्व, चिकित्सा और यहां तक कि खगोल विज्ञान-ये सभी भारत की भौतिक और सांस्कृतिक नवीनता से उपजी हैं। ब्रिटिश शासकों को भारत में अपने हित के लिए विज्ञान में दिलचस्पी थी। जब भी उनकी व्यावहारिक जरूरतों ने विज्ञान की किसी विशेष शाखा की ओर उंगली उठाई, तो उसी विज्ञान पर ध्यान दिया गया। भौगोलिक और नौसैनिक सहायता के रूप में खगोल विज्ञान भारत में लाया जाने वाला पहला आधुनिक विज्ञान था। भौतिक विज्ञान कभी भी औपनिवेशिक विज्ञान का हिस्सा नहीं बना। मिशनरियों ने भारतीयों के साथ बातचीत की और इसे यूरोपीय मुख्यधारा में शामिल करने की दृष्टि से अपने ज्ञान- विज्ञान का दस्तावेजीकरण प्राम्भ किया।

संदर्भ सूची

1. आचार्य प्रसन्न कुमार, डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, पृ.-56
2. प्रोसीडिंग्स ऑफ भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली, पंचम खण्ड, पृ.-12
3. सनत कुमार चटर्जी, (संपादित), द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया वॉल्यूम v पृ.-44
4 डी.एम. बोस, एस. एन. सेन और सुब्बाराय्यपा (संपादित) कंसाइस हिस्ट्री ऑफ़ साइंस इन इंडिया, पृ.-89
5. आचार्य प्रसन्न कुमार, डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, पृ.-60
6. जॉर्ज फोर्ब्स, हिस्ट्री ऑफ एस्ट्रोनोमी, पृ.-111

7. सनत कुमार चटर्जी, (संपादित) द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया वॉल्यूम v, पृ.-52

8. डेविड नाव्रो फ्रैले, वैदिक साहित्य में गणित, भारतीय विज्ञान इतिहास जर्नल अगस्त 1994, पृ.-8

9. डब्ल्यू सी. डैम्पियर, विज्ञान का इतिहास और दर्शन तथा धर्म के साथ इसके संबंध, पृ.-54

10. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-82

11. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-83

12. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-24

13. तारा चंद, भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, पृ-123

14. तारा चंद, भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, पृ-123

15. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-46

16. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-46

17. जी.एन. मुखोपाध्याय, इतिहास ऑफ़ इंडियन मेडिसिन (खंड-3), पृ.-11

18. जी.एन. मुखोपाध्याय, इतिहास ऑफ़ इंडियन मेडिसिन (खंड-3), पृ.-11

19. जी.एन. मुखोपाध्याय, इतिहास ऑफ़ इंडियन मेडिसिन (खंड-3), पृ.-23

20. जी.एन. मुखोपाध्याय, इतिहास ऑफ़ इंडियन मेडिसिन (खंड-3), पृ.-28

21. सी. ल्यूण्ड, मेडिसिन इन इंडिया, पृ.-34

22. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-63

23. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-63

25., वी.सी. भटनागर, सवाई जय सिंह, पृ.-74

27. आर. डेसमंड, द यूरोपियन डिस्कवरी ऑफ द इंडियन फ्लोरा, पृ.-92

28. आर. कोचर, ब्रिटिश भारत में विज्ञान। पृ.-63

29. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-88

30. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-98

31. बर्किल, भारत में वनस्पति विज्ञान के इतिहास पर अध्ययन, (कलकत्ताः बॉटनिकल सर्वे ऑफ इंडिया, 1965), पृ.-65

32. डी. आर. हेड्रिक, सामाज्य के उपकार उन्नीसवीं शताब्दी में प्रौधोगिकी और यूरोपीय साम्राज्यवाद, पृ.-19

अध्याय-दो

हिन्दी में विज्ञान सन्बन्धी चिन्तन
भारतेन्दु युग (1850 ई. से 1900 ई.)

जब हम समाज के वैज्ञानिक विकास की बात कर रहे होते हैं तब निश्चय ही हमारा आशय समाज की बेहतरी से होना चाहिए। किसी समाज विशेष में विज्ञान का विकास एक बात है और विज्ञान के विकास का जन-सामान्य की चेतना के विकास पर सकारात्मक प्रभाव और फलस्वरूप समाज का वैज्ञानिक विकास एकदम दूसरी बात है। इन दोनों में अनिवार्य सम्बन्ध हो ही, यह कहा नहीं जा सकता क्योंकि इन सम्बन्धों को अर्थ देने वाली शक्तियाँ और कारक राजसत्ता के प्रत्यक्ष नियंत्रण में होते हैं। 'राबर्ट ग्रॉसोतेस्त'[33] (1168 ई. -1253 ई.) के ज़माने या उससे भी पहले से लेकर आज के लोकतान्त्रिक युग तक में आसानी से यह बात देखी जा सकती है कि "आधुनिक विज्ञान राजसत्ता के साथ कदम मिला के चला है।[34] आधुनिक विज्ञान पदावली वास्तव में कट्टर मध्य युग (चर्च की सत्ता) के पतन के आस-पास उदय होने वाले विज्ञान के बारे में प्रयोग की जाती है। कट्टर मध्य युग के पतन के बाद पुनर्जागरण काल, उसके बाद का युग और उसके भी बाद औद्योगिक क्रान्ति (1760 ई. 1830 ई.) से लेकर आज तक का समय विज्ञान की प्रगति का लगातार साक्षी है। मध्य युग या उससे पूर्व के विज्ञान तथा आज के विज्ञान में अन्तर केवल इतना है कि तब (दसवां-ग्यारहवां शताब्दी में) विज्ञान को धर्म की कसौटी पर कस कर देखा जाता था और आज उसे अर्थव्यवस्था के हितसाधक के रूप में। एक प्रकार से विज्ञान की सामाजिकता भी इन्हीं नियामक शक्तियों से तय होती है लेकिन इन शक्तियों में ही स्वाभाविक तौर पर विज्ञान के समाज से कटाव की संभावना को बलवती बनाने वाले कारकों के अंकुर भी छिपे रहते हैं जो राजसत्ता का प्रश्रय पाकर प्रस्फुटित हो जाते हैं और तब विज्ञान का एकांगी विकास (केवल ऊर्ध्व, क्षैतिज नहीं) शुरू हो जाता है जिसमें हम चाँद और मंगल तथा अंतरिक्ष के अन्य स्थानों तक पहुँचने की जुगत लगाते हैं - करोड़ों भूखी-नंगी जनता की परवाह किये बगैर।

भारतीय समाज के सन्दर्भ में विचार करें, तो देखेंगे कि, एक जमाना था जब ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों से सामान्य जनमानस को दूर रखा गया, फिर एक जमाना ऐसा आया जब भारतीय समाज में से विज्ञान लगभग गायब सा हो गया, उसका स्थान कलात्मकता ने लेना आरम्भ कर दिया (किसी भी एक भास्कराचार्य, वाराहमिहिर, आर्यभट्ट, रामानुजन, बोस, रमन आदि का नाम मुगल सल्तनत में सुनाई नहीं पड़ता)। इसके बाद एक जमाना आया (यूरोप में खासकर- इंग्लैंड में, 1760 ई. के बाद। भारत में कह लें लगभग इसके भी 100 वर्षों बाद यानि 1860 ई. के बाद) जब विज्ञान को प्रौदयोगिकी और फिर उदयोग से जोड़ दिया गया। चिन्तन और दर्शन के धरातल को छोड़कर विज्ञान कारखानों में जा बैठा और अब विज्ञान से वही काम लिया जाने लगा जिससे अधिकाधिक उत्पादन हो सके और

साम्राज्यवादी शक्तियों की बाज़ार और अपने उपनिवेशों पर पकड़ और मजबूत हो सके। इस प्रक्रिया में हुआ यह कि, विज्ञान जन-सामान्य की अभिरुचि का विषय न रह सका और परिणामस्वरूप विज्ञान के विकास में जन सामान्य की भागीदारी उत्तरोत्तर कम होती गई और इसका सीधा परिणाम वही हुआ जो होना था-जनता का दुःख-दर्द, उसकी चिन्तायें विज्ञान की प्रगति का नियामक कारक न बन सकीं और विज्ञान का स्वतन्त्र और अवैज्ञानिक विकास होता रहा। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि आज हमारे देश में विज्ञान की प्रयोगशालाओं में बहुत कुछ हो रहा है, हम अंतरिक्ष तक की सैर कर आये हैं और आगे भी बड़ी-बड़ी योजनायें हैं, युद्धास्त्रों, पर्यावरण आदि-आदि पर पक्ष-विपक्ष में तमाम तरह की चर्चायें होती रहती हैं लेकिन "उस अनुपात में समाज के भीतर वैज्ञानिक चेतना नहीं दिखती है।"[35] भारतीय समाज में विज्ञान के विकास और आम वैज्ञानिक चेतना के विकास के बीच यह खाई क्यों पैदा हुई? इसके सम्भावित कारणों की और अधिक जाँच-पड़ताल आगे की जा रही है।

"The colonizers were fully aware of the importance of science as a very effective instrument of colonization and control. Their concept of science was closely related to the needs of the empire."[36]

औपनिवेशीकरण तथा सत्ता पर नियन्त्रण के लिए एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावी अस्त्र के रूप में, अंग्रेज़, विज्ञान से भली-भाँति परिचित थे। विज्ञान सम्बन्धी उनकी अवधारणा सीधे-सीधे अंग्रेजी साम्राज्य के हितसाधन के अनुरूप और अनुकूल थी, और चूंकि, व्यापार तथा राजनीति के मिले-जुले तथा एक दूसरे पर निर्भर स्वरूपों की मदद से वे भारत पर शासन कर रहे थे इसलिए विज्ञान को उन्होंने व्यापारोन्मुख बनाने का भरपूर प्रयास किया और सफल भी हुए तथा अंग्रेजों ने यह भी ध्यान रखा कि विज्ञान का यह ज्ञान अनायास ही बिना उनकी कृपा और इच्छा के, भारतीयों को न मिल सके। इसके लिए उन्होंने ऐसी शिक्षा नीतियाँ तैयार की जिससे विज्ञान-विषय आम भारतीयों की रूचि का विषय ही न रह गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि, पठन-पाठन हेतु विद्यालयों/पाठशालाओं में ज्ञान-विज्ञान की भाषा अंग्रेज़ी हो, अंग्रेजों की शिक्षा नीति (मैकॉले, 1833 ई.) का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। इतना ही नहीं बेहतर तो उन्होंने यही समझा कि विज्ञान की शिक्षा भारतीयों को दी ही ना जाये।

"The colonial government at first ignored science education."[37]

इसके अतिरिक्त उन्होंने हमारी अपनी ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों और उनकी परम्पराओं का जमकर मज़ाक उड़ाते हुए भारतीयों के मन में इनके प्रति एक स्वाभाविक अनुत्साह भरने की भी चेष्टा की। वे कहा करते थे कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान इतना पुराना और बूढ़ा हो गया है कि उसमें से चमक जा चुकी है, उसे पिछड़ेपन और गैर आधुनिकता ने ग्रस लिया है।

"India is too old to be rational ... only the litmus test of British colonialism will usher the sub-continent into rationalism and modernity."[38]

विज्ञान का विकास, औपनिवेशिक युग में सीधे-सीधे राज्य-शक्ति के निर्देशों का गुलाम रहा है। उस समय स्वाभाविक रूप से अंग्रेज़विज्ञानवेत्ता ही भारत में वैज्ञानिक विकास में सक्रिय रहे। प्रशासन के अधिकाधिक हस्तक्षेप के कारण वैज्ञानिकों और विषय में रूचि लेने वाले चिन्तकों ने ऊबकर स्वायत्त वैज्ञानिक गोष्ठियों के संस्थापन और संचालन का दायित्व संभाला। यह सब उन्नीसवां सदी के उत्तरार्द्ध में हो रहा था।

अधिकाधिक प्रशासनिक हस्तक्षेप से विज्ञान के विकास को जो धक्का पहुँच रहा था उससे अंग्रेज भी परिचित हो चले थे। उन्होंने इसे अपनी प्रतिष्ठा में आँच समझने के क्रम में कई वैज्ञानिक समितियों की स्वायत्तता को मंजूरी दे दी थी।

भारत में वैज्ञानिक चेतना के विकास का यह सर्वोत्तम समय था। यह वही समय था जिसमें कुछ अंग्रेज वैज्ञानिकों ने, जो भारत में रह रहे थे, भारतीय ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों पर स्वतन्त्र भाव से उदारतापूर्वक विचार कर नये और महत्त्वपूर्ण काम करने के लिए प्रेरित हुए और कहने में कोई संकोच नहीं कि इससे भारतीय जन-समुदाय को निश्चित रूप से बहुआयामी लाभ पहुँचा। चर्चा को दुरूह बनाने से बचने तथा अनावश्यक विषयान्तर की संभावना को टालने के लिए यहाँ इन वैज्ञानिकों के योगदानों की विस्तृत चर्चा न कर केवल सूचना के लिए संकेत करना चाहूँगा कि थॉमस ओल्डहैम (Thomas Oldhamm) तथा रॉनल्ड रॉस (Ronald Ross) दोनों औपनिवेशिक काल के ही प्रसिद्ध जन्तु वैज्ञानिक थे और इन्होंने क्रमशः जननांकीय (Demographic) तथा मलेरिया संवाहक प्रोटोजोआ (Malaria vector) सम्बन्धी अध्ययन में अपना योगदान दिया। रॉनल्ड रॉस के मलेरिया वेक्टर सम्बन्धी अध्ययन से उस समय भारत में मलेरिया की रोकथाम में विशेष मदद मिली।

यह तो रही संक्षिप्त चर्चा जिसमें स्वायत्त वैज्ञानिक समितियों के गठन के लिए उत्तरदायी कारक तथा अंग्रेजों द्वारा भारतीय ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों तथा विशेषकर भारतीयों के लिए कछ भला करने की मंशा से अंग्रेजों ने आगे कदम बढ़ाया। भला कितना हुआ या नहीं, यह एक अलग विवेचन का विषय है, लेकिन इतना परिवर्तन तो भारतीयों में अवश्य हुआ कि वे हतोत्साह और हीन मनोभावना के संकीर्ण और पीड़ादायक दायरे से बाहर निकलकर अपने ज्ञान-विज्ञान पर लिखने पढ़ने लगे, अपनी भाषा में विज्ञान की आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा और मौलिक-अमौलिक (अनुवाद कार्य) सभी प्रकार के प्रयास शुरू हो गये। एक महत्त्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह रही कि अनेक ऐसी भारतीय प्रतिभायें इस संकट काल में सामने आई जिनका काम न सिर्फ अंग्रेजों के काम से गुणात्मक रूप में भिन्न था बल्कि दूरगामी प्रभाव वाला था। ऐसी प्रतिभाओं में कुछेक नाम इस प्रकार हैं

(1) मास्टर रामचन्दर (2) शुभाजी बापू (3) ओऽकार भट्ट (4) जगदीश चन्द्र बोस (5) आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय (6) अक्षय दत्त आदि।

ये सभी महानुभाव किसी न किसी रूप में, अभी मैं ऊपर जिन, स्वायत्त समीतियों, की चर्चा कर रहा था से जुड़े हुए थे। पुनः केवल सूचना के लिए बता दूं कि ऐसी स्वायत्त समीतियों में कुछेक जो अत्यन्त ही प्रभावशाली तरीके से काम कर रही थीं उनमें से प्रमुख समीतियों के नाम इस प्रकार हैं-

(1) 'अलीगढ़ साइन्टिफिक सोसायटी', इसके संस्थापक सैय्यद अहमद खान थे। इसकी स्थापना 1864 ई. में हुई थी।

(2) 'बिहार साइन्टिफिक सोसायटी', इसके संस्थापक सैय्यद इम्दाद अली थे। इसकी स्थापना 1868 ई ० में हुई थी।

(3) 'इण्डियन असोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइन्स' विज्ञान के विकास के लिए भारतीय संगठन', इसकी स्थापना 1876 में हुई थी। इसके बारे में खास बात यह है कि यह पूर्णतः भारतीय प्रबन्ध समीतियों दवारा संचालित वैज्ञानिक संस्था थी। कहीं से भी किसी प्रकार की सरकारी मदद इसे प्राप्त नहीं थी।

"In 1876, M.L. Sarkar established the Indian Association for the Cultivation of Science. This was completely under Indian management and without any government aid or patronage."[39]

इतना ही नहीं 1887 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी मद्रास में अपने तृतीय अधिवेशन में, जो बदरूद्दीन तैय्यबजी की अध्यक्षता में बुलाया गया था, पहली बार "भारतीयों को तकनीकी शिक्षा" की बात उठाई।

"In its third session (1887), the Indian National Congress took up the question of technical education and has since then passed resolutions on it every year."[40]

1893 में पुनः कांग्रेस ने सरकार से मांग की कि भारत में चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा के लिए एक ऐसी संस्था खोली जाए जिसमें भारतीय प्रतिभाओं को समुचित स्थान मिल सके और इन प्रतिभाओं के साथ न्याय हो सके।

"In 1893 ई., the congress passed a resolution asking the government to raise a scientific medical profession in Indian by throwing open fields for medical and scientific work to the best talent available and indigenous talent in particular."[41]

इसी के साथ 1904 ई. का विश्वविद्यालय अधिनियम पारित होता है तथा जमशेदजी टाटा के सहयोग से 1909 ई. में भारतीय विज्ञान संस्थान (Indian Institute of Science, IISC.) की स्थापना बैंग्लूर में होती है। आज, यह देश की सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्थाओं में से एक है। फिर इसके बाद 1914 ई. में भारतीय विज्ञान कांग्रेस संगठन (Indian science Congress Association ISCA) भी अस्तित्व में आ जाता है और फिर इसके बाद से भारत में, सांगठनिक स्तर पर, विज्ञान के विकास को पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। तब से लेकर आज तक कितनी ही वैज्ञानिक संस्थाओं, सभाओं, गोष्ठियों का संस्थापन हो चुका है और हम सब इन पचपन-छप्पन वर्षों की छोटी अवधि में भारत में वैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित इनके योगदानों से अवगत हैं। अभी तत्काल इन सबकी चर्चा करने का समय नहीं है। कहना अब यह है कि इन तमाम तरह की घटनाओं जिनकी चर्चा ऊपर की गई है की वजह से भारतीयों में विज्ञान के प्रति अतिरिक्त रूझान, उत्साह और समर्पण की भावना का विकास होना बहुत स्वाभाविक था। सो हुआ भी और परिणाम यह हुआ कि अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की कमी खलने लगी क्योंकि वे लोग जिन्हें अंग्रेज़ी और फारसी नहीं आती थी, केवल हिन्दी या उनकी अपनी क्षेत्रीय भाषायें यथा बाँग्ला, असमिया आदि ही आती थी के लिए, विज्ञान में कुतूहलवश लाख रूचि होने के बावजूद भी लाचारी का ही सामना करना पड़ता था। इस समस्या की ओर शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने 'भूगोल हस्तामलक' की भूमिका में संकेत किया है तथा मैंने भी यथास्थान इसी

अध्याय में 'भूगोल' हस्तामलक का संदर्भ लेकर इस समस्या को प्रकाश में ला दिया है। इसी संदर्भ में 1886 ई. में बालकृष्ण भट्ट की यह चिन्ता भी देखते चलिए।

"यह विदेशी ग्रन्थ चाहे किसी विषय के हों किन्तु अपने यहाँ के उस विषय पर अच्छी तरह लिखा गया हो तो मानो हम लोगों से यह प्रश्न करता है कि तुम्हारे यहाँ इस तरह के ग्रन्थ हैं? फिर यदि किसी ग्रन्थकार ने विदेशी बातों की खोज में कुछ लिखा है तो मानों वे ग्रन्थ हम हिन्दुस्तानियों को लज्जित करते हैं कि तुम कोदापि हमारे बराबर होने लायक नहीं हो। जब तुम्हें अपने ही यहाँ के घर की खबर नहीं तो दूसरे को क्या सहायता पहुँचा सकते हो?"[42]

कहना न होगा, भट्ट जी की यह चिन्ता उस समय के जागरूक और शिक्षित व्यक्तियों की आम चिन्ता थी। लोगों को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अपनी भाषा में साहित्य निर्माण की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। इस दिशा में, प्रारम्भिक स्तर पर शुरूआत, पाठशालाओं/मदरसों के लिए विज्ञानादि विषयों पर छोटी-छोटी पाठ्यपुस्तकों की रचना के रूप में हुई।

भारतेन्दु युग (1850 ई.-1900 ई.) में हिन्दी साहित्य में विज्ञान लेखन की चर्चा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के 'भूगोल हस्तामलक' और विदयांकर' के बिना अधूरी समझी जायेगी। ये दोनों पुस्तकें बच्चों में विज्ञान के प्रति रूचि पैदा करने के उद्देश्य से 'सरकारी हुक्म' के मुताबिक पाठ्यपुस्तकों के रूप में तैय्यार करवाई गई थीं। इन दोनों ही पुस्तकों में अपने-अपने ढंग से विज्ञान के कुछ रोचक और महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। ये दोनों ही पुस्तकें शिवप्रसाद जी ने नागरी लिपि में लिखी है।

भूगोल हस्तामलक' और 'विद्यांकुर' की भूमिका देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैसे तो ये पुस्तकें विशेष तौर पर बालकों के लिए ही रची गई थीं किन्तु नागरी लिपि में और सरल भाषा में विज्ञान की पुस्तकों/लिखित सामग्रियों का उस समय सर्वथा अभाव होने के कारण ये पुस्तके विषय में रूचि लेने वाले किसी भी उम्र के पाठक के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हुई होंगी।

"प्रगट हो कि हमने इस ग्रन्थ को आरम्भ करने के लिए लेखनी उठाई तो मन का यह संकल्प था कि एक छोटी सी पुस्तक ऐसी रचें जिससे बालकों को यह सारा भूगोल हस्तामलक हो जाये; पर होते-होते विस्तार बहुत बढ़ गया,

चार सौ पृष्ठ की इतनी बड़ी पुस्तक में भी पूरा न पड़ा और केवल एशिया का वर्णन होने पाया। यदि बालक भिन्न युवा और वृद्ध भी इस ग्रन्थ को पढ़ेंगे तो निश्चय है कि उनका परिश्रम व्यर्थ न जाएगा वरन् हमारे देश के राजाबाबू और महाजनों को, जो हिन्दी छोड़कर और कुछ भी नहीं जानते और न उनकी ऐसी अवस्था है कि पाठशाला में जा सकें, अब अंग्रेजी और फारसी सीखें यह ग्रन्थ बड़ा ही उपकारी होगा।"[43]

ऊपर की रेखांकित पंक्तियों को सावधानीपूर्वक पढ़ने से एक बात, जिसकी ओर पहले भी संकेत किया गया कि, उस समय तक हिन्दी में ज्ञानविज्ञान पर प्रकाशित सामग्री का सर्वथा अभाव रहा होगा, और भी स्पष्ट हो जाती है। शिवप्रसाद जी ने साफ-साफ कहा है कि "जो हिन्दी छोड़कर 3 भी नहीं जानते और न उनकी ऐसी अवस्था है कि पाठशाला में जाके अब अंग्रेजी और फारसी सीखें, यह ग्रन्थ बड़ा ही उपकारी होगा' कहने का मतलब यह कि अंग्रेजी और फारसी में तो ज्ञान-विज्ञान पर लिखित और प्रकाशित सामग्रियाँ अवश्य ही रही होंगी किन्तु हिन्दी में ऐसी सामग्रियों के अभाव से केवल हिन्दी जानने वालों की पहुँच से वे बाहर भी रही होंगी, इसलिए यह ग्रन्थ विशेषकर (भूगोल हस्तामलक) उन्हें समर्पित है जो फारसी और अंग्रेजी नहीं जानने के कारण ज्ञान-विज्ञान की बातों से कुछ दूर हैं। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का यह प्रयास इस दृष्टिकोण से निश्चित ही सराहनीय और स्तुत्य।

अब विद्यांकुर की भूमिका की कुछ पंक्तियाँ देखिये

"शिमला में विलियम एडवाई के मातहत काम करते हुए पहाड़ी रियासतों में उनके स्कूलों के लिए मैंने चैम्बर की 'रूडिमेण्ट्स ऑफ नॉलेज' और 'इन्ट्रोडक्शन टू दी साइंसेज़' के शुरू के कुछ पन्नों को अपना आधार बनाते हुए नागरी लिपि में दो छोटी किताबें तैयार की थीं- 'मालूमात' और 'भूगोल' | यह किताब (मालूमात) नागरी में विद्यांकुर' और फारसी लिपि में 'हकाईकुल मौजूदात' के नाम से देहाती स्कूलों में पहले रीडर के रूप में इस्तेमाल होती रही है। मुझे पहली किताब लिखने को कहा गया।"[44]

विद्यांकुर की भूमिका के इस अंश से यह बात और भी स्पष्ट होती है कि उस समय (1876 ई. में जब यह भूमिका लिखी गई थी) हिन्दी में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का कार्य बच्चों के लिए छोटी-छोटी पाठ्य पुस्तक बनाकर शुरू किया गया। किन्तु यहाँ यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि, ये पुस्तकें ऐसा नहीं कि बाल-विज्ञान-साहित्य पर आरम्भिक पुस्तकें हों। बालोपयोगी-विज्ञानसाहित्य पर जो पहली पुस्तक का जिक्र मिलता है वह सन्

1873 ई. की एक पुस्तक 'शुद्धि दर्पण"[45] है। गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद से छपी इस पुस्तक के लेखक विधिचन्द्र हैं। यह पुस्तक बच्चों में स्वास्थ्य रक्षा और सफाई जैसे विषय के प्रति जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से लिखी गई है। 1876 ई. में विद्यांकुर के बाद हिन्दी में बच्चों के लिए विज्ञान पर एक और पुस्तक का ज़िक्र मिलता है, वह है, 1895 ई. में छपी 'जीव-जन्तु प्रथम भाग'। यह पुस्तक बिहार बंधु प्रेस, बांकीपुर से छपी थी व इसके लेखक लक्ष्मीनाथ शर्मा थे।

भारतेन्दु युग (1850 ई.-1900 ई.) में हिन्दी में विज्ञान-विषयक साहित्य के अन्तर्गत कैसी भाषा का प्रयोग होता रहा तथा आम रूचि के कौन-कौन से विषय विज्ञान-साहित्य में स्थान पाते रहे इसका एक नमूना 'विद्यांकुर की भूमिका' तथा पाठ में दिखाई पड़ता है। सच कहें तो 'विद्यांकुर' का महत्त्व ही इस बात में है कि, इसके माध्यम से उस समय (भारतेन्दु युग में) हिन्दी में विज्ञान लेखन से जुड़ी हुई भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों और चुनौतियों पर प्रकाश पड़ता है। इन बातों को और ठीक से समझने के लिये यहाँ आगे "विद्यांकुर' की भूमिका तथा उसके पाठ की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

विद्यांकुर की भूमिका तथा उसके पाठ की संक्षिप्त विवेचना

विद्यांकुर का प्रणयन शिवप्रसाद जी ने नागरी में 'देहाती-स्कूलों के लिए 'पहले रीडर' की विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के रूप में किया था। यह पुस्तक संवाद-शैली में लिखी गई थी। 'उस्ताद' और 'शार्गिद' के परस्पर संवाद के माध्यम से विज्ञान के बहुत से महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। अभी आगे इन पक्षों पर संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की जायेगी लेकिन इससे पहले एक समस्या, जिसकी ओर 'सितारे हिन्द' ने भी ध्यान खीचना चाहा है उसके बारे में दो शब्द।

“देशी भाषा के किसी अच्छे कोश के अभाव में यह बताना कुछ मुश्किल है कि किस सिद्वान्त के आधार पर शब्दों का चुनाव किया गया है।”[46]

यह जो मानक कोश की कमी थी वह उस समय अर्थात् उन्नीसवां सदी में हिन्दी में विज्ञान लेखन के विकास के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा थी। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य अपने 'बीज-वपन काल' या 'प्रथम उत्थान काल' के समय अपना विस्तार अनुवाद के माध्यम से कर रहा था, जो कि बहुत स्वामाविक था। हिन्दी में उस समय लिखने वाले

अधिकांश विज्ञान लेखक अपने लेखों में हिन्दी में अनगढ़ वैज्ञानिक शब्दावलियों के साथ उनके अंग्रेजी प्रतिस्थाप्य रख दिया करते थे जो पुनः एक समस्या थी या फिर सीधे-सीधे अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली का ही प्रयोग करते थे, उनके हिन्दी प्रतिस्थाप्य देते ही नहीं थे। इस कारण हिन्दी पाठकों के बीच अथवा हिन्दी प्रेमियों के बीच वैज्ञानिक चेतना के प्रसार की मूल समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती थी।

कुछ कुशल लेखक/साहित्यकार/चिन्तक/विचारक अनगढ़ हिन्दी शब्दावलियों से बचने के लिए, अमुक शब्द की हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत कर उसका अंग्रेजी प्रतिस्थाप्य लिखकर यह कह दिया करते थे कि अमुक शब्द को अंग्रेजी में यह (अमुक शब्द की अंग्रेज़ी प्रतिस्थाप्य) कहते हैं। इस सन्दर्भ में बालकृष्ण भट्ट के मनोविज्ञान नामक लेख से एक नमूना देखिए

"साधारण रीति पर विचार करने से निश्चय होता है कि हम लोगों का समस्त ज्ञान दो प्रधान भागों में विभक्त है, पहिला मूर्ति विषयक अर्थात् जड़ जगत सम्बन्धी दूसरा अमूर्ति विषयक अर्थात् अन्तर्जगत सम्बन्धी। अंग्रेज़ी में इन दोनों को Objective और Subjectiveज्ञान कहते है।"[47]

इसी प्रकार अन्य कई लेखक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलियों के हिन्दी प्रतिस्थाप्यों की अनुपलब्धता को टाल जाने के लिए लेखों को हास्यव्यंग्य शैली में लिखते रहे और कह देते थे अंग्रेज़ लोग अमुक शब्द को यह (कोई अंग्रेज़ी शब्द) कहते हैं। विशेषकर विज्ञान सम्बन्धी लेखों में यह पद्धति बहुत अपनाई जाती थी। महेन्दुलाल गर्ग (भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के संधिकाल के प्रमुख विज्ञान लेखक) का 'सरस्वती' (सितम्बर, 1904 ई.) में पेट की आत्मकहानी' नामक लेख से एक नमूना देखिये

पेट कहता है-

"शरीर नामक टापू के बीचों-बीच मेरी बस्ती है। आस-पास और भी कई बस्तियाँ हैं जिनसे मेरा बड़ा लेन-देन रहता है। मेरे एक गाँव का नाम 'आमाशय' है जो 'ठाकुर पाचन सिंह जी का सदर मुकाम है। आमाशय से नीचे एक और पहाड़ी है जिसको अंग्रेज लोग पैंक्रियास' कहते हैं।" आज पैंक्रियास का हिन्दी प्रतिस्थाप्य 'अग्नाशय' मालूम है। किन्तु विरले ही कहीं प्रयुक्त होता होगा।

इसी प्रकार कुछ लेख ऐसे भी देखने में आये हैं जिनमें वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलियों के हिन्दी रूपान्तरों की कमी को पूरा करने के लिए लेखक ने स्वयं ही एक नया शब्द गढ़ लिया था फिर किसी दूसरी भाषा यथा संस्कृत या अरबी-फारसी से उस वैज्ञानिक परिभाषिक शब्द का कोई समतुल्य उठाकर रख दिया। आज उन तमाम शब्दों के हिन्दी समतुल्य नितान्त भिन्न हैं। गुलेरी जी (पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी) का 'सरस्वती' (फरवरी-मार्च 1905 ई.) में 'आँख' शीर्षक से छपे लेख में से उद्धृत कुछ वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और उनके हिन्दी प्रतिस्थाप्य देखिये-

गुलेरी जी के शब्द	**अंग्रेज़ी वैज्ञानिक शब्दावली**	**वर्तमान हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यमें प्रचलित प्रतिस्थाप्य**
ताल	Lens	लेंस
अंशुनाभि	Focus	नाभि
नतोदर	Concave	अवतल
त्रिपार्श्व	Prism	प्रिज्म
उन्नतोदर	Convex	उत्तल

इस प्रकार हम यह समझ सकते हैं कि हिन्दी में ज्ञान राशि के कोश को समृद्ध करने में हिन्दी के उन्नायकों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, विशेषकर वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों के प्रसंग में इस परिभाषिक शब्दावली की समस्या की ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास' में सुधीजनों का ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा कि"हिन्दी भाषा के दवारा ही सब प्रकार के वैज्ञानिक विषयों का शिक्षा की व्यवस्था का विचार भी अब लोगों के चित्त में उठ रहा था। पर बड़ी भारी कठिनता परिभाषिक शब्दों के संबंध में।"[48]

अब प्रश्न यह उठना चाहिए कि पारिभाषिक शब्दों की इन 'बड़ी भारी कठिनता' के निवारण के लिए हिन्दी उन्नायकों ने क्या किया? उत्तर के रूप में और केवल सूचना मात्र देने के लिए बता देना चाहूँगा कि विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी रूपान्तर का एक वृहद् कोश- "वैज्ञानिक कोश' नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने

सन् 1906 ई. में प्रकाशित किया यह कोश बाबू श्याम सुन्दर दास के सम्पादन सहयोग से प्रकाशित किया गया था। इस 'वैज्ञानिक कोश' का महत्त्व तीन कारणों से है। एक तो यह कि उस समय नवोदित विज्ञान लेखकों को वैज्ञानिक शब्दावलियों के हिन्दी रूपान्तर में एकरूपता लाने में पर्याप्त सहायता मिली जिसके कारण आगे चलकर उस युग की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'सरस्वती', जो विज्ञानादि विषयों पर नये-नये किस्म के लेख आमंत्रित करती थी, के सम्पादक (1903 ई.-1920 ई. तक) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लेखकगण अपनी सधी हुई भाषा (पारिभाषिक, वैज्ञानिक शब्दों के हिन्दी रूपान्तरण के प्रसंग में भी) और विषय के प्रति अपेक्षित गम्भीरता, रूचि और परिपक्वता के द्वारा रिझाने में सफल हो सके तथा 'सरस्वती' में उनके लेखों को उचित स्थान मिलने लगा और हिन्दी का भण्डार बढ़ने लगा।

दूसरी बात वैज्ञानिक कोश के महत्त्व के बारे में यह है कि उन्नसवां सदी के अवसान और बीसवां सदी के नवोदय के बीच हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य जब अपनी शैशवावस्था में था उस समय नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की निधि में 'कोहिनूर' जमा करके एक प्रकार से हिन्दी -विज्ञान साहित्य के अक्षय निधि निर्माण का विधिवत श्री गणेश किया।

तीसरी और कदाचित् कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह है कि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित "वैज्ञानिक कोश', उस समय के हिन्दी सेवियों की विज्ञान के प्रति रूचि, जागरूकता और उसे विधिवत् हिन्दी साहित्य का अंग बनाने की ललक तथा इस कार्य में मार्ग आने वाली बाधाओं अथवा कठिनाइयों से मुक्ति पाने की चिन्ता तथा समाधान हेतु एक व्यवस्थित चिन्तन और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के विकास, प्रचार और प्रसार के प्रति उत्साह और समझ-बूझ का, परिणाम है। जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दी साहित्य-कर्मी विज्ञान के प्रति एक स्वाभाविक अनिच्छा भाव रखते हैं उन्हें आज से लगभग सौ साल पहले प्रकाशित इस 'वैज्ञानिक कोश' के प्रकाशन उद्देश्य पर विचार करना चाहिए। हाँ, आज के हिन्दी साहित्य कर्मियों में यह स्वाभाविक अनिच्छा अवश्य ही देखने को मिलती है। हम समझ सकते हैं कि इस संदर्भ में हम अपने सौ साल पहले के मित्रों से कितना पीछे हैं।

इस प्रकार जिस 'मुश्किल' की ओर 'सितारेहिन्द' ने 1876 ई. में विज्ञान-विषयक पाठ्यपुस्तक विदयांकर (जिसकी चर्चा में ही यह सारा प्रसंग उठाया गया) में संकेत किया कि-'देशी भाषा के किसी अच्छे कोश के अभाव

में|"[49] तथा जिसे अन्य लेखकगण भी महसूस ही करते रहे होंगे का समाधान 30 वर्षों बाद नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने 1906 ई. में 'वैज्ञानिक कोश' के प्रकाशन के माध्यम से कर दिया था।

थोड़े से आवश्यक विषयान्तर के बाद अब पुनः लौटते हैं मूल विषय - "विद्यांकुर' संबंधी चर्चा की ओर। जैसा कि शुरू में ही कहा गया कि शिवप्रसाद जी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी रूपान्तर की समस्या से परिचित थे और उन्हें चूंकि विद्यांकुर की रचना 'देहाती स्कूलों के बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप में करनी थी इसलिए पारिभाषिक शब्दावलियों की समस्या इस अर्थ में कुछ और कठिन हो चली थी। इसलिए शिवप्रसाद जी ने विद्यांकुर की भूमिका में ही लगभग 64 हिन्दी वैज्ञानिक शब्दों की सूची और उनके उर्दू समतुल्यों की सूची दे दी है। ऐसा करने के पीछे सरकारी दबाव तो रहा ही होगा साथ ही उस समय आम जनता के बीच बोलचाल में इन उर्दू समतुल्यों का कदाचित् अधिक चलन रहा होगा। प्रस्तुत है, उस सूची में उद्धृत कुछ शब्दों के नमूने

(इस सूची में शब्दक्रम मूल सूची से भिन्न है। इस सूची में कुल 20 महत्त्वपूर्ण शब्दों को ही सम्मिलित किया जा रहा है।)

1. परमाण	जर्रा
2. आमाशय	मेदअ
3. तत्व	उन्सुर
4. इंद्रिय	हवास
5. गणित	रियाजी
6. सरलरेखा	मुस्तकीम खत
7. चतुर्भुज	मुरब्बा
8. शून्य	खला
9. रसायन	कीमिया
10. नक्षत्र	नवाबित
11. ग्रह	सय्यारा

12. बृहस्पति	बसप
13. उपग्रह	कमर
14. आकाश गंगा	कहकशां
15. अंक	हिन्दिसः
16. ध्रुव	कुतुब
17. महाद्वीप	बरे आज़म
18. आकर्षण शक्ति	कूवते जाज़ेबः
19. वर्ग	मुरब्बा
20. समकोण	जाबिया काइया

इस सूची में दो शब्द आये हैं वर्ग (19) और चतुर्भुज (7) इन दोनों के लिए एक ही उर्दू समतुल्य 'मुरब्बा' आया हुआ है। चुटकी लेने वाले 'वर्ग' और 'चतुर्भुज' के लिए 'मुरब्बा' सुनकर चुटकी भी ले सकते हैं। गणित के संदर्भ से तो यह रूपान्तर निश्चित रूप से भ्रामक और दोषपूर्ण है। कारण यह है कि, वर्गऔर चतुर्भुज दो भिन्न आकृतियां हैं बल्कि यह कहें कि, चतुर्भुज चार भुजाओं वाली ज्यामितीय आकृतियों का वह परिवार है जिसमें आयत, समलम्ब, समान्तरचतुर्भुज आदि आते हैं। वर्ग इसी परिवार का एक सदस्य है। स्पष्ट है कि प्रत्येक वर्ग एक चतुर्भज है जबकि प्रत्येक चतुर्भुज एक वर्ग नहीं हो सकता, वह आयत, समलम्ब कुछ भी हो सकता है, इसलिए वर्ग और चतुर्भुज के लिए केवल एक शब्द 'मुरब्बा' लिख देने से शब्दों का तकनीकी भेद दूर नहीं हो पाता बल्कि अवधारणा के स्तर पर एक कठिनाई ही पैदा होती है।

विद्यांकुर 'उस्ताद-शागिर्द की संवाद शैली में लिखी गई है। प्राप्त स्रोत के अनुसार विद्यांकुर का पहला हिस्सा' 'पैदाइश' नामक शीर्षक से शुरू होता है और प्राणि-विकास की संक्षिप्त गाथा कहते हुए चरम को प्राप्त होता है। अकस्मात् एक नितान्त ही अटपटा सा विषय शुरू हो जाता है जिसका सम्बन्ध पुस्तक में वर्णित अन्य विषयों से बिल्कुल भी नहीं है। शीर्षक है'राज'। 'राज' के अन्तर्गत क्या लिखा गया है-एक नमूना देखिए-

"राज कई किस्म का होता है। हर राज का जुदा निशान रहता है और वही जहाज, किलअ, फौज के झंडे पर देखकर पहचान लिया जाता है। राज से जिस किसी की इज्जत बढ़ाई जाती है।''[50]

'राज' वाले शीर्षक को छोड़कर बाकी सभी शीर्षकों का सम्बन्ध विज्ञान की किसी न किसी शाखा से है। 'राज' शीर्षक अनायास ही आ गया या फिर आज जिसे हम 'पॉलिट्कली करेक्ट' (Politically correct) होना कहते हैं उससे इसका कोई सम्बन्ध बनता है, यह विवेचन मैं इस विषय में रूचि लेने वाले व्यक्तियों पर छोड़ता हूँ। हाँ, एक बात और इसी में जोड़ना चाहता हूँ कि "सितारे हिन्द' ने 'ओस, पाला मेह और बादल' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा कि "ऊँची इमारतों को बिजली गिरने का बहुत डर रहता है। लेकिन फरंगिस्तान के अक्लमन्दों ने जिस मकान को बचाना मंजूर हो, उससे जरा ऊँची एक लोहे की नुकीली छड़ उसके पास गाड़ देने की ऐसी तरकीब निकाली है कि बिजली सदा उसी में समाती रहती है और वह मकान बच जाता है।''[51]

पुनः केवल सूचना मात्र के लिए बता दूं कि यह तरकीब 'फरंगिस्तान के अक्लमंदों ने नहीं निकाली। यह तरकीब फ्रांस के एक भौतिक शास्त्री 'चार्ल्स ऑगस्टीन डी कूलॉम' ने सबसे पहले अपनी प्रयोगशाला को तड़ित वार से बचाने के लिए निकाली। कूलॉम का योगदान विद्युत-भौतिकी में आज किसी से भी छिपा नहीं है। आगे चलकर 'वान डी ग्राफ' महोदय (फ्राँसीसी) ने 'गोल्डलीफ़ एक्सपेरीमेन्ट' के नाम से प्रसिद्ध प्रयोग के द्वारा इस तरकीब का विस्तार भौतिक विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में करके क्रांतिकारी निष्कर्ष दिये।

इसके अतिरिक्त शिवप्रसाद जी ने 'पैदाइश की किस्में बता 'जीवजन्तु' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा कि "जीव-जन्तु यानी इन दोनों किस्मों के जानदारों के आमाशय होता है। पर वनस्पति के नहीं होता, यही इन दोनों में बहुत बड़ा तफावत है।"[52]

यह 'तफावत' कोई 'तफावत' (अंतर) नहीं है। कई ऐसी वनस्पतियों का ज़िक्र उस समय के सम्बन्धित अधिकांश लेखों में मिल जाता है जिनमें न सिर्फ आमाशय होता है बल्कि पाचन सम्बन्धी सभी कार्य-व्यापार जन्तुओं की ही भांति होते हैं।

शुक्ल जी निश्चित रूप से 'तफावत' की इस भ्रमपूर्ण स्थिति से परिचित रहे होंगे, तभी तो उन्होंने लिखा कि "जंतुओं और पौधों में मूल भेद नहीं है। लोग जंतुओं में यह विशेषता समझते थे कि उनमें पाचन के लिए अलग कोठा (पेट) होता है, पर ऐसे क्षुद्र कोटि के जंतुओं का पता है जिसमें पेट, मुँह आदि नहीं होता और कई ऐसे पौधे देखे गये हैं जिनमें ये अंग होते हैं।"[53] आचार्य शुक्ल ने इन पौधों के नाम नहीं गिनाये हैं। केवल सूचना के लिए बता दूं कि इन पौधों में अधिकांश अफ्रीकी मूल के हैं और इनका आहार छोटे-छोटे कीट पतंग होते हैं। इन कीट-पतंगों को पचाकर ये नाइट्रोजन की कमी को पूरा करते हैं। इन्हें कीट-भक्षी पौधे कहते हैं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं-[54]

(1) घटपर्णी या पिचरप्लान्ट या नेपेन्थीज़ (Nepenthes)

(2) वीनस फ्लाई ट्रैप या डायोनिया (Dionea)

(3) ब्लैडर वर्ट या यूट्रीक्यूलेरिया (Utricularia) - जलप्लावित पौधा

(4) सनड्यू या ड्रॉसेरा (Drosera')

इसके अतिक्ति इसी 'पैदाइश की किस्में शीर्षक में ही अंडज अर्थात् अंडे से जन्म लेने वाले तथा अंडे देने वाले जीवों पर चर्चा के क्रम में पाद टिप्पणी में शिवप्रसादजी लिखते हैं कि इसे (अंडज को) "हिन्दू स्वेदज भी मानते हैं और कहते हैं कि वह खाली पसीना से पैदा होते हैं। क्या वास्तव में शिव प्रसाद जी की धारणा के हिन्दू इतने अवैज्ञानिक विचारों वाले हाते थे कि अंडज को स्वेदज मान बैठे और उन दोनों में कोई भेद न कर पावें? इसका उत्तर भी मैं विषय में रूचि लेने वालों पर छोड़ता हूँ।

इस प्रकार मूंगा और स्पंज के बारे में शिव प्रसाद जी बच्चों को पाठ्यपुस्तक में यह बताते रहे कि ये सभी आकृतियाँ समुद्र में पाये जाने वाले कुछ खास किस्म के कीड़ों के घर हैं गोया ये निर्जीव आकृतियाँ हैं।

'मूंगा वही है जो समुद्र की थाह में एक तरह के कीड़े अपने रहने का घर बनाते हैं। स्पंज भी, जो पानी सोख लेता है और .... जो एक तरह के कीड़ों का घर है।"[55]

विज्ञान के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि मूंगा सीलेन्ट्रटा संघ के जंतुओं का कंकाल है जो एक स्थान पर जहाँ चिपक जाये वहीं सारी उम्र बिता देता है। उसी प्रकार स्पंज भी पोरीफेरा संघ का जंतु है।

'अकारज' शीर्षक के अन्तर्गत शिवप्रसाद जी ने विद्यार्थियों को यह बताया है कि 'प्लेटिनम के सिवाय सोना सबसे भारी होता है। गलत है यह तथ्य | सबसे भारी तत्व लेड धातु है। ऐसा नहीं कि शिव प्रसाद जी जब विद्यांकुर लिख रहे थे तब तक प्लेटिनम और सोना ही सबसे भारी रहा हो और आगे चलकर लेड धातु की खोज हुई हो। लेड की खोज प्लेटिनम से 40 वर्ष पहले 1810 ई. में जर्मन वैज्ञानिक श्रोयेजर कर चुका था।

विद्यांकुर का सबसे सशक्त हिस्सा 'गर्मी' शीर्षक वाला हिस्सा है जो कि विद्यांकुर का अंतिम हिस्सा है। इसमें शिवप्रसाद जी ने गर्मी अर्थात् ऊष्मा सम्बन्धी मूलभूत सिद्धान्तों पर युक्ति-युक्त प्रकाश डाला है साथ ही ऊष्मा मापक यन्त्र अर्थात् थर्मामीटर पर भी सचित्र टिप्पणी की है।

'अपनी भाषा में विज्ञान' की पुकार ने उन्जसवां सदी के उत्तरार्द्ध में चारों तरफ ऐसा जोर पकड़ लिया कि क्षेत्रीय भाषाओं, तमिल, मराठी, बंगला तथा असमिया आदि भाषाओं में विज्ञान लेखों का अंग्रेज़ी से अनुवाद छपने लगा। कुछेक में मौलिक लेख लिखे जाने लगे। एक क्षेत्रीय भाषा से दूसरी क्षेत्रीय भाषा के बीच विज्ञान के लेखों सहित ज्ञान की अन्य शाखाओं का अनुवाद के माध्यम से आदान-प्रदान होने लगा। मैं यहाँ तत्काल इन सबकी चर्चा न करके केवल हिन्दी प्रदेश में इस लहर की चर्चा करना चाहूंगा।

आगे बढ़ने से पहले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मेरा कोई प्रयास, भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों या भारतेन्दु युग में हिन्दी भाषा, गद्य-साहित्य आदि के विकास सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत करने का यहाँ अभी तत्काल नहीं दीख पड़ेगा। मेरा न तो ऐसा कोई विचार है ओर न ही विषय-विशेष जिसकी चर्चा के लिए यह अध्याय बनाया गया है की ऐसी कोई माँग है। यहाँ केवल मैं भारतेन्दु युग के उन महापुरुषों, सभाओं, पत्र-पत्रिकाओं के योगदानों की ही चर्चा करना चाहता हूँ जिनके कारण हिन्दी में वैज्ञानिक - साहित्य को उस युग [भारतेन्दु यग (1850ई.-1900ई.)] में प्रतिष्ठित करने में सहायता मिली। हिन्दी गद्य के विकास की विधिवत् शुरूआत भारतेन्दु युग में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका से होती है। "हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चन्द्रिका' में प्रकट हुआ।[56]

वैज्ञानिक साहित्य स्वयं को गदय में अधिक समर्थ रूप से व्यक्त कर पाता है। इधर भारतेन्दु के प्रयास से हिन्दी गद्य का विकास और परिष्करण, और उधर (जैसा कि पिछले पृष्ठों में चर्चा की गई), अपनी भाषा में विज्ञान की आवश्यकताओं का अनुभव, किसी मणिकाञ्चन संयोग से कम न था। बीज भी स्वस्थ, भूमि भी उर्वरा, जलवायु भी अनुकूल और भारतेन्दु, उनके सहयोगियों तथा भारतेन्दु मण्डल का परिश्रम भी ऊँचे दर्जे का, इतना सब कुछ होते हुए भला हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का सृजन कैसे ना होता? आइये अब बारी-बारी से इन महानुभावों, जिन्होंने यह सब कुछ संभव बनाया, के बारे में तथा हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सृजन सम्बन्धी उनके योगदानों की चर्चा की जाये। भारतेन्दु के सहयोगियों में और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य को प्रतिष्ठित करने के लिए पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र का योगदान विशेष महत्त्व है। पण्डित जी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सहायकों में से भी रहे हैं।

"इसके (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी क) सहायकों में से भारतेन्दु के सहयोगियों में से कई सज्जन थे- जैसे राय बहादुर, पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र, एम.ए., खड्गविलास प्रेस के स्वमी बाबू रामदीन सिंह"।[57]

पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र का प्रमुख योगदान गणित के क्षेत्र में है। गणित सम्बन्धी साहित्य को अंग्रेज़ी तथा संस्कृत से उठाकर इन्होंने हिन्दी में लाने का अप्रतिम प्रयास किया है। ये नागरी प्रचार में इतने लिप्त हो गये कि इन्होंने अपना उपनाम 'नागर' रख लिया। इसी अध्याय में आगे खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर, की जो विज्ञान विषयक सूची दी गई हैं उनमें इनकी पुस्तक 'गणित कौमुदी' का नाम है। वास्तव में खड़ग विलास प्रेस के स्वामी बाबू रामदीन सिंह और ये (पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र) निकट सहयोगी थे तथा दोनों ही नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सहायकों में से थे। (देखें उद्धरण:1)। बाब रामदीन सिंह भी गणित के अच्छे जानकार थे और हिंदी में गणित साहित्य को लाने में इनका भी योगदान पर्याप्त महत्त्व का है इनकी पुस्तक 'क्षेत्रतत्व' पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र की गणित कौमुदी (1884 ई.) से तीन वर्ष पहले 1881 ई. में खड्ग विलास प्रेस से छपकर आ चुकी थी (देखें इसी अध्याय की खड्ग विलास प्रेस की सूची)। बाबू रामदीन सिंह अच्छे अनुवादक भी थे। अनुवाद कार्य के माध्यम से भी इन्होंने हिंदी में विज्ञान साहित्य को स्थापित किया।

इन्होंने राधिका प्रसन्न मुखर्जी की पुस्तक 'स्वास्थ्य रक्षा सचित्र' का बाँग्ला से हिन्दी अनुवाद 1893 ई. में किया जो कि खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर से छपी थी। (देखिये आगे इसी अध्याय के अन्त में खड्ग विलास प्रेस की विज्ञान पर अनूदित पुस्तकों की सूची)।

पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र ने गणित कौमुदी के चार भागों के अतिरिक्त 'पादप विटप', 'प्राकृतिक भूगोल चन्द्रिका', 'पदार्थ-विज्ञान', 'स्थिति-विद्या', 'गति-विद्या' तथा 'वायुमण्डल विज्ञान' नामक ग्रन्थों की भी रचना की (संदर्भ के लिए देखें परिशिष्ट 1)।

लक्ष्मीशंकर मिश्र और रामदीन सिंह के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों में पं. सुधाकर द्विवेदी, मनराखन लाल, त्रिलोकीनाथ सिंह, मुन्नीलाल, कुंजबिहारी लाल, गूदर सहाय, कालिकाप्रसाद सिंह, उमानाथ मिश्र, साहबप्रसाद सिंह, दामोदर गुरु, पिण्डीशंकर, लाला सीताराम बी.ए. वंशीधर पण्डित आदि अनेक ऐसे महानुभाव हैं जिन्होंने हिन्दी में गणित साहित्य को व्यवस्थित रूप में उतारा। इन सबकी तथा इनके कई सहयोगियों की रचनाओं के नाम, प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष परिशिष्ट 1 में दिये जा रहे हैं। यह परिशिष्ट नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय के प्रथम खण्ड की पुस्तक को आधार बनाकर बनाया गया है। यथास्थान इसका विस्तृत परिचय परिशिष्ट 1 में मिलेगा।

गणित के अतिरिक्त लोकोपयोगी विज्ञान जैसे-स्वास्थ्य रक्षा, इंजीनियरिंग बाल-रोग-चिकित्सा, स्त्री-चिकित्सा, ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र, आयुर्वेद, कामशास्त्र, पशु चिकित्सा, गृह निर्माण, खेती-बारी, कृषि-शास्त्र आदि अनेक विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर भी भारतेन्दु युग में हिन्दी में अनेक काम हुए हैं। इन सबका संदर्भ और जिक्र परिशिष्ट:1 में कर दिया गया है।

यह तो संक्षिप्त चर्चा रही उन महानुभावों की जो भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य से सीधे-सीधे नहीं जुड़े हुए थे फिर भी हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण कर हिन्दी नवजागरण को और अधिक अर्थवान बना रहे थे। इनके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य से जुड़ी अनेक ऐसी प्रतिभाएँ भी थीं जो हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के भण्डार निर्माण में सक्रिय रहीं।

हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु मण्डल का योगदान इस दिशा में चिर स्मरणीय रहेगा।

हिन्दी-गद्य की भाषा के विकास और परिष्करण के साथ-साथ भारतेन्दु हिन्दी-साहित्य-कोश निर्माण के प्रति कितनी व्यापक और दूरदृष्टि के मालिक थे, यह उनकी प्रत्रिका हरिश्चन्द्र मैगज़ीन (सन् 1930 ई.) के 'टाइटिल पेज' को देखकर सहज ही आभास हो जाता है।

"भारतेन्दु ने 'हरश्चिन्द्र मैगज़ीन' नाम से हिन्दी की पहली विविध-विषय -विभूषित मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। इसमें उन्होंने किन-किन विषयों की रचनाओं को छापने का संकल्प किया, यह इसके पहले अंक के अंग्रेजी में छपने वाले 'टाइटिल पेज' से स्पष्ट था। टाइटिल पेज इस प्रकार था-

Haris Chandra's Magazine (A monthly journal published in connection with Kavivachan Sudha) containing articles of literary, scientific... Edited by Haris Chandra.

Published by the editor Haris Chandra on the 15th of every month and printed by Lazarus and Co. at the Medical Hall Press, Benares."[58]

.... इस टाइटिल पेज में छपी घोषणा को पढ़कर इस बात का सहज अनुमान हो जाता है कि हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु के लिए ज्ञानविज्ञान के सभी विषय समान रूप से महत्त्वपूर्ण थे तथा उनकी रूचि और गति ज्ञान की अनेक विधाओं में थी किन्तु उद्देश्य बिल्कुल साफ-केवल एक, हिन्दी की हर भाँति से सेवा करके उसकी साहित्य सम्पदा को समृद्ध करना। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी भारतेन्दु की इन उपलब्धियों से वाकिफ हैं।

यह सच है कि इस युग में अधिकांश विज्ञान लेखन जो हिन्दी भाषा में हो रहा था उसके सूत्रधार किसी न किसी रूप में सीधे विज्ञान विषय से ही जुड़े हुए लोग थे, और उस समय यह बहुत स्वाभाविक भी था। वस्तुतः भारतेन्दु युग हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का प्रथम उत्थान काल ही था और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की दृष्टि से तो इस काल को बीजवपन काल कहा जा सकता है जिसकी सशक्त परिणति आगे चलकर द्विवेदी युग में होती

है। फिर भी जितनी सामग्री (जिसकी कि एक विस्तृत सूची परिशिष्ट:1 में दे दी गई है और कुछ इस अध्याय के अन्त में भी दी गई है) इस युग में विज्ञान विषयक साहित्य के रूप में मिलती हैं, वह कम नहीं है।

हिन्दी साहित्य से जुड़े हुए लोगों में जिनकी रूचि और गति छिट-पुट ही सही किन्तु विज्ञान-लेखन में रही उनमें से बालकृष्ण भट्ट का नाम विशेष महत्त्व का है। बालकृष्ण भट्ट, सच पूछिये तो, कई अर्थों में भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के बीच के सेतु हैं। इनकी साहित्य रचना की जानकारी पाने के लिए धनन्जय भट्ट सम्पादित निबंधावली भाग 1-2, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी देखे जा सकते हैं। भट्ट जी इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप' (1877 ई.) निकालते थे। 'हिन्दी प्रदीप' के माध्यम से इन्होंने हिन्दी की जो सेवा की वह हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों से छिपी नहीं है। मैं यहाँ भट्ट जी के दो-एक वैज्ञानिक लेखों से उद्धृत लेखांशों के नमूने पेश कर रहा हूँ "प्रकाश की प्रकृति अभी तक ठीक-ठीक नहीं मालूम हुई है। पूर्व समय के विद्वान समझते थे कि यह बहुत से छोटे-छोटे परमाणुओं से बनता है जो तेजोमय पदार्थ जैसा सूर्य वा जलती हुई अग्नि इत्यादि से निकला करते हैं आजकल के विद्वान ध्वनि के समान इसकी भी उत्पत्ति तरंग सदृश गति Waving motion से मानते हैं। प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में 18600 मील होती है और ध्वनि एक सेकेण्ड में केवल 1100 फुट जा सकती हैं।"[59]

"यूरोप के विज्ञान-विद् सौ के लगभग Elementary Substance रूढ़ पदार्थ प्रगट कर चुके हैं। हमारे यहाँ के दार्शनिक घोरमचोर इसी परिवर्तन विमुखता के कारण पांच तत्व के आगे न बढ़े पर न बढ़े।

"किसी वस्तु के देखने, सुनने, छूने चखने व सूंघने से जो एक प्रकार का ज्ञान होता है उसे बोध (फीलिंग और सेन्सेशन) कहते हैं।"[60]

आदि-आदि अनेकों ऐसे लेख या विभिन्न लेखों के बीच-बीच में उद्धरण मिल जायेंगे जिनसे इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतेन्दु युग में हिन्दी-साहित्य सेवियों की न सिर्फ विज्ञान-विषयक विवेचनाओं में रूचि थी बल्कि इन वैज्ञानिक विषयों पर अच्छी पकड़ भी थी, इतना ही नहीं इन विषयों को हिन्दी के पाठकों तक सरल और बोधगम्य भाषा में पहुँचाने की कटिबद्धता भी इन हिन्दी सेवियों में दिखाई देती है। इस संदर्भ में एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भट्ट जी, ज्ञान-विज्ञान के विषयों के कोरे प्रचार-प्रसार के समर्थक ना थे। इन विषयों की सार्थकता वे मानवता के विकास में मानते थे। आज जब विज्ञान के अनेक विनाशकारी स्वरूप, (युद्धास्त्रों, परमाणवीय, जैवीय

रासायनिक और नाभिकीय हथियारों के विकास के सन्दर्भ में, ग्लोबल वार्मिंग के संदर्भ में, प्राकृतिक और जैविक असंतुलन के बारे में, अंधाधुंध औदयोगिकीकरण से खतरनाक स्तर तक बढ़ते प्रदूषण के संदर्भ में, जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में "टर्मिनेटर बीज" [इन बीजों से दुबारा फसल पैदा नहीं की जा सकती] आदि कई मानव और मानवता विरोधी संदर्भो में), सामने आ रहे हैं तब ऐसे में भट्ट जी की यह धारणा कितनी समीचीन है कि "कोई सा ही शास्त्र और विद्या क्यों न हो यदि मनुष्य जाति की उन्नति Progress of Humanity का साधन न हुआ तो उसे व्यर्थ ही कहना पड़ेगा।[61]

भट्ट जी के एक लेख 'नई वस्तु की खोज' (हिन्दी-प्रदीप जून 1901 ई.) पढ़कर आश्चर्य होता है और गर्व भी कि उस समय ये हिन्दी सेवी कितनी सूझ-बूझ के साथ हिन्दी साहित्य सम्पदा को बढ़ा रहे थे। इस लेख में डार्विन के विकासवाद के संकेत तथा पदार्थ की चतुर्थ अवस्था प्लाज्मा-अवस्था या अतिवायव्य अवस्था सम्बन्धी जानकारी के संकेत मिलते हैं। जहाँ तक पदार्थ की चौथी अवस्था की बात है आम विद्यार्थियों को तो छोड़िये आज विज्ञान के विशेष विद्यार्थियों को भी यह बहुत कम ही मालूम है। लेख से उद्धृत वह अंश देखिये- "आज आदमी की पैदाइश की 'थ्योरी' निकली, कल चन्द्रलोक में किस प्रकार की बस्ती है या है ही नहीं; परसों सूर्य मंडल किस पदार्थ का बना है यह सोचा जाता है; अथवा पदार्थ की चतुर्थ अवस्था दरअसल कोई वस्तु है या दार्शनिकों का खयाली पुलाव है केवल सूचना के लिए बता दूं कि पदार्थ की इस चौथी अवस्था की जानकारी आचार्य शुक्ल ने भी विश्व प्रपञ्च में पृ. 6 पर दी है, देखिये यह उद्धरण - "कुछ लोग नई बातों के साथ पुरानी बातों का अविरोध सिद्ध करने के लिये भूतों को ठोस, द्रव, वायव्य और अतिवायव्य अवस्थाओं के सूचक मात्र कहने लगे हैं।"

भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य से जुड़े और विज्ञान लेखन में रूचि लेने वाले नामों में पं. प्रताप नारायण मिश्र, आयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; रामदीन सिंह आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। हालाँकि इनके द्वारा लिखा गया वैज्ञानिक साहित्य बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सका है, फिर भी जितना उपलब्ध हो सका है उसकी सूचना आगे इसी अध्याय के अंत में एक सूची में दी जा रही है।

भारतेन्दु यग में विज्ञान विषय पर लिखे गये लेखों की संख्या देखकर एक सुखद आश्चर्य की अनुभूति होती है तथा साथ-साथ उन हिन्दी सेवियों पर गर्व भी होता है जिन्होंने जाने-अनजाने में हिन्दी की ज्ञान-सम्पदा को, अपने परिश्रम, लगन, और दूरदर्शिता से, निरन्तर बढ़ाने का प्रयास किया। पुस्तकों और लेखों की सूची यदि बनाई जाये तो मेरे

इस लघु-शोध-प्रबन्ध का लगभग एक चौथाई से भी अधिक हिस्सा भारतेन्दु युग की विज्ञान विषयक पुस्तक सूचियों से ही अट जायेगा। इसलिए मैंने परिशिष्ट में कुछ अति महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक रचनाओं की एक संक्षिप्त सूची इस आशय हेतु लगा दी है (देखें परिशिष्ट:1)।

भारतेन्दु युग (1850 ई.-1900 ई.) में विज्ञान विषयों यथा-स्वास्थ्य विज्ञान, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, चिकित्सा-शास्त्र आदि पर अधिक लिखा गया। किसी को भी आश्चर्य होना स्वाभाविक है जब वह 'विनोदबिहारी पाल' विरचित 'विसूचिका चिकित्सा'[62] (एक्यूपंक्चर, Acupuncture) का संदर्भ पायेगा कयोंकि यह ग्रन्थ 1840 ई. में ही चंद्रप्रभा प्रेस बनारस से छप चुका था। आज इस युग में हिन्दी में ऐसे विषयों पर बहुत कम पुस्तकें हैं।

इसके अतिरिक्त गणित पर पुस्तकों की भी एक लम्बी सूची इस युग (भारतेन्दु युग) के संदर्भ में बनाई गई है (देखें परिशिष्ट 1)। बता देना चाहूँगा कि चिकित्सा शास्त्र के बाद जिस विषय पर सर्वाधिक पुस्तकें मिलती हैं, वह है गणित। यहाँ अभी तत्काल इस प्रसंग में मैं 'बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना' से प्रकाशित 'आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्ग विलास प्रेस की भूमिका' डॉ०. धीरेन्द्र नाथ सिंह के हवाले से गणित और विज्ञान (मौलिक और अनूदित) विषय पर पुस्तकों की एक संक्षिप्त सूची प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह सूची अमुक पुस्तक के पृष्ठ 310 तथा 316 और 317 से उद्धृत है-

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	गुरु गणित शतक : प्रथम भाग (ब्राञ्च बोधोदय प्रेस से मुद्रित)	साहब प्रसाद सिंह	1879 ई.
2.	क्षेत्र तत्व	रामदीन सिंह	1881 ई.
3.	गुरु गणित शतक : दूसरा भाग	साहब प्रसाद सिंह	1882 ई.
4.	गणित बत्तीसी पहला भाग	"	1884 ई

	दूसरा भाग तीसरा भाग चौथा भाग	" "	1886 ई 1885 ई
5.	गणित कौमुदी	लक्ष्मीशंकरमिश्र 'नागर	1884 ई
6.	गणित सार पहला भाग दूसरा भाग	कालिकाप्रसाद सिंह "	1886 ई 1886 ई
7.	तीसरा भाग चौथा भाग	" "	1888 ई. 1889 ई.
8.	क्षेत्रनाप विद्या पहला भाग	उमानाथ मिश्र	1889 ई.
9.	रेखागणित पाँचवा	रामगूदर सहाय	1895 ई.
10.	अंकगणित प्रथम भाग	अयोध्यासिंह उपाध्याय	1896 ई.

विज्ञान पर मौलिक पुस्तकें

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	विषय	प्रकाशन वर्ष
1.	नियुद्ध शिक्षा प्रथम भाग	दामोदर गुरु (अच्युतानन्द विज्ञान स्वामी)	स्वास्थ्य विज्ञान	1882 ई.
2.	दूसरा भाग	’’	’’	’’
3.	स्वास्थ्य विद्या	प्रतापनारायण मिश्र	’’	1898 ई.

विज्ञान पर अनूदित पुस्तकें

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	विषय	प्रकाशन वर्ष
1.	मातृशिक्षा प्रथम भाग	गंगाप्रसाद मुखोपाध्याय विदया अनुवादक: सरयू प्रसाद	स्वास्थ्य विद्या	1885 ई.
2.	मातृशिक्षा दूसरा भाग	’’	’’	’’
3.	शरीर पालन	यदुनाथ मुखर्जी अनुवादक: सियावर रघुवर शरण भगवान प्रसाद	’’	’’
4.	स्वास्थ्य रक्षा सचित्र	राय राधिका प्रसन्न मुखर्जी अनुवादक : रामदीन सिंह	’’	1893 ई.
5.	सरल स्वास्थ्य रक्षा	राय राधिका प्रसन्न मुखर्जी अनुवादक : नन्द मिश्र	’’	1896 ई 1897 ई.

संदर्भ सूची

33. इमर्जेंस ऑव मॉडर्न साइन्स एफ. एस. टी-1 इग्नू, पृष्ठ 25.

34. आशीष नंदी के एक साक्षात्कार से उद्धृत – 'समयान्तर', अंक:5, फरवरी 2004, पृष्ठ 39.

35. डॉ. बी.बी. कृष्ण (अध्यक्ष, साइंस पॉलिसी सेन्टर, जे.एन.यू.) के साक्षात्कार से उद्धृत। 'समयान्तर' अंक : 5, फरवरी 2004, पृष्ठ 63.

36. दीपक कुमार, 'साइन्स एण्ड द राज' (1857 ई.-1905 ई.)', पृष्ठ 228.

37. वही; पृष्ठ 228.

38. दीपक कुमार, 'साइन्स एण्ड द राज' (1857 ई.-1905 ई.)', पृष्ठ 230.

39. इमर्जेंस ऑव मॉडर्न साइन्स एफ.एस.टी.-1 इग्नू, पृष्ठ 46.

40. वही; पृष्ठ 47.

41. इमर्जेंस ऑव मॉडर्न साइन्स एफ. एस.टी-1 इग्नू, पृष्ठ 46.

42. सत्य प्रकाश मिश्र सम्पादित 'बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन' एन.बी.टी., पृष्ठ-38.

43. वीर भारत तलवार सम्पादित 'राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द : प्रतिनिधि संकलन' उपोद्घात् : भूगोल हस्तामलक - पहला अनुच्छेद, पृष्ठ-88

44. वीर भारत तलवार सम्पादित राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द : प्रतिनिधि संकलन, पृष्ठ 88.

45. आर्य भाषा पुस्तकालय (नागरी प्रचारणी सभा, काशी) की पुस्तक सूची के खण्ड-1, पृष्ठ 174.

46. बाल कृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन, पृष्ठ 5

47. राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द': प्रतिनिधि संकलन, पृष्ठ. 89.

48. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 265.

49. राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द प्रतिनिधि संकलन; पृष्ठ 89 से.

50. राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द :प्रतिनिधि संकलन'; पृष्ठ 99.

51. राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द : प्रतिनिधि संकलन; पृष्ठ 105.

52. वही; पृष्ठ 94.

53. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, "विश्व प्रपञ्च" भूमिका, पृष्ठ 20.

54. डॉ. एम.पी. कौशिक,- माडर्नबॉटनी, पृष्ठ. 857,858 और 859.

55. राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद : प्रतिनिधि संकलन, पृष्ठ 103.

56. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल "हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ 251

57. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 264.

58. ज्ञान चन्द जैन –'भारतेन्दु हरश्चिन्द्र :एक व्यक्तित्व चित्र', पृष्ठ 48-49.

59. हिन्दी प्रदीप'- जुलाई 1880 ई. - 'प्रकाश' नामक लेख से.

60. हिन्दी प्रदीप'-जून 1880 ई. - हमारी परिवर्तन विमुखता' नामक लेख से. अगस्त 1896 ई. - 'मनोयोग और युक्ति' नामक लेख से.

61. हिन्दी प्रदीप, अगस्त 1896 ई. 'मनोयोग और युक्ति' नामक लेख से.

62. आर्य भाषा पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) के सूची पत्र के प्रथम खंड से उद्धृत पृष्ठ 272.

अध्याय-तीन

हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन

द्विवेदी युग (1901 ई. से 1920 ई.)

आजादी की लड़ाई में कहना न होगा, हिन्दी प्रदेश ने बढ़ चढ़कर भाग लिया। बढ़-चढ़कर भाग क्या- बल्कि कहना यह होगा कि लड़ाई की कमान इसी प्रदेश की जनता के हाथ में रही। हिन्दी भाषा के उन्नायकों में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से लेकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बाद में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक सभी ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' वाली बात को गाँठ बाँध ली और पूरी कटिबद्धता के साथ जुट गये हिन्दी साहित्य के भण्डार निर्माण में। साम्राज्यवाद को इन प्रबुद्ध जनों ने अपने स्तर से अपनी भाषा की सेवा करके एक झटका देने की कोशिश की। इस प्रयास में अनायास ही और सायास भी जो भी विषय जहाँ से मिलते गये उन सबको हिन्दी साहित्य में समेटते चले गये, ये विदवान। परिणाम यह हुआ कि वनस्पति शास्त्र, प्राणि शास्त्र, आयुर्वेद, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, अर्थशास्त्र, भौतिक विज्ञान, खगोल शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, तर्क शास्त्र, आचार शास्त्र, ज्योतिष, फलित ज्योतिष आदि नाना विषयों पर हिन्दी में लेख लिखे-लिखवाये गये। इतना ही नहीं विशेषकर बाल साहित्य पर यदि दृष्टि डालें तो प्रचुर मात्रा में बाल-विज्ञानसाहित्य की भी रचना हुई, उन दिनों। इन सबकी विधिवत् एक सूची, सन्दर्भसविधा के लिये परिशिष्ट : 4 में उद्धत की जा रही है। इन गम्भीर विषयों के अतिरिक्त छपाई, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, जादूगरी, टाइपराइटिंग आदि पर भी तमाम पुस्तकें आई। द्विवेदी युगीन वैज्ञानिक साहित्य और उससे मिलते-जुलते विषय पर पुस्तकों की विस्तृत जानकारी के लिए परिशिष्ट : 3 तथा परिशिष्ट : 4 देखे जा सकते हैं। नमूने के लिए यहाँ तत्काल अभी भौतिक विज्ञान पर पुस्तकों की एक सूची दे रहा हूँ।

क्र.सं.	लेखक	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	वशीधर अनुवादक मोहनलाल पण्डित	सिद्ध पदार्थ विज्ञान	सरकारी पुस्तकालय, आगरा	1853 ई.
2.	गोबर्धन जी	भौतिकी	सद्धर्म प्रचारक प्रेस, गुरुकुल काँगड़ी	1967 वि या 1910 ई.
3.	लक्ष्मीचन्द	विदयुत शास्त्र	विज्ञान हुनरमाला ऑफिस बनारस	1922 ई.
4.	लक्ष्मीशंकर मिश्र	वायुचक्र विज्ञान भाग	ग्रन्थकार, बनारस	1874 ई.

		एक	भाग दो ,,	
5.	सम्पूर्णानन्द	भौतिक विज्ञान	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	1916 ई.
6.	राजाराम सिंह	वायु विज्ञान	राज्य सीतामऊ मालवा	1908 ई.
7.	भीष्मचन्द्र शर्मा	बिजली की बैटरियाँ	बी.सी. शर्मन एण्ड कम्पनी, लखनऊ	1933 ई.
8.	विनायक राव	संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान	चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस	1884 ई.

भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें

भौतिक विज्ञान पर यह सूची अभी अधूरी है। पूरी सूची को शोध प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट 4 दिया जा रहा है। इसी प्रकार नमूने के लिये अन्य विषयों यथा आचार शास्त्र (ब्रहमचर्य), कामशास्त्र, आयुर्वेद, मनोविज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, भूगर्भाशास्त्र आदि पर भी सूचियाँ परिशिष्ट-4 में प्रस्तुत की जा रही हैं। इन सभी सूचियों का संदर्भ-स्रोत आर्यभाषा-पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) के सूचीपत्र का प्रथम खण्ड है। इस सूची पत्र का प्रकाशन वर्ष सम्वत् 2001 विक्रमी अथवा 1944 ई. है।

आगे बढ़ने से पहले मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा परिशिष्ट : 4 में कि दी गई सूचियों में विषय और प्रकाशन वर्ष हो सकता है मेरे शोध प्रबन्ध के विषय और कालपरिधि के भीतर ठीक-ठीक ना आ रहे हों, अभी तत्काल यहाँ मेरा यह उद्देश्य भी नहीं है। अभी मैं समग्र रूप से आजादी से पहले के हिन्दी साहित्य के भण्डार-निर्माण की बात ही कर रहा हूँ। वैसे भी ये सूचियाँ जिस स्रोत से ली गई हैं उसका प्रकाशन वर्ष 1944 ई. है, इसलिये यहाँ उद्धृत सभी रचनायें

स्पष्ट है 1944 ई. या इससे पहले की ही होंगी। इसी क्रम में मैं दो बातें और कहना चाहूँगा। पहली बात तो यह कि चूंकि तत्काल अभी वही चित्र खींचने का प्रयास किया जा रहा है जिससे यह भान हो सके कि किस प्रकार अंग्रेजी साहित्य और भाषा के बरक्स साम्राज्यवाद के विरोध में "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' वाली बात को चरितार्थ करने के प्रयास में हमारे भाषा उन्नायक (वे सभी लोग जिन्होंने प्रारम्भिक दौर का हिन्दी लेखन, साहित्य सेवा और एक प्रकार से हिन्दी भाषा की उन्नति में सक्रिय सहयोग दिया) लगे रहे और हिन्दी साहित्य का भण्डार निर्माण करते रहे। इसलिये यहाँ पर केवल विज्ञान विषयक पुस्तकों की चर्चा करना कुछ असंगत सा प्रतीत हो रहा है अतः विज्ञान के अतिरिक्त व्याकरण, संगीत, खेती बारी बही खाता, व्यापार, गृहस्थी की व्यवस्था आदि विषयों पर भी संक्षिप्त सूची परिशिष्ट : 4 में प्रस्तुत की जा रही है। दूसरी बात यह कि एक प्रकार से। यदि देखा जाये तो द्विवेदी युग आज़ादी के पहले का ही वह महत्त्वपूर्ण समय है कि जब हिन्दी के परिमार्जन, परिष्करण, निर्माण, मानकीकरण आदि का जी तोड़ प्रयास किया जा रहा था। कुल मिलाकर हिन्दी भाषा को ठीक-ठाक करके उसकी संरचना का पुनर्निर्माण किया जा रहा था और उसी क्रम में उस युग का विज्ञान-लेखन भी एक प्रकार से साहित्य-भण्डार निर्माण का एक अंग था। किन्तु फिर भी चूंकि शोध-प्रबन्ध का विषय द्विवेदी युग में हिन्दी में विज्ञान लेखन पर केन्द्रित है इसलिये द्विवेदी युग में जो पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएं लेख आदि इस विषय से सम्बन्ध रखते हैं आगे इस अध्याय में उन पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

आज़ादी के बाद हिन्दी सेवियों विशेषकर हिन्दी साहित्य से जुड़े लोगों ने साहित्य के रूप में लोकप्रिय विज्ञान-लेखन से स्वयं को अलग करने लग गये और यह अचानक/नहीं हुझा। द्विवेदी युग के अंतिम चरणों में हुआ यह कि हिन्दी साहित्य के स्तर से लोकप्रियकरण का कार्य बहुत सीमा तक हो चुका था। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि अब स्वतन्त्र रूप से विज्ञान विशेष पर संकेन्द्रित पत्रिकाएं, संस्थायें, पाठ्य पुस्तकें प्रकाश में आने लगीं। उदाहरण के लिये 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका का पहला अंक 1 अप्रैल 1915 को छपकर पाठकों में हाथों में आया। मज़ेदार और उत्साहवर्द्धक बात यह थी कि इसका संपादन पंडित श्रीधर पाठक ने किया था। एक साहित्यकार द्वारा पूरी तरह से विज्ञान विषय पर केन्द्रित पत्रिका का निश्चित ही स्वागत योग्य था। यह कदम यदि आज उठाया जाये तो और भी सराहनीय होगा क्योंकि बढ़ते विज्ञान के इस युग में हिन्दी के पाठकों तक इससे सूचनायें पहुँचेगी, खासकर साहित्य के विद्यार्थियों तक, और वे लाभान्वित होंगे।

श्रीधर पाठक के संपादकत्व में जो 'विज्ञान' का पहला अंक निकला वह द्विवेदी युग में एक अत्यन्त ही उत्साहवर्धक घटना थी। यह पहला अंक प्रकाशित हुआ था - लाला कर्मचन्द्र भल्ला, विज्ञान कार्यालय, प्रयाग से।

इस अंक के लेखों की सूची इस प्रकार है

विषय	**लेखक**	**पृष्ठ सं**
1 विज्ञान शिक्षा की आवश्यकता	रा.गौ.	2
2. विज्ञान का विस्तार	पं. रघुनाथ चिंतामणि चतुर्वेदी	7
3. कोयले की आत्मकहानी	अध्यापक गोपाल स्वरूप भार्गव	10
4. डांडी के अद्भुत खेल और उसका सिद्धांत	अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	13
5. बिजली के ज्ञान का विकास और उन्नति का इतिहास	अध्यापक प्रेमबल्लभ जोशी	19
6. खेती का प्राण और उसकी रक्षा संकर्षण -		23
7. गेहूँ की बीमारी और उसका इलाज	अध्यापक दक्षिण रंजन भट्टाचार्या	25
8. नहर की सिंचाई	विश्वकर्मा	26
9. शिल्प की लीला	लाला पार्वती नन्दन	34
10. दाग धब्बे छुड़ाना	श्रीयुत् मोहन लाल जौहरी	36
11. जल के अनेक रूप	अध्यापक गोमती प्रसाद अग्निहोत्री	39
12. पनडुब्बी नाव	अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	43
13. वैज्ञानिकी	-	44

विषय-सूची

इस अंक के मुखपत्र पर छपी विषय सूची से उद्धृत। इसके लिये द्वितीयक स्रोत के रूप में विज्ञान प्रसार, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-16 द्वारा प्रकाशित तथा डॉ. शिव गोपाल मिश्र द्वारा संपादित पुस्तक 'हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष-प्रथम खण्ड' के प्रथम संस्करण 2001 का उपयोग किया गया है। पुस्तक में पृष्ठ 201 से ठीक पहले यह मुखपत्र छपा है।

इसके अतिरिक्त आयुर्विज्ञान पर एक स्वतन्त्र मासिक पत्रिका आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, भी प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई थी। यह पत्रिका अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली से पहली बार 1913 ई. में प्रकाशित हुई। इसके सम्पादक राजवैद्य किशोरी दत्त शास्त्री थे। एक स्रोत के अनुसार यह हिन्दी में पहली आयुर्विज्ञान पत्रिका है।

* डॉ०. मनोज कुमार पटैरिया - हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता', तक्षशिला प्रकाशन, सन् 2000 का परिशिष्ट : 1

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग (1900-1920) में ही हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर सुधीजनों का ध्यान हिन्दी में विज्ञान लेखन की ओर जाने लगा और नये-नये प्रयास सामने आने लगे।

द्विवेदी युग का इस सन्दर्भ में महत्त्व इस बात को लेकर है कि इस युग में आचार्य द्विवेदी की देख-रेख में हिन्दी में विज्ञान लेखन की एक ठोस और विधिवत् शुरुआत हुई। सभी सन्दर्भ में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका केन्द्रीय महत्त्व की है। 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' 'सम्मेलनपत्रिका' 'मर्यादा' आदि पत्रिकायें भी हिन्दी माध्यम से विज्ञान का लोकप्रियकरण करती रहीं।

1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में जब सरस्वती निकलना शुरू हुई तब विज्ञान तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों से जुड़े लोग सरस्वती में अपनी सेवायें देने लगे। साहित्य से जुड़े व्यक्तियों में पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा डॉ० सम्पूर्णानन्द के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दोनों साहित्यकारों ने विज्ञान पर खूब लिखा। 'सरस्वती' में, 'गुलेरी' जी का पहला लेख 'आँख' शीर्षक से फरवरी-मार्च, 1905 ई. के अंक में प्रकाशित है। यह निबन्ध

आगे भी छ: अंकों में प्रकाशित होता रहा है। इसमें गुलेरी जी ने उत्तल और अवतल लेंस के सैद्धान्तिक पक्ष की सचित्र व्याख्या भी प्रस्तुत की है। लेंसों के लिए इन्होंने कहीं-कहीं 'ताल' शब्द का प्रयोग किया है। शब्दावली की समस्या, जाहिर है, उस समय रही ही होगी। विज्ञान के किस अंग्रेजी पद का कौन सा हिन्दी प्रतिस्थाप्य होगा यह भी इन्हीं सुधीजनों को खोजना था, बल्कि नये शब्दकोश का निर्माण करना था। इसी समस्या की गुरूता को देखकर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने एक वैज्ञानिक शब्दकोश का निर्माण करवाया। यह शब्दकोश पहले अलग-अलग विषयों पर छपा था बाद में सब मिलाकर एक संयुक्त कोश 1906 ई. में छपकर आया। सन् 1901 ई. में श्याम सुन्दर दास द्वारा तैयार किया गया शब्दकोष भी इसी "वैज्ञानिक शब्दकोश' में शामिल है।

गुलेरी जी समेत अन्य कई लेखक "सरस्वती" के अतिरिक्त विज्ञान पर अन्य बहुत सी पत्रिकाओं में भी लिखते रहे। कई स्फुट सन्दर्भ शोध के दौरान मिलते तो हैं किन्तु प्रारंभिक स्रोत तक पहुँच के आभाव में मैं उन सबका अभी तत्काल यहाँ जिक्र नहीं कर रहा हूँ।

गुलेरी जी के अतिरिक्त जैसा कि पहले भी कहा गया है डॉ० संपूर्णानंद भी हिन्दी साहित्य से जुड़े ऐसे व्यक्ति रहे जो विज्ञान-लेखन में मृत्यु पर्यन्त 1969ई. तक बराबर रूचि लेते रहे। ज्योर्तिविनोद नाम से इनकी एक पुस्तक 1917 ई. में छपकर आई। यह पुस्तक लक्ष्मी नारायण प्रेस काशी से छपी थी। ढाई सौ पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य इस समय केवल एक रूपये था। यह पुस्तक सामान्य पाठकों को लक्ष्य करके खगोल शास्त्र पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। कदाचित् हिन्दी में खगोल विद्या पर यह पहली पुस्तक है। इसमें पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, सौर-चक्र, उल्का तारामण्डल, आकाश-गंगा आदि पर महत्त्वपूर्ण और रोचक जानकारी दी गई है। यह पुस्तक नेशनल लाइब्रेरी, बेलवेडियर कोलकाता में सुरक्षित है।

यह बात देखने में आई है कि अधिकांश विज्ञान लेखक किसी न किसी रूप में विज्ञान से जुड़े रहे। यदि सीधे-साधे विज्ञान से नहीं तो वैज्ञानिक अभिरूचियों वाले विषयों यथा गणित, भूगोल आदि से जुड़े रहे। हालाँकि । लेखकों का परिचय ठीक-ठीक दिया नहीं गया है (सरस्वती में) लेकिन नाम देखकर और विषय का विश्लेषण देखकर इतना तो कहा जा सकता है कि अमुक लेखक निश्चित रूप से हिन्दी साहित्य का नहीं है। और सम्भवतः हिन्दी साहित्य के

भण्डार निर्माण के लिए यह एक अच्छी बात भी थी, क्योंकि इससे विषय के विवेचन और विकास में विविधता सुनिश्चित हुई।

बहुत से लेख ऐसे देखने को मिले हैं जो वैज्ञानिकों के महत्त्वपूर्ण प्रयोगों, उनकी जीवनियों आदि से संबद्ध है अथवा गणित आदि वैज्ञानिक विषयों के महत्त्वपूर्ण आचार्यों, शिक्षकों की जीवनियों से प्रेरित है। ऐसे लेखों में सीधेसीधे विज्ञान-चर्चा तो नहीं है लेकिन परोक्ष रूप से विज्ञान के किसी न किसी पहलू पर प्रकाश अवश्य पड़ता है। ऐसे लेखों में, विषय की दृष्टि से, महत्त्वपूर्ण लेख इस प्रकार हैं -

लेख का नाम	**लेखक का नाम**	**पत्रिका/प्रकाशन**
1. राय बहादुर पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र	राम नारायण सिंह	जून 1907, सरस्वती
2.चार्ल्स डार्वि	श्याम सुन्दर जोश	मार्च 1917,सरस्वती
3. भुनगा पुरा	रामदास गौड़	जून 1916 विज्ञान
4. लल्लू तिवारी और बिजली से बातचीत	गंगा प्रसाद वाजपेयी	जून 1916 विज्ञान
5. अध्यापक बसु के अद्भुत अविष्कार	-	फरवरी-मार्च, 1903 सरस्वती
6. महामहोपाध्याय बापूदेव पं0 शास्त्री, आई0	गिरिजा प्रसाद सित. द्विवेदी	1903. ई.सरस्वती
7. बाराहमिहिर	पं0 गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	अप्रैल 1904
8. नेपल्स की कासानोवा नामक औद्योगिक शाला	माधव राव सप्रे	दिस. 1904, सरस्वती
9. सवाई जयसिंह		मई 1905 सरस्वती
10. श्रीयुत भोलादत्त पांडे	सत्यदेव	अक्टू. 1910 सरस्वती
11. मारकोनी का महात्म्य	जगन्नाथ खन्ना	फर0 1912 सरस्वती

12. सर आइजक न्यूटन	सरयू नारायण त्रिपाठी	फर0 1913 सरस्वती
13. भास्कराचार्य	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	अग0 1913 सरस्वती
14. भास्कराचार्य और लीलावती	अम्बिका प्रसाद पांडेय	अप्रैल 1915 सरस्वती
15. बेंजामिन फ्रैंकलिन	सिंह-वर्मा	अग0 1916 सरस्वती
16 श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना	सेठनिहाल सिंह	मार्च 1917, सरस्वती
17. विज्ञानाचार्य बस् का विज्ञान मंदिर		जन0 1918 सरस्वती
18. लुई पास्टुर	सम्पादक	दिस0 1920 सरस्वती
19. हेनरी फेवट	वनमाली प्रसाद शुक्ल	नव0 1920 सरस्वती
20. प्रो0 त्रिभुवनदास गज्जर	रामदहिन मिश्र	अग0 1920 सरस्वती

अब मैं यहाँ एक सर्वेक्षण की चर्चा करना चाहूँगा जो राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद, नई दिल्ली (N.C.S.T.C) ने विज्ञान परिषद् के माध्यम से 1998 ई. में करवाया। इस सर्वेक्षण में विज्ञान और प्रौदयोगिकी विषय पर केन्द्रित कुल 2000 से अधिक पुस्तकों को सम्मिलित किया गया है, ये सभी पुस्तकें हिन्दी माध्यम में विज्ञान के लोकप्रियकरण हेतु लिखी गई है। इन पुस्तकों में अधिकांश पुस्तके ऐसी है तो 1920 ई. के बाद की है, इन्हें यहाँ शामिल नहीं किया जा रहा है, केवल 1920 ई. तक की पुस्तकों की एक विस्तृत सूची परिशिष्ट : 3 में दी जा रही है।

'सरस्वती', द्विवेदी युग की प्रतिनिधि पत्रिका है। बाबू श्याम सुंदर दास के संपादकत्व में 'सरस्वती' के प्रारम्भिक अंको से ही वैज्ञानिक रूझानों वाले लेख छपते रहे हैं। नमूने के तौर पर फरवरी-1900 ई. की सरस्वती में "जन्तुओं की सृष्टि" पर एक लेख प्रकाशित हुआ। जन्तुओं की सृष्टि कैसे हुई?

डार्विन के विकासवाद आदि की चर्चा इस लेख में की गई है। विकासवाद पर 'सरस्वती' में आगे भी कई लेख लिखे गये। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अगस्त 1906 ई. की सरस्वती में "विकास-सिद्धांत' नाम से एक लिखा। इस लेख के अंत में द्विवेदी जी द्वारा किये गये वायदे के अनुसार इस विषय पर लेख आमंत्रित किये जाने लगे। जनवरी 1910 ई. की सरस्वती में 'मानव रहस्य' नाम से एक लेख जन्तुओं के विकास क्रम पर प्रकाशित हुआ। इस लेख के लेखक महेन्दु लाल गर्ग जी थे। चूँकि ये द्विवेदी युग के महत्त्वपूर्ण विज्ञान लेखक रहे हैं इस कारण इनके लेखों के नमूने और उस पर संक्षिप्त टिप्पणी अध्याय 4 में देखी जा सकती है। मार्च 1910 ई. में पुनः इस विषय पर लेख छपा मिलता है। कहन - विकासवाद पर सरस्वती में अन्त तक सामग्री छपती रही है। मई 1914 ई. के अंक में "स्तनपायी पशुओं में मनुष्य की श्रेष्ठता' शीर्षक से लेख लिखकर रामनारायण शर्मा ने डार्विन के विकासवाद का समर्थन किया। पुनः मई 1915 ई. में द्वारिका नाथ मिश्र ने "क्रम-विकास' नाम से एक लंबा लेख लिखा है। इस लेख में डार्विन के विकासवाद से जुड़ी परवर्ती वैज्ञानिक मान्यताओं पर लेखक ने कुछ प्रकाश डाला है। इतना ही नहीं विकासवाद पर हिन्दी वालों की लेखनी, भाषा और विचार दोनों ही स्तरों पर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के "विश्व-प्रपञ्च" पर जाकर अपने चरम को प्राप्त करती है। 1920 ई. में आचार्य शुक्ल ने "विश्व- प्रपञ्च" नाम से जर्मन प्राणितत्ववेत्ता ई0 एच0 हैकेल की पुस्तक "डी वेल्टरैथ-सेल" के अंग्रेजी अनुवाद "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" का हिन्दी अनुवाद किया है, विश्व प्रपञ्च की लगभग चौरानबे पृष्ठीय लंबी और सूचनापरक तथा विचारोत्तेजक भूमिका इसका प्रमुख आकर्षण है। इस भूमिका को पढ़कर आचार्य शुक्ल की विज्ञानवादी दृष्टि को समझने में और सहायता मिलती है। सन् 1920 ई0 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से छपकर यह 'विश्व प्रपञ्च' पहले दो खण्डों में (भूमिका + अनुवाद) हिन्दी पाठकों के सम्मुख आया फिर बाद में 1962 ई. में इसका संयुक्त संस्करण भी, नागरी प्रचारिणी, सभा काशी से ही छपकर आया। मैंने आगे अध्याय 3 में विश्व प्रपञ्च की विस्तार से चर्चा की है। सभी उद्धरणों के संदर्भ भी इसी 1962 वाले संस्करण से लिए गए हैं।

विकासवाद के साथ-साथ 'सरस्वती' में विज्ञान के कई सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों पर भी लगातार लेख छापे जाते रहें हैं। इन सभी लेखों की एक विस्तृत सूची परिशिष्ट : 2 में देखी जा सकती है। विज्ञान विषय में पाठकों की रूचि और बढाने तथा उसे बनाये रखने के उददेश्य से कभी-कभी वैज्ञानिकों की सचित्र जीवनियाँ भी 'सरस्वती' में छापी जाती रही हैं। नमूने के तौर पर अप्रैल 1903 ई. की सरस्वती में यूरोप के तीन वैज्ञानिकों-कोपरनिकस (1472 ई.), गैलीलियों (1564) तथा न्यूटन (1642 ई.) का फोटो सहित जीवन परिचय तथा उनके अविष्कारों का सामान्य विवरण

प्रकाशित हुआ है। सरयू नारायण त्रिपाठी ने आगे चलकर फरवरी 1913 ई. के अंक में न्यूटन का एक विस्तृत जीवन-परिचय लिखा जिसमें उसके अविष्कारों की भी चर्चा की गई है। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत बहुत काम का सिद्धांत है। इस लेख में इस पर भी ठीक-ठाक चर्चा की गई है। गुरूत्त्वाकर्षण शक्ति पर एक लेख का नमूना और उसकी भाषा तथा कथ्य पर टिप्पणी अध्याय 4 में देखी जा सकती है।

यूरोपीय वैज्ञानिकों के साथ-साथ सरस्वती ने उन भारतीय वैज्ञानिकों का भी सम्मान किया है, जिनके कारण पराधीन भारत का सम्मान संसार भर में हआ। फरवरी-मार्च 1903 ई. की सरस्वती में महान भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस (बसु) के अविष्कारों की जानकारी से संबधित एक लेख छपा। लेख साफ़ तौर पर दो हिस्सों में बँटा दिखाई देता है। पहला हिस्सा वैज्ञानिक का जीवन परिचय के रूप में है जबकि दूसरा हिस्सा उनके अविष्कारों पर केन्द्रित है। मैं केवल सूचना के लिए यहाँ बताना चाहता हूँ कि अध्यापक जगदीश चन्द्र बोस वे पहले भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होनें वनस्पतिजगत में नवीन खोजों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि पेड़-पौधों में भी चेतना के तत्व पाये जाते हैं।

भारतीयों की चेतना को विज्ञान क्षेत्र से पश्चिम की चेतना 'हाइजैक' न कर ले जाएं इसके लिए उन्होनें विज्ञान के पठन-पाठन का सिलसिला अपनी मातृभाषा में शुरू करने के लिए कुछ ठोस प्रयास भी किये। उन्होनें अपने अधिकांश यन्त्रों का नाम अंग्रेजी में न रखकर अपनी भाषा में रखना उचित समझा। "कंचनग्राफ" और "शोषण-ग्राफ" नाम वैज्ञानिक बसु के ही दिए हुए हैं।

देखकर यह, एक सुखद आश्चर्य होता है कि, हिन्दी नवजागरण युग के साहित्य-सेवी इतने महत्त्वाकांक्षी और दूरदर्शी थे कि उस जमाने में जबकि 'प्लाज्मा' (पद्धार्थ की अतिवायव्य अवस्था, चौथी अवस्था) पर अंग्रेजी में बहुत कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता, इन महारथियों ने इस विषय को हिन्दी पाठकों के संज्ञान में लाने का प्रयास किया। यथास्थान पहले अध्याय में भारतेन्दु मण्डल के बालकृष्ण भट्ट तथा आगे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'विश्व प्रपञ्च' के संदर्भ में इसकी चर्चा की गई है। सोचिये ज़रा- कहाँ आज से सौ-सवा सौ साल पहले हिन्दी के चहेते इन बातों से इस कदर वाकिफ थे, कहाँ आज इस घोर वैज्ञानिक युग में हम हिन्दी वाले ऐसी बातें सुनकर ही घोर आश्चर्य से ल देते हैं। इस किस्म की है विज्ञान के प्रति हम हिन्दी वालों अनभिज्ञता और उदासीनता!

सरस्वती में ऐ से लेख मिल जाएंगे जिनके लेखकों का नाम तक नहीं छपा है। स्वविवेक से उन वैज्ञानिक लेखों को संपादक-प्रणीत मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। नमूने के तौर पर अभी ऊपर फरवरी-मार्च 1903 की सरस्वती में अध्याप सु से संबधित जिस लेख की चर्चा की गई वह भी ऐसा ही लेख है। परिशिष्ट-2 में सरस्वती में छपे वैज्ञानिक लेखों की सूची दी गई है। वहाँ भी जिन लेखकों के नाम नहीं दिये गये उन्हें भी इसी प्रकार के 'संपादक-प्रशीत' ही माना जाना चाहिए।

संपादक महोदय द्विवेदी जी की, यह मानिये कि सरस्वती में छपने वाली सभी सामग्रियों के चयन को लेकर लगभग एकाधिकार की स्थिति थी और चूंकि द्विवेदी जी एक सचेत और गंभीर साहित्यकार होने के साथ-साथ भाषा के गंभीर पारखी भी थे इसलिए सरस्वती में छपे वैज्ञानिक लेख अनगढ़पन की त्रुटि से लगभग मुक्त हैं। 'सरस्वती' के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के जिस 'ज्ञानकाण्ड' का निर्माण किया वह निश्चय ही अतुलनीय है, किन्तु खेद है कि उनके इस प्रयास को विशेषकर हिन्दी साहित्य में वैज्ञानिक रूझान वाले विषयों को शामिल करने का स्तुत्य कार्य हिन्दी वाले आगे न बढा सके।

द्विवेदी जी ज्ञान की विकासशील पंरपरा में विश्वास करते थे। फरवरी 1901 ई. की सरस्वती में द्विवेदी जी ने अपनी इस धारणा को विज्ञान की विकासशीलता के सहारे 'ज्ञान' शीर्षक से लिखे गये लेख में पाठकों को कैसे समझाया है, जरा देखिए - "जितने विज्ञान विषय हैं उनके भ्रम का संशोधन उन विषयों में पारदर्शी होकर नूतन शोध द्वारा विद्वद्जन कर सकते हैं। यह कोई आश्यर्च की बात नहीं। इस समय प्रोफेसर बोस ने ‘‘लडिल्लहरी" नामक विज्ञान को सिद्ध करके उसका अस्तित्व प्रमाणित किया है। कालान्तर में उसका सिद्धांत अन्य विद्वानों द्वारा अन्यथा प्रमाणित हो जाएगा, तो हमको उस पर अविश्वास करने में अनौचित्य नहीं। माध्याकर्षण विषयक न्यूटन का मत सभी विद्वदजन मान्य करते हैं, परन्तु प्रकाश विषयक उसके मत को न मानकर फेनेल का सिद्धांत ही शिरोधार्य करते हैं।"

द्विवेदी जी द्वारा हिन्दी के 'ज्ञानकाण्ड' के विकास के कई सोपान हैं। 'सरस्वती' उनमें से एक है। 'सरस्वती' में विज्ञान-विषयक अपने विचारों को व्यक्त करने के अतिरिक्त महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रचुर मात्रा में अन्यत्र भी विज्ञान-विषयक लेख, वैज्ञानिकों की जीवनियाँ आदि लिखी हैं। यह सब कुछ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली के खण्ड तीन, चार, पाँच, छ: और सात से प्राप्त किया जा सकता है। मैं यहाँ इस आशय से संबधित सूचना मात्र देने के लिए संक्षिप्त विवरण

दे रहा हूँ महावीर प्रसाद-रचनावली (संकलन-संपादन: भारतयायावर), किताब घर नईदिल्ली, से प्रकाशित ग्रन्थ में विज्ञान विषयक लेखों को विवरण - खण्ड तीन में - तीसरे भाग के अंतर्गत; प्राचीन भारत में शस्त्र चिकित्सा (सर्जरी), प्राचीन भारत में जहाज, भारतवर्ष का नौका-नयन आदि विषयों पर लेख हैं।

खण्ड चार में - भाग तीन के अंतर्गत ; सबसे बड़ा हीरा, भाग चार में : कोपर्निकस, गैलीलियो और न्यूटन, हर्बर्ट स्पेंसर; बेंजामिन फ्रेंकलिन, लुई पास्टुर आदि की जीवनियाँ हैं। भाग पाँच में ; दक्षिणी ध्रुव की यात्रा-1, दक्षिणी ध्रुव की यात्रा-2, उत्तरी ध्रुव की यात्रा-1, उत्तरी ध्रुव की यात्रा-2, विस्यूवियस का विषम स्फोट-1, विस्यूवियस का विषम स्फोट-2, पाताल-प्रविष्ट पापियाई नगर, ढाई हजार वर्ष की पुरानी कबरें, तीस लाख वर्ष के पुराने जानवरों की ठठरियाँ। भाग छ: में ; पूर्वी अफ्रीका की कुछ जंगली जातियाँ, लंबे होंठ वाले जंगली आदमी, अफ्रीका के खर्वाकार जंगली मनुष्य, जुलूलैण्ड (अफ्रीका) की असभ्य जूली जाति आदि।

खण्ड पाँच में कुछेक भारतीय चिन्तकों, विचारकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों का जीवन-चरित्र।

खण्ड छ: में 'सम्पत्तिशास्त्र' तथा 'औद्योगिकी' दोनों पुस्तकों का मूलपाठ। खण्ड सात में रजोदर्शन, गर्भसंचार, गर्भ के आकार और परिमाण प्रसूति, आत्मा, पुनर्जन्म, जीवन क्या वस्तु है ? ज्ञान, सृष्टि विचार, माइसोर में सोने ही खानें, भारतवर्ष में हीरे की खाने, जलचिकित्सा, न्यूटन और जलती हुई अँगीठी, गर्मी और सर्दी में भेद आदि।

यह सब देखकर तथा सरस्वतो में बिखरे वैज्ञानिक लेखों को देखकर मानना पड़ेगा कि, "द्विवेदी जी ने एक निश्चित मत और निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हिन्दी के ज्ञानकाण्ड को समृद्ध करने का बीड़ा उठाया था।"[63]

द्विवेदी युग में हिन्दी में विज्ञान लेखन की और भी साफ तस्वीर के लिए परिशिष्ट : 4 को देखा जा सकता है जिसमें उस युग के महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक लेखों, पुस्तकों, उनके लेखकों, उनके प्रकाशन संस्थान तथा प्रकाशन वर्ष की विस्तृत सूची दी गई है। इस सूची का आधार आर्यभाषा पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) की पुस्तक सूची का प्रथम खण्ड है।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग में लिखे जा रहे वैज्ञानिक लेखों की भाषा तथा लेखकों की विषय पर पकड़ के मददेनज़र विभिन्न स्रोतों से ग्यारह चुने हुए लेखों के नमूने और उन पर टिप्पणी के लिए अध्याय चार देखें। अध्याय चार

में अधिकांश लेख जान-बूझकर प्रयोजन पूर्वक 'सरस्वती' से ही उठाये गये हैं। इस युग की दूसरी महत्त्वपूर्ण पत्रिका, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में छपे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के दो लेख भी उस समय के हिन्दी सेवियों की वैज्ञानिक समझ को जान सकने के लिए अध्याय-4 में शामिल किए गये हैं।

अंत में कहना चाहूँगा कि, यूँ तो सरस्वती के समानान्तर कई साहित्यिक पत्रिकायें जैसे - 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (पहला अंक 1897 ई. में, शुरू में त्रैमासिक बाद में 1907-20 ई. तक मासिक), समालोचक' (पहला अंक 1902 में, नागरी भवन, जयपुर से बाबू गोपाल राम गहमर के सम्पादकत्व में), 'इन्दु' (1909 ई. से अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में काशी से), 'मर्यादा' (नवम्बर 1910 ई. से अभ्युदय प्रेस प्रयाग से, मासिक पत्र पहला अंक), 'प्रभा' (सचित्र पहला अंक अप्रैल 1913 ई. में कालूराम गंगराडे के सम्पादकत्व में मध्यप्रदेश से) तथा 'विज्ञान' (श्रीधर पाठक के सम्पादन में 1915 में इलाहाबाद से) आदि का प्रकाशन होता रहा किन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कुशल सम्पादकत्व (1903 ई.) में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से निकलने वाली मासिक सचित्र पत्रिका सरस्वती की लेखकों और पाठकों के बीच क्रमशः बढ़ती लोकप्रियता के कारण, सरस्वती ही द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण पत्रिका के रूप में उभर कर सामने आई, खासकर विज्ञान विषयक लेखों के प्रकाशन के संदर्भ में। अगर कोई पत्रिका हिन्दी में विज्ञान लेखन को भाषा और कथ्य दोनों स्तरों पर सरस्वती को टक्कर देने में, उन दिनों सक्षम हुई तो वह थी श्रीधर पाठक के सम्पादकत्व में 'विज्ञान', जो 1913 ई. में विज्ञान परिषद्' प्रयाग की स्थापना के बाद 1915 से निकलने लगी थी। किन्तु बाद में यह पत्रिका विशुद्ध रूप से विज्ञान के विधार्थियों के लिए लिखी जाने लगी। आज सामान्य पाठकों को इस पत्रिका से लाभ उठाने के लिए पहले विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों की अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेना प्राथमिक शर्त है।

63. रामविलास शर्मा, 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' पृष्ठ-383

अध्याय-चार

हिन्दी में विज्ञान सन्बन्धी चिन्तन
आचार्य रामचंद्र शुक्ल का योगदान
(विश्व प्रपञ्च के संदर्भ में)

द्विवेदी युग के अंतिम कुछ वर्षों में नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने बाबू श्याम सुन्दर दास के सम्पादकत्व में एक मनोरंजन पुस्तक-माला निकालने की योजना बनाई। इसके लिए 1913 ई. में श्याम सुन्दर दास के सम्पादकत्व में विविध विषयों से यक्त ग्रन्थमाला का आयोजन किया गया जिसमें 100 ग्रन्थों को प्रकाशित करने का संकल्प था। इसमें प्रकाशित ग्रन्थों के विषय का चयन भी अत्यन्त गरूता एवं व्यापकता के साथ किया गया"। विश्व प्रपञ्च का प्रकाशन भी इसी क्रम में एक महत्त्वपूर्ण कडी थी।

मनोरंजन पुस्तक माला के "33वें और 34वें"2 पुष्प के रूप में "यह ग्रन्थ पहले दो खण्डों में संवत 1911 में प्रकाशित हुआ था और डसे अब उपयोगिता की दृष्टि से एक खण्ड में कर दिया गया है।

उपरोक्त दोनों उद्धरण क्रमश: 1 और 3 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित 'विश्व प्रपञ्च' के प्रकाशकीय से लिए गये हैं। उद्धरण 2, विश्व प्रपञ्च के मुख-पृष्ठ पर चिन्हित जानकारी है।

यह 'विश्व प्रपञ्च', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हैकेल की पुस्तक 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' का हिन्दी अनुवाद है।

आगे बढ़ने से पहले मूल पुस्तक "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' के बारे में कुछबातें - 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स', यह नाम मूल पुस्तक जो कि जर्मन भाषा में हैकेल ने लिखी थी के अंग्रेजी अनुवाद का नाम है। मूल पस्तक का नाम, 'डी वेल्ट रैथसेल "die Weltrathsel" है। इस बात की जानकारी सर ओलिवर लॉज की पुस्तक 'लाइफ एण्ड मैटर' के चतुर्थ संस्करण 1904 के पृष्ठ 30 से प्राप्त हो सकी है। 'लाइफ एण्ड मैटर', हैकेल की 'द रिडिल' पर सबसे प्रामाणिक और स्तरीय आलोचना ग्रन्थ है।

'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' नाम से 'डी वेल्टरैथसेल' का अंग्रेजी अनुवाद हैकेल के ही शिष्य और अनुयायी जोसेफ मैक्कैब ने किया है।

मैंने इस लेखके लिए "द रिडिल" जिस संस्करण को संदर्भ के रूप में अपनाया है वह "वाट्स एण्ड कम्पनी, लन्दन" द्वारा 'रेशनलिस्ट प्रेस' एसोसिएशन के लिए छापा गया 1911 ई0 का 'आठवाँ संस्करण' है। इस संस्करण की

विशेषता इसका भूमिका भाग है, जिसमें रिडिल के तत्कालीन आलाचकों द्वारा की गई आलाचनाओं तथा उनके द्वारा उठाये गये कुछ महत्त्वपूर्ण सवालों के जवाब देने का प्रयास अनुवादक द्वारा किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "द रिडिल" का परिचय कुछ इस प्रकार है -

"आज जर्मनी के जगद्विख्यात प्राणितत्ववेत्ता हैकेल की परम प्रसिद्ध पुस्तक 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' हिन्दी पढ़ने वालों के सामने रखी जाती है। यह अनात्मवादी आधिभौतिक पक्ष का सिद्धांत संग्रह है जिन्हें भूतवादी अपने पक्ष के प्रमाण में उपस्थित करते हैं।"

यह उद्धरण 'विश्व प्रपञ्च' के 1962 ई. के संस्करण में छपे 'प्रथम संस्करण का वक्तव्य' से लिया गया है।

हैकेल के समकालीन तथा "द रिडिल" के उस समय के सबसे चर्चित समीक्षक तथा यूनिवर्सिटी ऑव बर्मिघम इंग्लैण्ड में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक सर ऑलिवर लॉज के शब्दों में "द रिडिल..." का परिचय कुछ इस प्रकार है -

"The most striking instance of a scientific man who on entering philosophic territory has exhibited signs of exhiliration and emancipation, is furnished by the case of Professor Haeckel of Jena. In an eloquent and popular work, entitled die Weltrathsel, the World Problem, or "The Riddle of The Universe", this eminent biologist has surveyed the whole range of existence, from the foundations of physics to the comparision of religions, from the facts of anatomy to the freedom of the will, from the vitality of cells to the attributes of God."

यह उद्धरण "सर आलिवर लॉज"[64] के 'लाइफ एण्ड मैटर' के जिस संस्करण की चर्चा पीछे की गई है उसी के पृष्ठ 3 से लिया गया है। इस उद्धरण का भाव इस प्रकार है -

विज्ञान के एक आदमी, जिसने दर्शन के क्षेत्र में अभी अभी कदम रखा हो, का काम कितना विचारोत्तेजक और आनन्ददायक हो सकता है इस बात का ज्ञान जेना विश्वविद्यालय, जर्मनी के प्राध्यापक हैकेल की अत्यन्त लोकप्रिय कृति 'डी वेल्ट रैथसेल' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'विश्व की समस्यायें अथवा "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" को देखकर लगाया जा सकता है। इस प्रख्यात जीव वैज्ञानिक ने अपनी इस कृति में भौतिकी के मूल सिद्धान्तों से लेकर

धर्मों की तुलना तक, शरीर-रचना-विज्ञान के आधारभूत तथ्यों से लेकर इच्छा की मुक्ति तथा नन्हीं-नन्हीं कोशिकाओं में बन्द ऊर्जा से लेकर ईश्वर के गुणों तक अस्तित्व सम्बन्धी तमाम प्रश्नों का एक व्यापक तथा बहुआयामी सर्वेक्षण किया है।

विज्ञान और दर्शन का परस्पर अलगाव, जैसा कि सर ऑलिवर लॉज ने अपने लेख में टेरीटरी (territory) शब्द का प्रयोग करके बतलाना चाहा है, उस युग ही नहीं बल्कि बहुत पहले से लेकर आज तक के वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के ज्ञान तन्तुओं को छेड़ता रहा है। कुछ इस अलगाव को हितकारी मानते हुए विज्ञान और दर्शन के पार्थक्य को बनाये रखने की दलील देते हैं। (जैसे ऑलिवर लॉज, डॉ०. सैलीबी, बैलार्ड आदि) तो कुछ विचारक जिनमें लॉयड-मार्गन, मॉरीज, मैक्कैब के साथ-साथ प्रोफेसर हैकेल भी है, इस पार्थक्य को न केवल समाप्त करने की पेशकश करते हैं बल्कि इसे ज्ञान की पद्धति के विकास के लिये घातक भी मानते हैं। हैकेल लिखते हैं

"This unnatural and fatal opposition between Science and Philosophy, between the results of experience and of thought, in undoubtedly becoming more and more painful to thoughtful people."[65]

अर्थात यह जो अस्वाभाविक (जान-बूझकर सायास पैदा किया गया) और घातक विरोध है, दर्शन और विज्ञान के बीच, अनुभवजन्य (प्रयोग-सम्मत) और कोरे विचारों (मानसिक विलास) से उपज परिणामों के बीच, निश्चित रूप से विचार प्रधान व्यक्तियों के लिये अधिकाधिक कष्टमय बात साबित होती जा रही है।

'द इम्पैक्ट ऑव साइन्स ऑन सोसायटी' (The Impact of Science on Society) में बट्रैण्ड रसेल (Bertrand Russell) ने भी इसी विडम्बना की ओर संकेत करते हुए लिखा कि-

"Science, ever since the time of the Arabs, has had two functions: (1) to enable us to know things, and (2) to enable us to do things. The Greeks, with the exception of Archimedes, were only interested in the first of these. They had much curiosity about the world but since civilised people lived comfortably on slave labour, they had no interest in technique. "[66]

अर्थात विज्ञान अरबों के समय से ही दो काम करता रहा है

(1) यह विश्व क्या है? और कैसा है? इसकी जानकारी देने का काम |

(2) यह विश्व ऐसा क्यों है? छ प्रयत्नों से इसे किस तरह और बेहतर बनाया जा सकता है? यूनानी लोग, आर्किमिडीज (वैज्ञानिक) को छोड़कर केवल पहले वाले हिस्से में ही अधिक रूचि लेते रहे हैं। उन्होंने इस विश्व को जानने समझने की जिज्ञासा तो बहुत दिखाई परन्तु तकनीक और प्रौद्योगिकी के विकास में कोई रूचि नहीं दिखाई।

रसेल के इस उद्धरण से तीन बातें खुलकर सामने आती हैं पहली तो यह कि- जिसे हम दर्शन कहते हैं और जो जगत की समस्याओं को वैचारिक स्तर पर केवल विवाद का विषय बनाकर छोड़ देता है वह और कुछ नहीं विज्ञान का ही एक पक्ष है, जो निश्चित रूप से अपने ही दूसरे पक्ष जिसमें कुछ करने वाला भाव निहित है से कम श्रेष्ठ है। इस बात को रसेल ने आर्किमिडीज का उदाहरण लेकर और साफ कर दिया है। दूसरी बात यह कि- विज्ञान के उस दूसरे पक्ष जिसमें कुछ करने वाला भाव निहित है का प्रयोग, तकनीक के माध्यम से समाज की बेहतरी के लिये ही होना चाहिए। तीसरी बात कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस बात से, विज्ञान के विकास का कैसा सम्बन्ध समाज के विभिन्न पहलुओं से बनता है?, की कुछ जानकारी मिलती है। इसके लिये रसेल ने दास-प्रथा का उदाहरण लेकर यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह दासों पर आश्रित रहने वाले लोग विज्ञान और तकनीक के विकास की आवश्यकता नहीं समझ पाते। रसेल द्वारा दिया गया यह तर्क हालाँकि पक्ष-विपक्ष को तैय्यार कर सकता है, फिर भी यह तो मानना ही होगा कि विज्ञान का उदभव, विकास और प्रसार वस्तुतः जीवन की कठिनाइयों से लड़नेऔर उनके समाधान के क्रम में ही हुआ है। जिस समाज में ऐसा न हो सका वहाँ जीवन की छोटी से छोटी कठिनाई को भी दैव प्रदत्त मानकर उसकी अनेकानेक व्याख्याओं के लिये अटपटी मान्यताओं, धारणाओं और व्यवस्थाओं का सहारा लिया गया और फिर धर्म, ईश्वर तथा इनकी मनमानी व्याख्या करने वाले सामन्त-सहयोगियों की फसल बहुत ही स्वाभाविक रूप से बढ़ती रही। वास्तव में दास-प्रथा (या इसी प्रकार की और भी समाज-विरोधी) सम्बन्धी रसेल के तर्क का, इशारा इसी विडम्बना की ओर है कि यह न सिर्फ विज्ञान के विकास को नकारता है बल्कि विज्ञान के विकास की संभावनाओं को भी नष्ट करने का प्रयत्नपूर्वक उद्यम करता है। मध्ययुग, (चाहे भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में देख लें या कट्टरपंथी चर्च के चंगुल में फँसे यूरोपीय समाज के इतिहास को), में वैज्ञानिक विकास को जो क्षति पहुँची वह जगजाहिर है। या फिर कुछ प्रयत्न

यदि हुए भी तो उनका एकमेव उद्देश्य रहा ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का | न्यूटन (1642 ई.-1727 ई.) का सारा प्रपञ्च परोक्ष रूप से वस्तुतः इसी हेतु की सिद्धि के लिए रहा।

"The philosophy which has seemed appropriate to science has varied from time to time. To Newton and most of his English Contemporaries science seemed to afford proof of the existence of God as the Almighty Law giver "[67]

थोड़े से विषयान्तर के बाद पुनः लौटेते हैं हैकेल और उसकी 'द रिडिल ...' कीओर। हैकेल (1834-1919) का पूरा नाम अन्स्ट हिनरिच हैकेल (Ernst Heinrich Haeckel) था। जर्मनी के एक छोटे से शहर पोडैम (potsdam) से आने वाले इस वैज्ञानिक ने उन्नीसवां सदी के उत्तरार्द्ध में अपने 'रिकैपिचुलेशन'के सिद्धान्त से वैज्ञानिक हलके में बड़ी धूम मचाई थी। यह सिद्धान्त 1865 ई.में दिया गया था। रिकैपिचुलेशन का अर्थ है पुनरावृत्ति/ दोहराव।

इस सिद्धान्त के अनुसार

"Ontogeny repeats phylogeny (embryonic stages represent past stages in the organism's evolution)" *.

अर्थात्

'सम्पूर्ण जाति/ वंश (species genus) के विकास लक्षण एक अकेले व्यक्ति या उस जाति/वंश के सदस्य के विकास लक्षण में दोहराये जाते हैं।' ध्यान देने की बात यह है कि यह सिद्धान्त मूलतः भ्रूण विकास के सन्दर्भ में दिया गया था। कहने का आशय यह है कि मनुष्य और हमारे पूर्वज वनमानुषों

1 Bertrand Russell - The Impact of science on society: Routledge Publication; Reprinted 2003; chapter 6 page 90 (apes) के भ्रूण निश्चित रूप से एक ही विकास प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने हैकेल के इस सिद्धान्त को पुनर्जन्म का सांकेतिक सिद्धान्त कहकर खारिज कर दिया और आज वस्तुतः यह सिद्धान्त इतना प्रभावी नहीं रह गया है किन्तु इससे भ्रूणविज्ञान के विकास को अधिकाधिक मदद मिल सकी है।

हैकेल का दूसरा बड़ा योगदान 'इकोलोजी' (ecology) नामक शब्द गढ़ने का है। 1869 ई. में इकोलोजी नामक विज्ञान का जन्मदाता हैकेल ही था। इकोलोजी का अर्थ होता है पारिस्थितिकी विज्ञान। इसके अन्तर्गत एक ही पारिस्थितिकी-तन्त्र (eco-system) में रहने वाले जीव-जन्तुओं (Fauna), वनस्पतियों (Flora) तथा सूक्ष्म जीवाणुओं (Micro-organisms) के पारस्परिक सम्बन्ध तथा एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन सम्बन्धों का, व्यापक स्तर पर, समूची प्रकृति और पर्यावरण।

* संक्षेप में इस सिद्धान्त को जानने के लिये देखें The Words worth Encylopaedia, Vol 3 Helicon Pub. Ltd' 1995, Page 967, या फिर विस्तार से जाने के लिए 'द रिडिल...' के अध्याय IV, VIII और IX

देखें 'द रिडिल...' पृ. 95, तथा प्र. 29 “Ontogenesis is a brief and rapid recapitulation of phylogenesis"

पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन इकोलोजी के अन्तर्गत ही किया जाता है। व्यापक स्तर पर देखें, तो इकोलोजी पर्यावरण विज्ञान (Environmental Science) की एक शाखा के रूप में आज जानी जाती है और इसका महत्त्व विशेषकर आज के युग में और भी अधिक बढ़ गया है। जिज्ञासु जन हैकेल के कामों को विस्तृत रूप में जानने के लिये निम्नलिखित पुस्तकें देख सकते हैं

1. बेसिक इकोलोजी BasicEcology-E.P. Odum Holt-seunders Intl. ed. Japan)

2. इसेन्शियल्स ऑव इकोलोजी (Essentials of Ecology)-Townsend C.R. Harper John L., Begon Michael Blackwell Science Publication.

3. द इकॉनमी ऑव नेचर (The economy of Nature)-Robert E. Ricklefs. W.H. Freeman Publication, New York.

या फिर 'इकोलोजी एण्ड इन्वायरनमेन्ट' (Ecology and Environment), द्वारा- पी.डी.शर्मा (दिल्ली विश्वविद्यालय) रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ भी देखी जा सकती है।

उन्नीसवां सदी के उत्तरार्द्ध का हैकेल बहुत महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक था। वह डार्विन के "विकासवाद' (1859 ई.) और जीन लैमार्क (1809 ई.) के 'अनवरत विकास सिद्धान्त' भावित था। डार्विन के विकासवाद से तो वह इतना प्रभावित था कि उसने डार्विन को जैव-जगत का कोपरनिकस तक कह दिया-

"Darwin is the Copernicus of the organic world"[68]

हैकेल, डार्विन का समकालीन था। डार्विन के विकासवाद से प्रेरित होकर हैकेल ने इस सिद्धान्त को मनोविज्ञान और दर्शन की गूढ समस्याओं पर भी आरोपित करके देखने का प्रयास किया। दुर्भाग्य से वह असफल रहा, मैनें इसकी संक्षिप्त चर्चा इसी अध्याय में आगे यथास्थान की है।

हैकेल के विषय में आगे बढ़ने से पहले मैं उसके पुस्तकों की विस्तृत सूची अभी तत्काल देना चाहूँगा क्योंकि इनके संदर्भ से ही कुछ और बातें आगे खुलेंगी।

हैकेल के पुस्तकों की सूची

1. फिलासफी ऑव द कैल्सिसपोन्जिया (Philosophy of the Calcispongia) 1872 ई. 2. नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन (Natural History of Creation) 1868 ई.

3. एन्थ्रोपोजेनी (Anthropogeny) 1874 ई.

4. जेनरल मॉरफोलोजी ऑव आर्गेनिज्म्स (General Morphology of Organisms) 1866 ई.

5. सिस्टेमेटिक फ़िलोजेनी (Systemetic phylogeny) -1894 ई., 1895 ई., 1896 ई. 6. थियरी ऑव गैस्ट्रिया (Theory of Gastrea) 1872 ई.

7. स्टडीज ऑव द गैस्ट्रिया थियरी (Studies of the Gastrea theory) -1873 ई, 1874 ई.

8. फी साइन्स एण्ड फी टीचिंग (Free science and Free teaching) 1878 ई.

9. जेनरल नेचुरल हिस्ट्री ऑव द रेडियोलेरिया (General natural history of the

radiolaria). 1887 ई.

10. द पेरिजेनेसिस ऑव द प्लैस्टिड्यूल (The Peregenesis of the Plastidule) 1876 ई.

11. मोनिज्म बाई हैकेल- (Monism By Haeckel)

12. द लास्ट लिंक (अनु. डॉ०. गैडो) -(The Last Link; tr. Dr. Gadow)

13. द इवोल्यूशन ऑव मैन (The Evolution of man)

14. वन्डर्स ऑव लाइफ़ (Wonders of Life)

कुछ पुस्तकों के आगे उनके प्रकाशन वर्ष नहीं दिए जा रहे हैं, उपलब्ध स्रोत से यह जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

हैकेल की इन पुस्तकों में, 1868 ई. की, 'नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन' स्वयं लेखक की अपनी अपेक्षा से अधिक लोकप्रिय हुई थी और 1899[70] ई. में 'द रिडिल के लिखे जाने तक यह हैकेल की परमप्रसिद्ध कृतियों में समझी जाती रही।

"If the success of my General Morphology was far below my reasonable anticipation, that of the Natural History of creation went far beyond it."[71]

'द नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन' में हैकेल ने लैमार्क, और डार्विन के विकास सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा की है (देखें द रिडिल' का पृ. 29)। 'जनरल मॉरफोलोजी में हैकेल पहली बार शरीर के अन्दर के भागों के विकास सिद्धांत के बारे में भी ब्यौरा प्रस्तुत करता है। इसका पहला खण्ड 'जनरल एनेटॉमी' तथा दूसरा खण्ड 'जनरल इवोल्यूशन' पर केन्द्रित है (देखें वही पृ. 29)। इन दो पुस्तकों के बाद हैकेल की दो और पुस्तकें 1874 ई. तथा 1896 ई. में क्रमशः "एन्थोपोजेनी' (Anthropogeny) तथा "सिस्टेमेटिक फिलोजेनी' (Systemetic Phylogeny) अधिक चर्चित रहीं। इन पुस्तकों में हैकेल, विकास सिद्धांत का दायरा जैव-विकास से बढ़ाकर समस्त जगत की स्थूल वस्तुओं के विकास तक ले गया। किन्तु जीवन-जगत की स्थूल संरचनाओं के क्रमिक विकास की व्याख्या के बाद जब वह 'द रिडिल .... '

में डार्विन के विकास सिद्धांत को आत्मा, ईश्वर, मनोविकारों और मानव-व्यवहारों पर लागू करते हुए इन्हें पूर्णतः भौणिक (embryonic) और इसलिए विशुद्धतः भौतिक विकास के अधीन बताता है तब हैकेल अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों से बिल्कुल अलग और मौलिक बात करता है और अब हैकेल 'द नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन' और 'सिस्टेमेटिक फिलोजेनी' के लेखक के रूप में नहीं बल्कि 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' के लेखक के रूप में जाना जाने लगता है। यह सब संभव होता है।

1899 ई. के बाद। यह एक विचित्र संयोग है ही कि जर्मनी के ही दो वैज्ञानिक ई.एच. हैकेल और मैक्स प्लैंक दोनों 1899 ई. में अपनीअपनीप्रस्थापनायें विज्ञान की दो उन्नत और शाखाओ क्रमशः प्राणिविज्ञान और भौतिक विज्ञान में दे रहे थे। बता दूं कि दोनों के सिद्धांतों का मूल स्रोत डार्विन का विकास सिद्धांत ही था।

आश्चर्य की बात है कि हिन्दी साहित्य में आचार्य शुक्ल के 'विश्व प्रपञ्च' के बाद से आज तक जहाँ कहीं भी दो-चार स्थानों पर इस पुस्तक ('द रिडिल) का जिक्र मिलता है, कहीं भी इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई पुष्ट जानकारी नहीं मिलती। इस संदर्भ में सर्वाधिक लोकप्रिय स्रोत डॉ०. नामवर सिंह द्वारा सम्पादित चिन्तामणि-3 में भी नहीं। जबकि स्वयं 'द रिडिल' के पन्नों में इस बात के कई प्रमाण उपलब्ध हैं कि 'द रिडिल.' का इतिहास आज से लगभग एक सौ पाँच साल पुराना है। इनमें से दो प्रमाणों के साथ मैं यहाँ आगे कहना चाहूँगा कि 'दि रिडिल.' का रचनाकाल 1899 ई. का है।

पहला प्रमाण ('द रिडिल' के पृष्ठ 22 पर)

"Those are the main points of my "gastrea theory" in a series of "studies of the gastrea theory"(1873-1884)". It is now (for the last fifteen years) accepted by nearly all my colleagues".

सन् 1884 ई. तक हैकेल की 'स्टडीज़ ऑव द गैस्ट्रिया थियरी' सिरीज़ छपती रही। हैकेल के अनुसार आरंभ में इसका खूब विरोध हुआ किन्तु आज पिछले पन्द्रह सालों से यह सिद्धांत सर्वमान्य हो गया है। मैं कहना चाहूँगा, यह

बात हैकेल महोदय जब 'द रिडिल में लिख रहे हैं तब गणित के सामान्य योग नियम से सन् 1884 के आगे 15 वर्ष, सन् 1899 ई. हो हुआ। इसलिए 'द रिडिल' का रचनाकल 1899 ई. ठहरता है।

दूसरा प्रमाण ('द रिडिल' के पृष्ठ 26 पर)

"For these reasons it can easily be understood... theory of origins... fierce controversy, in the course of the last forty years".

यह जो थियरी ऑव ओरिजिन्स की बात हैकेल ने कही है वह 1859 ई. में छपी डारविन की 'द ओरिजिन ऑव स्पिसीज़' के संदर्भ में कही है और आगे हैकेल ने बताया है कि किस तरह पिछले चालीस वर्षों में यह "जैवोत्पत्तिसिद्धांत" कितना सशक्त होकर उभरा है। इस प्रकार, जब यह बात हैकेल महोदय 'द रिडिल में लिख रहे होते हैं तब पिछले चालीस वर्ष ("the last forty years") कहकर डार्विन (1859 ई.) तक तभी पहुंचा जा सकता है जब 'द रिडिल' कर रचनाकाल 1899 ई. हो क्योंकि पुनः गणित के सामान्य अंतर नियम से सन् 1899 में 40 वर्ष निकालने पर ही सन् 1859 आयेगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि 'दि रिडिल' का रचनाकाल 1899 ई. ही है। वैसे इस आशय की जानकारी कि ' द रिडिल' का रचनाकाल 1899 ई. 'दि रिडिल के 'आथर्स प्रिफेस' से भी मिल जाती है।

कल बीस अध्यायों में विभक्त 'द रिडिल' को विवेचन और विश्लेषण की सुविधा के लिए तीन प्रमुख विभागों में बाँटा जा सकता है।

पहला, बाह्य जगत के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन (अध्याय 1 से अध्याय 5 तथा अध्याय 12 से अध्याय 14);

दसरा, अन्तर्जगत (मन/आत्मा) के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन (अध्याय 6 से अध्याय 11);

तीसरा और अंतिम, संपूर्ण जगत के विकास का दार्शनिक विवेचन तथा एकेश्वरवाद (अध्याय 15 से अध्याय 20)।

इन अध्यायों में से अध्याय 5 'मनुष्य की उत्पत्ति' (द हिस्ट्री ऑफ आवर स्पिसीज) तथा अध्याय 8 आत्मा का गर्भ विकास' (द इम्ब्रायोलॉजी ऑफ सोल) विकासवाद को ठीक से समझने के लिए विशेष महत्त्व के हैं जबकि

अध्याय 17, 'विज्ञान और ईसाई मत' (साइन्स एण्ड क्रिश्चियेनिटी) इस बात को समझने में सहायता प्रदान करता है कि "इस पुस्तक ने सबसे अधिक खलबली पादरियों के बीच (क्यों) डाली जिनकी गालियों से भरी हुई सैकड़ों पुस्तकें इसके प्रतिवाद में निकली।"72

वैज्ञानिक हैकेल ने चर्च की मतान्धता को वैज्ञानिक नजरिये से देखने का आग्रह, 'दि रिडिल' में किया है। 'द रिडिल' जिसका शाब्दिक अर्थ विश्व की समस्यायें हुआ, ऐसी ही कई अन्य जीवन जगत की समस्याओं पर बहस छेड़ती है। इन समस्याओं में मनोविज्ञान संबंधी समस्यायें, धर्म और दर्शन संबधी बहसें, जीवन की उत्पत्ति और विकास संबधी अनेक उलझनों का निराकारण, विज्ञान और प्रकृति के मूलभूत नियमों की जाँच पड़ताल और विश्लेषण से जुड़ी समस्यायें आदि शामिल हैं।

अपने इस लघुशोध प्रबंध के लिए मैनें 'द रिडिल' के जिस संस्करण को आधार बनाया है वह वॉट्स एण्ड कंपनी, लंदन द्वारा छापा गया आठवाँ संस्करण है। 1911 ई. में यह संस्करण छापा गया था। जैसा कि पहले ही बताया गया कि 'द रिडिल नाम अनुवादक जोसेफ मैक्कैब का दिया गया है,

ठीक उसी तर्ज पर विश्व प्रपञ्च नाम आचार्य शुक्ल द्वारा दिया गया। "विश्व प्रपञ्च' में जोसेफ मैक्केब संबधी एक सूचना इस प्रकार है -

"हैकेल की पुस्तक के जिस अंग्रेजी भाषान्तर का यह हिन्दी अनुवाद है

वह जोसेफ मैक्कैब का किया हुआ है। इन्होनें हैकेल का एक जीवन चरित्र और हैकेल पर किए हुए आक्षेपों के उत्तर में एक पुस्तक भी लिखी है"। आचार्य शुक्ल द्वारा दी गई हैकेल की दो पुस्तकों की जानकारी के अतिरिक्त मैं जोसेफ मैक्कैब की पुस्तकों की सूची में कुछ नाम और जोड़ना चाहूँगा।

जोसेफ मैक्कैब की पुस्तकों की सूची

1. द रिलिजन ऑव वुमन	The religion of woman
2. वुमन इन पॉलिटिकल इवोल्यूशन	Woman in Political Evolution

3. द मार्टिरडम ऑव फेरर	The martyrdom of Ferrer
4. द टुथ अबाउट सैक्युलर एडुकेशन	The truth about secular education
5. फ़ॉम रोम टू रेश्नलिज्म	From Rome to Rationalism
6. व्हाई आई लेफ्ट द चर्च	Why I left the Church
7. अ हन्ड्रेड इयर्स ऑव एडुकेशनल कन्ट्रोवर्सी	A Hundred Years of Educationa Controversy)
8*. द राइज़ ऑव क्रिश्चैनिटी	The rise of Christianity
9. द लाइफ एण्ड लेटर्स ऑव जॉर्ज जैकब हेलियोक	The Life and Letters of George Jacob Halyoake
10. द बाइबिल इन यूरोप	The Bible in Europe
मैक्कैब की इन सभी पुस्तकों का संदर्भ 'द रिडिल' के अंतिम कुछ पृष्ठ (पृ. 142, पृ. 143 तथा पृ. 144) हैं। (* मूल पुस्तक का लेखक अल्बर्ट कैल्टॉफ है। यह जोसेफ मैक्कैब द्वारा किया गया अनुवाद (अंग्रेजी) है।	

जोसेफ मैक्कैब सम्बन्धी जानकारी के बाद अब पुनः लौटते हैं 'द रिडिल ...' और विश्व प्रपञ्च की ओर।

'द रिडिल आव द यूनिवर्स' के मूल पाठ और विश्व प्रपञ्च की चौरानबेपृष्ठीय भूमिका में एक विशेष सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का अर्थ और यह सम्बन्ध किन अर्थों में विशेष है? बिना इसकी जानकारी के ना तो विश्व प्रपञ्च की भूमिका का महत्त्व समझ में आ सकता है और ना ही "विश्व प्रपञ्च' के रूप में शुक्ल जी द्वारा 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' का अनुवाद के लिये चयन का उद्देश्य।

'द रिडिल से होकर गुजरते हुए पाठक यह पायेंगे कि पूरी पुस्तक केवल पाँच स्तम्भों पर टिकी है। केन्द्रीय स्तम्भ है, लैमार्क (1809 ई.) और चार्ल्स डार्विन (1859 ई.) का विकासवाद। इसमें जीव और जगत की उत्पत्तिविषयक सिद्धान्तों की विवेचना उन सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता-अवैज्ञानिकता की पड़ताल तथा जीवन के उद्भव और विकास की वैज्ञानिक व्याख्या पर एक बहस और उसका विश्लेषण सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त अन्य चार स्तम्भों में से दो स्तम्भ आधुनिक विज्ञान के दो मूलभूत सिद्धान्तों-द्रव्य तथा शक्ति के अन्तस्सम्बन्ध और उनकी

अक्षरता तथा प्लाँक (1890 ई.) द्वारा प्रतिपादित कणभौतिकी के सामान्य नियम, विकासवाद के लिये वैज्ञानिक आधार तैयार करते हैं तथा बाकी के दो स्तम्भ वैज्ञानिक विकासवाद से समर्थन और शक्ति ग्रहण कर तत्कालीन योरप (यूरोप) में ज्ञान-विज्ञान की मुख्यतः दो शाखाओं - दर्शन तथा मनोविज्ञान में आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, प्रकृति-ईश्वर, चित्तमनोविकार, संवेदन-जड़ता आदि अनेकानेक विमर्शों पर चल रही बहसों के वैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से अन्ततः ऐकेश्वरवाद की प्रस्थापना में मूर्त रूप को प्राप्त होते जान पड़ते हैं। इन सभी बातों की विधिवत् चर्चा इसी अध्याय के खण्ड 2 में यथास्थान की जा चुकी है। यहाँ हम पुनः विश्व प्रपञ्च की भूमिका की ओर लौटते हैं।

विश्व प्रपञ्च की भूमिका का विकास भी आचार्य शुक्ल ने 'द रिडिल' के संदर्भ में ऊपर बताई गई योजना के अनुरूप ही किया है। इस भूमिका के माध्यम से पाठकों के लिए विषय को बोधगम्य तथा सहज बनाकर हिंदी समाज में तयुगीन वैज्ञानिक विमर्शों के प्रचार-प्रचार का, आचार्य शुक्ल का, प्रयास निश्चित रूप से ऐतिहासिक महत्त्व का है। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि आज हिंदी सहित्य में तमाम बुद्धिजीवियों, विद्यार्थियों, साहित्यकारों को शुक्ल जी के इस प्रयास और इसके महत्त्व की जानकारी तक नहीं है और है भी तो लापरवाही भरी-सतही तौर पर, केवल सूचनापरक और काम चलाऊ जानकारी ही है। कारण बहुत साफ है- हिंदी भाषी पाठकों, विशेषकर हिन्दी साहित्य के मठाधीशों में विज्ञान को लेकर भयजनित लाचारी और शुक्लजी के कामों के प्रति एक अवैज्ञानिक समझ।

पूर्णतः आश्वस्त होकर कहा जा सकता है कि यह भूमिका हिन्दी भाषी पाठकों विशेषकर हिन्दी साहित्य के अध्येताओं की विज्ञान-विषयक सामान्य समझदारी को अधिकाधिक मात्रा में पुष्ट कर सकने में सक्षम है। इतना ही नहीं स्वयं शुक्ल जी की चिन्तनपद्धति को भी, यह भूमिका, नये सिरे से देखने के लिए पाठकों को उत्साह पूर्वक आमन्त्रित करती है।

'विश्व प्रपञ्च' का भूमिका भाग, जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है, पाँच प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है। पहला भाग, जो लगभग आरम्भ के बारह-तेरह पृष्ठों में फैला है, मुख्यतः द्रव्य और शक्ति के परस्पर सम्बन्ध को रेखाकिंत करते हए उसके महत्त्व को विकासवाद की सार्थकता से जोड़ता है। भूमिका में इसके आगे के लगभग तीस-इकतीस पृष्ठों में डार्विन के विकासवाद के साथ-साथ जीवों के विकासक्रम सम्बन्धी नाना प्रकार के विकास सिद्धान्तों की चर्चा है। इन आरम्भिक चालीस-पैंतालीस पृष्ठों के बाद आगे के लगभग पचास पृष्ठों में से कुछ पृष्ठ (ठीक-ठीक कहें

तो 2-3 पृष्ठों पृ. 83,84,85) प्लॉक की कण भौतिकी को समर्पित हैं, शेष पृष्ठों मे स्पेंसर आदि दार्शनिकों के महत्त्व की चर्चा डार्विन के विकासवाद के बरक्स की गई है और यह बताया गया है कि "विकासवाद को दार्शनिक रूप हर्बट स्पेन्सर द्वारा ही प्राप्त हुआ है।"[73] इसी भाग में भारतीय दर्शन में एकेश्वरवाद और उससे सम्बन्धित विभिन्न विचारों को विकासवाद के साथ जोड़कर (ध्यातव्य है 'द रिडिल' - मूल पाठ में भी हैकेल की सारी चर्चा का चरम ऐकेश्वरवाद (मोनिज्म) की प्रस्थापना के रूप में होता है।) देखने का प्रयास किया गया है। इस दूसरे महाभाग जिसके दो भागों का जिक्र (प्लाँक के कण भौतिकी के नियम और विकासवाद का दार्शनिक स्वरूप) ऊपर किया गया है का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा वह है जिसमें मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों हल के रूप में डार्विन के विकासवाद की चर्चा की गई है। हैकेल ने भी 'द रिडिल' में मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों, की जटिलताऔर उनके समाधान में विकासवाद के योगदान, को एक चुनौती के रूप में देखा है। मनोविज्ञान सम्बन्धी यह विश्लेषण दूसरे महाभाग को पहले भाग से जोड़ने का काम करता है। इस प्रकार से ये पाँच भाग पूरे होते हैं।

'विश्व प्रपञ्च' की भूमिका के इन पांचों भागों को अध्ययन और विवेचन की सुविधा के लिए पुनः दस उप-भागों में बाँटा जा सकता है

विश्व प्रपञ्च की भूमिका (परिचय)

(A) प्रकृति के निया	**(B) विकासवाद**	**(C) मनोविज्ञान**	**(D) दार्शनिकपक्ष**	**(E) मोनिज्म के नियम**
1.द्रव्य और शक्ति का सम्बन्ध तथा उनके संरक्षण सम्बन्धी सिद्धांत का अनुप्रयोग 2. आकाश (स्पेस) और ईश्वर सम्बन्धी	3. पृथ्वी पर जीवोत्पत्ति और पृथ्वी का वर्तमान स्वरुप 4. प्राणियों की शरीर रचना लेमार्क वाद और अनुकूलन तथा विकास सिद्धांत की	6. मस्तिष्क सवेदन शीलता, चेतन-अचेतन का विकासवाद के प्रकाश में विश्लेषण तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी कुछ उत्तेजक प्रश्नों की	7. स्पेसर द्वारा विकास सिद्धांत की दार्शनिक व्याख्या 8. यह जगत क्या है? एक दार्शनिक विवेचन (कांटा)	10. प्लान्कके कवान्टम भौतिकी के सिद्धांत एवं उनका विकास वाद से सम्बन्धत था एक ईश्वरवाद (मोनिज्म)की प्रस्थापना के रुप में

अवधारणा का विवेचन	पृष्ठभूमि 5. डार्विन कावि का संवाद सिद्धांत और उस का अनुप्रयोग तथा विकास परमसत्य है'' की घोषणा	चर्चा	9. हीगेल और उसका पश्चात्वती दर्शन	विषय का चरमोत्कर्ष

1. द्रव्य और शक्ति का सम्बन्ध

"द्रव्य और शक्ति का नित्य सम्बन्ध है। एक की भावना दूसरे के बिना हो ही नहीं सकती। न शक्ति के बिना द्रव्य रह सकता है और न द्रव्य के आश्रय के बिना शक्ति कार्य कर सकती है।''[74]

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है 'दरिडिल ऑव द यूनिवर्स' की पूरी सामग्री का मूल आधार एक तोडा विनका विकास सिद्धान्त है दूसरा तत्वा द्वैत वाद तो फिर विश्व प्रपञ्च की भूमिका को भी इसी प्रकाश में देखने से स्पष्ट हो जाता है कि पूरी भूमिका भी इन्हीं दो वादों के सहारे खड़ी है और सच भी है आधुनिक विज्ञान जिसे हमें क्वाँटम भौतिकी के नाम से जानते हैं वह भी सिद्धान्तों के एकीकरण (Unification of Theories) या टी.ओ.ई. (TOE) या सबके लिए एक सिद्धान्त (Theory of Every Thing) की ही बात करता है। सामान्यरूप से यदि देखा जाय तो 'रज्जु- सिद्धान्त' (String Theory) जिसका प्रमुख प्रतिपादक सर स्टीफेन हॉकिंग Sir Stephen Hawkings) नाम का ब्रिटिश वैज्ञानिक है भी इसी एकीकरण (Unification) की बात करता है। ध्यान देने की बात यह है कि इन सभी सिद्धान्तों जो कि अपेक्षाकृत नये हैं की आधार शिला महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का वह परम प्रसिद्ध द्रव्यमान तुल्यता सम्बन्ध है जिसकी और संकेत आचार्य शुक्ल ने यह कहकर किया कि

"द्रव्य और शक्ति का नित्य सम्बन्ध है।

आइन्स्टीन के उस परम प्रसिद्ध तुल्यता सम्बन्ध का रूप कुछ इस प्रकार है।

$\Delta E = \Delta M \times C^2$

जहाँ ΔE शक्ति या ऊर्जा (जिसे शुक्लजी ने कहीं कहीं गति भी कहा है,) में परिवर्तन हैं।

ΔM, मात्रा अथवा द्रव्यमान में अन्तर/परिवर्तन है तथा

C^2 प्रकाश के वेग (3.0×10^8 मी./से.) का वर्ग है। इस सम्बन्ध के अनुसार प्रत्येक द्रव्यमान एक निश्चित परिमाण की ऊर्जा में बदला जा सकता है किन्तु इसका उल्टा (Vice-Versa) संभव नहीं है। अर्थात् दव्य और शक्ति निश्चित रूप से किसी एक 'भावना' के दो पक्ष हैं। यह सम्भव इस प्रकार होता है कि द्रव्य के सूक्ष्म कणों 'अणुओं और परमाणुओं तथा अन्य मूलभूत घटकों (elementary/fundamental particles) का स्वरूप लुई डी ब्रॉग्ली के अनुसार ऊर्जामय ही होता है। वे सदैव अपने साथ एक विशेष प्रकार की तरंग ढोते रहते है। ब्रॉग्ली को इसी खोज के कारण 1929 ई. में भौतिकी का नोबेल भी मिला था। किन्तु जब यह भूमिका (विश्व प्रपञ्च की) लिखी जा रही थी तब कदाचित् इस सिद्धान्त (डी ब्रॉग्ली के) का प्रकाशन, प्रचार-प्रसार उतना न हआ होगा क्योंकि उस समय यह बिल्कुल नई अवधारणा थी। कदाचित इसी कारण से आचार्य शुक्ल ने अपनी भूमिका में सिद्धान्त को (द्रव्य और शक्ति के ऐक्य को) समझाने के लिए, आधार नहीं बनाया।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि आचार्य शुक्ल ने जिन बातों का उल्लेख द्रव्य और शक्ति के नित्य सम्बन्ध को समझाने के लिए किया वे कुछ भिन्न प्रकार की हैं।

आचार्य शुक्ल ने प्रतिपालनीय ऊर्जा (sustainable energy/intrinsic energy) के सहारे अपनी बात को समझाने का प्रयास किया है जैसे रेडियोधर्मिता में प्रयोग होने वाली ऊर्जा का स्वरूप या कणों (परमाणुओं) और प्रतिकणों (प्रतिपरमाणुओं) की ऊर्जा का स्वरूप। कदाचित् इसी कारण उन्होंने ऊर्जा या शक्ति को गति का नाम भी दिया हो क्योंकि इस प्रतिपालनीय ऊर्जा के कारण ही पिण्ड या पिण्डकण गत्यावस्था में होते हैं।

किन्तु डी ब्रॉग्ली ने जिस ऊर्जा की बात की है उसे विज्ञान की भाषा में प्रतिस्थापनीय ऊर्जा या Convertible energy कहते हैं। यह ऊर्जा प्रतिपालनीय ऊर्जा से भिन्न है।

2. आकाश और ईथर सम्बन्धी अवधारणा

उन्नीसवी सदी का उत्तरार्द्ध और बीसवां सदी का पूवार्द्ध कई महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों के अतिरिक्त एक जिस महत्त्वपूर्ण खोज के लिए जाना जाता है वह है सापेक्षता का सिद्धान्त (Theory of Relativity) इस सिद्धान्त का प्रतिपादक आइन्स्टीन था। इस सिद्धान्त ने एक सिरे से तमाम वैज्ञानिक मान्यताओं की जड़ों को हिलाकर रख दिया।

ईथर की संकल्पना मूल रूप से इसी सिद्धान्त की उपज रही है। वैद्युत चुम्बकीय तरंगों के चलने के लिए एक 'माध्यम-शून्य माध्यम' या पदार्थ रहित

माध्यम' की संकल्पना सामने आई इसे ही ईथर कहा गया। माईकेल्सन-मोर्ले ने प्रकाश की गति के साथ एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध प्रयोग करके ईथर के अस्तित्व को चुनौती दी थी। फिर आगे चलकर लार्ड केल्विन जैसे वैज्ञानिकों ने यह समझाने की कोशिश की कि इसी ईथर से सम्पूर्ण जगत द्रव्य निकसित और विकसित हुआ है।

"ईथर पकड़ में आने वाला द्रव्य नहीं है, यह एक अग्राह्य पदार्थ है। वैज्ञानिकों ने इसकी परीक्षा केवल प्रकाश के वाहक के रूप में की है। केल्विन ने इसी ईथर को जगत् का उपादान ठहराया है; उन्होंने कहा कि समस्त ग्राह्य द्रव्यखण्ड इसी ईथर के भंवर मात्र हैं।"75

किन्तु आज हम सभी जानते हैं कि लार्ड केल्विन की इस बात में बहुत दम नहीं है क्योंकि इससे कहीं अधिक वैज्ञानिक सिद्धान्त जिसे अपस्फोटन का सिद्धान्त या महानाद का सिद्धान्त कहते हैं (Big Bang theory कहते हैं) ब्रह्माण्ड उत्पत्ति विषयक घटनाओं को अधिक कुशलता के साथ व्याख्यायित करता है जिसमें नीहारिकाओं से लेकर तारों, ग्रहों और नक्षत्रों की उत्पत्ति की व्याख्या सम्मिलित है। आचार्य शुक्ल ने भूमिका में इसी ('बिग-बैंग थिअरी') पर प्रकाश डाला है।

3. पृथ्वी पर जीवोत्पत्ति और पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप और

4. प्राणियों का कायिक - विकास तथा विकास सिद्धान्त की पृष्ठभूमि

विधा की दृष्टि से जिसे तीसरा भाग कहा जा रहा है वस्तुतः यही सभी समस्याओं का मूल है। जीवन की उत्पत्ति और स्वयं पृथ्वी के अस्तित्व सम्बन्धी चिन्तन में भूगर्भ शास्त्रियों, जन्तु वैज्ञानिकों, धर्माचार्यों आदि में बहुत ही मौलिक भेद हैं। किंतु विडम्बना यह है कि इस विषय में अब तक कोई मौलिक चिन्तन प्रकाश में नहीं आया है। चार कल्पों का वर्गीकरण और सजीव से निर्जीव तथा निर्जीव से सजीव सम्बन्धी उत्पत्ति के विवाद अभी तक चले आ रहे हैं।

"प्रथमकल्प में पुष्पहीन पौधे, जन्तुओं में स्पंज, मूंगे, शुक्तिवर्ग के कीड़े, कीट पतंग चतुर्थकल्प में हाथी की तरह के पर उससे बहुत बड़े और रोएँदार मैमथ आदि जन्तु, मनुष्य तथा वे सब जीव जो आजकल पाये जाते हैं।

चौथा खण्ड (प्राणियों का कायिक-विकास तथा विकास सिद्धान्त की पृष्ठभूमि) भी कुछ नया प्रस्तुत नहीं करता है। लैमार्क ने जो भी कहा है, अब तक वही चला आ रहा है। लैमार्क ने अनकलन का सिद्धान्त दिया और कहा कि परिस्थितियों के प्रभाव से जीवन के स्वरूप बदलते रहते हैं। जैसे कि उस क्षेत्र में जहाँ कि, पेड़ों पर ऊँची-ऊँची डालें/शाखायें रही हैं वहाँ के शाकाहारी जन्तु उचक-उचककर या गर्दन को सप्रयास बहुत उठाकर खाते रहे। परिणाम यह हुआ कि वहां हजारों वर्षों की समयावधि बीत जाने के बाद जिराफ़ सदृश जन्तुओं का प्रादुर्भाव होने लगा। इसी प्रकार साँपों के बारे में भी कि, साँपों के पास पहले अवश्य ही अन्य सरीसृपों की भांति अग्र और पश्चपाद रहे होंगे किन्तु झाड़ियों में रेंगने या चलने के कारण और रात्रिचर होने के कारण उन्हें निर्बाध रूप से गमनागमन में असुविधाओं का सामना करना पड़ा होगा, साँप सदृश सरीसृपों के शरीर से ये पाद सदृश संरचनायें लुप्त होने लगी और आज हम पादहीन रूप में साँपों को देखते हैं।

'पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति' और 'जीवन का विकास' ये दो ऐसे विषय रहे है जो आरम्भ से ही वैज्ञानिकों के लिए एक जटिल प्रश्न बनकर बार-बार सामने आते रहे हैं। किन्तु डार्विन से पूर्व इस प्रश्न का कोई संतोषजनक हल प्राप्त नहीं हो सका था। सच कहें तो डार्विन से पूर्व जैव विकास पर कम जैवोत्पत्ति पर अधिक बहस छिड़ी और अंत में यही निश्चित किया गया कि निर्जीव से ही सजीव की उत्पत्ति हुई होगी। 'मिलर' का परम प्रसिद्ध 'कोष्ठस्फुलिंग' (Chamber-spark) प्रयोग भी इसी की पुष्टि करता है और सिद्ध करने के क्रम में आगे मिलर ने कहा कि यदि किसी भी सजीव पिण्ड को नष्ट करो तो अन्ततोगत्वा निर्जीव घटक ही प्राप्त होंगे। यह सहज ही अनुमेय है किन्तु एक बड़ा भारी प्रश्न जो

चिंता का कारण बना वह था प्राणतत्व का। प्राणतत्व का या संवेदना का। या कह लें चेतना का। चेतना का अनुष्ठान इस शरीर से कैसे हुआ होगा? या फिर प्राणतत्व मूलतः है क्या?

इस विवाद पर प्रकाश डालने के लिए आचार्य शुक्ल ने शरीर विज्ञान (Physiology) के प्रसिद्ध आचार्य एडिनबरा के अध्यापक शेफर का एक बहुत बड़ा उद्धरण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है

"सजीव द्रव्य उत्पन्न कर देने की संभावना उतनी दूर नहीं है जितनी साधारणतः समझी जाती है। इच्छानुसार सजीव द्रव्य उत्पन्न किया जाने लगे तो भी आकार और व्यापार में परस्पर भिन्न जो इतने असंख्य प्रकार के जीव दिखाई पड़ते हैं विज्ञान के परीक्षालयों में उनके तैयार होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। यदि सजीव द्रव्य तैयार किया जा सकेगा, जिसमें मुझको कोई संदेह नहीं, तो वह द्रव्य के उबाले हुए अर्क से नहीं। चाहे आज तक काम में लाई गई युक्तियों और प्रमाणों पर हमें विश्वास न हो पर यह हमें मानना पड़ेगा कि निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य तैयार करने की सम्भावना है।[77]

"यदि हम यह मान लेते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में केवल एक ही बार निर्जीव से सजीव का विकास हआ तो प्राणतत्व संबंधिनी समस्याओं के अंतिम समाधान की कोई आशा नही रह जाती। पर क्या हमारा ऐसा मान लेना उचित है कि पृथ्वी पर केवल एक ही बार, वह भी न जाने किस शुभ संयोग से, निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य का विकास हुआ और प्राणतत्व की प्रतिष्ठा हुई? ऐसा मानने का कोई कारण न देख अंत में यही धारणा पक्की ठहरती है कि निर्जीव से सजीव का विकास एक ही बार नहीं कई बार हुआ है और कौन जाने अब तक भी हो रहा है।[78]

5. डार्विन का विकास सिद्धान्त-विकासवाद

हैकेल के शब्दों में डार्विन के काम का परिचय इस प्रकार है

"The unparalleled success of Charles Darwin is well known. It shows him today, at the close of the century, to have been, if not the greatest, at least the most effective, of its distinguished scientists. No other of the many great thinkers of our time has achieved so magnificent, so

thorough, and so far-reaching a success with a single classical work as Darwin did in 1859 with his famous Originof Species"[79]

चार्ल्स डार्विन की अद्वितीय उपलब्धि जगजाहिर है। यह उपलब्धि इस बात का द्योतक है कि, इस सदी के अन्त तक के सभी गणमान्य वैज्ञानिकों में यदि वह (डार्विन) महानतम नहीं तो कम से कम सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति तो है ही। हमारे समय के कई महान चिन्तकों में से किसी को भी इतनी भव्य और कालातीत सफलता नहीं मिली जितनी डार्विन को उसके प्रसिद्ध ओरिजिन ऑव स्पिसीज (1859) से।

डार्विन और उसके काम के बारे में हैकेल के ये शब्द केवल प्रशंसा में कहे गये शब्द नहीं है बल्कि इससे भी अधिक डार्विन के चिन्तन और खोज के उस महत्त्व को, उजागर करने वाले शब्द हैं, जिसने धर्म और दर्शन से लेकर विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में फैली अनेकानेक मान्यताओं की जड़े हिलाकर रख दी इतना ही नहीं डार्विन की इस उपलब्धि को जब हैकेल "for reaching" (फार रीचिंग) कह रहा है तब उसे पूरा विश्वास है कि डार्विन के जीवोत्पत्ति और जैव विकास संबंधी मान्यताओं की पैठ आने वाले समय में दर्शन और विज्ञान में इतने गहरे पहुंच जाएगी कि उसका विकल्प ढूँढना मुश्किल हो जायेगा। सच भी है आज लगभग डेढ़ सौ साल बाद भी डार्विन का विकाससिद्धान्त उतना ही शक्तिशाली है जितना उन्नीसवां सदी में था। इतनी अद्वितीय सफलता स्वयं न्यूटन को भी नहीं मिली थी। उसी के जीवन काल में सत्रहवां सदी में उसे उसके सिद्धान्तों का विरोध सहना पड़ा था, विशेषकर 'हाइगेन' के ' द्वितीयक तरंगिका सिद्धान्त' के द्वारा | मैंने न्यूटन का नाम इसलिए लिया क्योंकि यदि उसके सभी सिद्धान्तों (विशेषकर प्रकाशिकी से संबंधित) की गहन परीक्षा करें तो यह जान पड़ता है कि वह विज्ञान में भाववाद को प्रतिष्ठित करना चाहता था। डार्विन, प्लॉक तथा आइन्स्टीन ने विज्ञान में भौतिकवादी दृष्टिकोण को वाद के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। ऐसा किस प्रकार हो सका यह हम दो हिस्सों में देखेंगे। एक तो अभी तत्काल यहां 'डार्विन' के 'विकासवाद' की चर्चा के अन्तर्गत, दूसरा इसी अध्याय के अन्त में प्लॉक के कण-भौतिकी की चर्चा के अन्तर्गत, जिसका कि ज़िक्र 'द रिडिल' में हैकेल ने भी किया है और विश्व प्रपञ्च की भूमिका के अंतिम पृष्ठों में शुक्ल जी ने भी।

'चार्ल्स डार्विन' (1809 ई.-1882 ई.) एक अंग्रेज प्राणितत्व वेत्ता व हैकेल (1834 ई.-1919 ई.) का समकालीन था। उन दिनों जैव, विकास सम्बन्धी प्रश्नों ने विज्ञान के समूचे विमर्श को चुनौती दे रखा था और उनके समाधान की दिशा में प्रयास हो रहे थे। डार्विन से पहले फ्रेंच वैज्ञानिक लैमार्क (1744 ई. -1829) इस दिशा में कुछ प्रयास कर चुका था। लैमार्क का प्रमुख सिद्धान्त था - 'सतत् संघर्ष का सिद्धान्त' (Theory of perseverence)। इस सिद्धान्त ने ही डार्विन को उसके 'प्राकृतिक वरण (Natural selection) और 'योग्यतम उत्तरजीविता (survival of the fittest) के सिद्धान्त के लिए प्रेरित किया। ऐल्फ्रेड रसेल वैलास (Alfred Russel wallace) नाम का एक और अग्रेज प्राणितत्ववेत्ता था जिसने डार्विन के साथ मिलकर जैव विकास संबंधी सिद्धान्तों की नींव डाली। डार्विन की 'ओरिजिन ऑफ स्पिसीज़' छपने से पहले 1858 में वैलास और डार्विन ने लन्दन की लिनियन सोसाइटी (Linnean Society) में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। यह सोसाइटी आधुनिक विज्ञान (inodern Science) को आगे बढ़ाने वाली एक प्रमुख संस्था थी, जो बाद में 'साइन्टिफिक सोसाइटी ऑफ लन्दन' (Sienetitfic Society of London) के नाम से जानी जाने लगी। रसेल व डार्विन का सिद्धान्त दो हिस्सों में बँटा है

"First, more organisms are born than can survive to reproduce themselves, because the environment has limited means of subsistence. This over production results in a struggle for existence and ultimate survival of the fittest. The second observation is that off-springs, i.e. children differ slightly from their parents and from each other in characteristics which they inherit. This we now call genetic variation."[80]

पहली बात तो यह कि जितने जीव जीवित रहते हैं उससे कहीं ज्यादा संख्या में वे उत्पन्न होते हैं क्योंकि पर्यावरण (प्रकृति) के पास जीवन को सहारा देने वाले संसाधन सीमित हैं। यह जो अधिक जीवोत्पादन है वह अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्ष का कारण बनता है जिसका परिणाम 'योग्यतम की उत्तरजीविता' के रूप में सामने आता है। दूसरी बात यह है कि, संततियाँ अपने माता-पिता से और स्वयं आपस में भी एक दूसरे से कुछ भिन्न होती हैं। इसे ही 'आनुवांशिक भिन्नता' के रूप में जाना जाता है।

यहाँ केवल सूचना के लिए इतना बता देना पर्याप्त होगा कि उपरोक्त सिद्धान्त में जो आनुवांशिक-भिन्नता' की बात है उस पर 'डार्विन' और 'हैकेल' के ही समकालीन आस्ट्रिया के प्रमुख वनस्पतिशास्त्री 'ग्रेगर जॉन मेंडल' (1822-1884) अलग से काम कर रहे थे। आज मेंडल को 'आनुवांशिकी का पिता' (Father of Genetics) कहा जाता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि डार्विन के विकास सिद्धान्त के तीन प्रमुख घटक हैं

1. अस्तित्व के लिए संघर्ष

2. योग्यतम की उत्तर जीविता

3. आनुवांशिक भिन्नता

पहले दो घटक क्रमश: (1) और (2) को संयुक्त रूप से डार्विन का प्राकृतिक वरण (Natural selection) का सिद्धान्त कहा जाता है और यही प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त डार्विन के विकासवाद का मूलाधार है।

यहाँ पुनः केवल सूचना के लिए बता देना पर्याप्त होगा कि जिसे हम डार्विन का प्राकृतिक चयन/वरण (Natural selection) का सिद्धान्त कहते है, जिसके अनुसार-प्रकृति अपने सीमित संसाधनों के कारण स्वयं अपनी रक्षा और उस पर निर्भर रहने वाले प्राणिजगत् के समुचित पोषण और विकास के लिए, अपने विलक्षण तरीके से, बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेती है, वस्तुतः मौलिक रूप से अंग्रेज अर्थशास्त्री थॉमस राबर्ट माल्थस (1766-1834) का ही योगदान है जिसे उसने 1798 में अपनी पुस्तक “Essay on the Principle of Population"[81] (एसे ऑन द प्रिंसिपल ऑफ पॉपुलेशन) में प्रकट किया था। “एसे ऑन द प्रिसिंपुल ऑव पॉपुलेशन', 'ओरिजिन ऑव स्पिसीज़' का प्रेरणा स्रोत था- यह कहना अतिश्योक्ति न होगी।

"His Essay on the Principle of Population influenced Charles Darwin's thinking on natural selection as the driving force of evolution."[82]

इस प्रकार डार्विन का विकास सिद्धान्त सामूहिक रूप से माल्थस और मेंडल के सिद्धान्तों का अनुप्रयोगात्मक रूप है। डार्विन का महत्त्व इस बात में हैं कि पहली बार उसने इन सिद्धान्तों को समेट कर मनुष्य की उत्पत्ति और

विकास को वैज्ञानिक तरीके से समझने-समझाने का काम किया। 1863 ई. में उसकी दूसरी पुस्तक "डिसेन्ट ऑव मैन" (Descent of man) छपकर आई जिसमें उसने इन सभी पक्षों की सविस्तार चर्चा करते हुए बाइबिल की उस धारणा का खंडन किया जिसमें पूरी सृष्टि की रचना केवल छ: दिनों में होने की बात कही जाती है। चर्च ने डार्विन को इस 'गुस्ताखी' के लिए षडयंत्र कर नींद की गोलियाँ दिलवाकर मरवा दिया था। आज डार्विन के इस विकासवाद के लिए अनेक वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं। अभी यहाँ उन सबकी चर्चा करना संभव नहीं है।

अस्तित्व के लिए संघर्ष, योग्यतम की उत्तरजीविता तथा आनुवांशिक भिन्नता, इन तीन घटकों की चर्चा अभी ऊपर डार्विन के विकास सिद्धान्त के रूप में की गई और यह भी कहा गया कि अस्तित्व के लिए संघर्ष और योग्यतम की उत्तरजीविता को संयुक्त रूप से प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त कहा जाता है।

आचार्य शुक्ल ने आनुवांशिक भिन्नता को 'जात्यंतरपरिणाम' के रूप में देखा है और प्राकृतिक वरण को जात्यंतर परिणाम का सहयोगी कारक बतलाया है।

"जिस जात्यंतर परिणाम को एक व्यक्ति में तीव्र परिणाम के रूप में पतंजलि ने अपने योगदर्शन में प्रकृति की पूर्णता से संभव बतलाया था उसी को डारविन ने मृदु परिणाम के रूप में वंश-परम्परा के बीच प्रकृति का एक नियम सिद्ध किया यह जात्यन्तर परिणाम होता किस प्रकार है? "वंश परम्परा" और 'प्राकृतिक ग्रहण' के नियमानुसार।[83]

विश्व प्रपञ्च की भूमिका में आचार्य शुक्ल ने डार्विन के विकासवाद पर खूब खुलकर लिखा है साथ ही वे अनेकानेक उदाहरणों- कभी विज्ञान से, कभी भारतीय दर्शन से, तो कभी जीवन के सामान्य अनुभवों से विकासवाद के पक्ष को एक ओर जहाँ मजबूत करते दिखाई देते हैं वहीं दूसरी ओर डार्विन के विकासवाद को हिन्दी के पाठकों के लिए सहज ग्राह्य और बोधगम्य बनाते चलते हैं।

आचार्य शुक्ल ने डार्विन के विकासवाद में आनुवांशिक भिन्नता (जात्यंतर परिणाम) को परिस्थिति जन्य बतलाया है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। ये परिस्थितियाँ नितान्त ही भौतिक किस्म की और ज्ञेय तथा विश्लेष्य होती हैं। इस बात को आचार्य शुक्ल ने समझाने के लिए भौतिक पदार्थों की अवस्थाओं, में ताप, दाब, आयतन आदि परिस्थितियों में 'फेरफार' के कारण होने वाले परिवर्तन सम्बन्धी उदाहरण का सहारा लिया है। इस प्रकार जीवन के

समस्त क्रिया व्यापार यहां तक कि उद्भव और विकास किस प्रकार इस भूत जगत के नियमों के साथ आपस में अदला-बदली करते हैं, आचार्य शुक्ल के विवेचन से यह बात साफ हो जाती है। इसी के साथ दो बातें और साफ होती हैं। पहली तो यह कि, शुक्ल जी ने भौतिक जगत में परमाणुओं की गति को जीवन में स्पन्दन के साथ मिलाकर देखने का आग्रह करते हुए अपनी अनाध्यात्मवादी दृष्टि को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है और दूसरी बात यह कि जीवन अर्थात् चेतना अर्थात् विचार किस प्रकार जड़ पदार्थों में और पुनः जड़ पदार्थों की किस प्रकार जैविक शक्तियों में अदला-बदली संभव हो सकती है-इस भौतिकवादी अवधारणा पर अपनी सहमति दी है। न सिर्फ सहमति दी है बल्कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के इस मूल प्रस्ताव के पक्ष में हक्सले और शेफर के सहारे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी उठाया है

"चाहे आज तक काम में लाई गई युक्तियों और प्रमाणों पर हमें विश्वास न हो पर यह हमें मानना पड़ेगा कि निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य तैय्यार करने की संभावना है।[84] 'यदि हम यह मान लेते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में केवल एक ही बार निर्जीव से सजीव का विकास हुआ पर क्या हमें ऐसा मान लेना उचित है ऐसा मानने का कोई कारण न देख अंत में यही धारणा पक्की ठहरती है कि निर्जीव से सजीव का विकास एक ही बार नहीं कई बार हुआ है और कौन जाने अब भी हो रहा हो।"[85]

"यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रमुख सिद्धान्त है जो अजीव से जीव और अचेतन से चेतन का विकास समझने में सहायता करता है।"[86]

खण्ड 5 के अन्तर्गत यह तो चर्चा हुई डार्विन के विकासवाद की, किन्तु ऐसा नहीं कि शुक्ल जी ने तटस्थ होकर डार्विन के विकासवाद को हिन्दी जन के ज्ञान-श्री में वृद्धि के लिए केवल उद्धत मात्र कर दिया हो बल्कि विकासवाद की खूबियों और खामियों की विधिवत् समीक्षा भी की है। विकासवाद चूंकि एक वैज्ञानिक अवधारणा है इसलिए इसमें भी लगातार मार्जन-परिमार्जन की संभावनायें गर्भस्थ हैं। ऐसा नहीं कि डार्विन का विकासवाद जीवन की उत्पत्ति, विकास और समस्त क्रिया-व्यापारों के प्रसंग में पूर्ण, अंतिम और शाश्वत है। वस्तुतः कोई भी वैज्ञानिक अवधारणा कभी भी विकास परम सत्य है का अपवाद हो ही नहीं सकता, चाहे वह स्वयं विकासवाद ही क्यों ना हो। शुक्ल जी ने विकासवाद की सीमाओं को रेखांकित करते हुए विकासवाद की वैज्ञानिकता के पक्ष में एक बहुत ही

महत्त्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है। यह विवेचना क्या है? इसका विस्तृत विवरण भूमिका भाग में मनोविज्ञान और दर्शन सम्बन्धी गूढ प्रश्नों के उत्तर ढूँढने के प्रयास में, शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। यहां हम केवल अपनी बात पूरी करने के लिए इस विवेचन की संक्षिप्त चर्चा पर्याप्त समझते हैं जिसे संयुक्त रूप से अगले खण्ड (6), (7), (8) तथा (9) के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

6/7/8/9 मनोविज्ञान एवं दर्शन

'द रिडिल' में हैकेल ने डार्विन के विकासवाद के प्र अधिक ही उत्साह दिखाते हुए दृश्य जगत के उद्भव और विकास की व्याख्या के साथ-साथ अदृश्य जगत की अवधारणाओं- चेतना, आत्मा, मनोविकार, सौंदर्यबोध आदि के उद्भव और विकास सम्बन्धी अपेक्षाकृत जटिल और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया है। उत्साह से भरा यह प्रयास अनेक संभावनाओं से भरा तो हुआ है लेकिन विकासवाद के प्रति अतिरिक्त आग्रह के कारण हैकेल उसकी सीमाओं को पहचानने में चूक गया है। पता नहीं चूक गया है या कि तत्कालीन योरप में चल रही मनोविज्ञान विषयक बहसों (जिसका जिक्र शुक्ल जी ने भूमिका में बड़े ही व्यवस्थित ढंग से किया है, और अभी आगे यहां जिसे उद्धत भी किया जायेगा) में उठे आक्रामक प्रश्नों से विकासवाद के सिद्धान्त को बचाने के लिए जान-बूझकर (सीमाओं को) प्रकट नहीं करता है। ऐसे विषय (मनोविज्ञान, चेतना, आत्मा, संवेदना आदि से सम्बन्धित) सच कहें तो आज भी वैज्ञानिकों से अधिक दार्शनिकों की रूचि के क्षेत्र हैं औ हैकेल, मूल रूप से, विज्ञान और दर्शन में भेद मानने को न सिर्फ दुर्भाग्यपूर्ण मानता है बल्कि ज्ञान की पद्धति के विकास के लिए घातक भी मानता है, इस कारण वह विकासवाद जैसी वैज्ञानिक अवधारणा का, दर्शन के क्षेत्र में, अतिक्रमण रोक न सका। वह कहता है

"Unnatural and fatal opposition between Science and philosophy, is undoubtedly becoming more and more painful to thoughtful people."[88]

आचार्य शक्ल दर्शन और विज्ञान के इस भेद को विरोधी नहीं मानते बल्कि इस भेद को ही दर्शन और विज्ञान दोनों की, जीवनी शक्ति मानते हैं। दर्शन और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे से निश्चित रूप से भिन्न हैं। इसी कारण शुक्ल जी विकासवाद की सीमाओं को पहचानने में सफल हो जाते हैं। इस विशेष अर्थ में विश्व प्रपञ्च की भूमिका केवल 'द रिडिल ... ' को समझाने के लिये लिखी गई भूमिका न रहकर, कहना चाहें तो 'द रिडिल...' के ही

वजन की जीवन-जगत (दृश्य/अदृश्य) सम्बन्धी समस्याओं पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकने वाली एक सर्वथा भिन्न, विशेष और महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें हैकेल', 'डार्विन', प्लॉक, ह्यूम, स्पेंसर, बेटसन, काँट, शोपेनहावर, शेलिंग, हेगेल, फिक्ट, ड्यूरिंग', ओलिवर लाजण, जोसेफ मेक्कैब", कानन डायल', 89आदि से लेकर वेदांत, उपनिषद्, भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन, विज्ञान आदि पर बहुत ही विचारोत्तेजेक और सूचनाप्रद तथा समीक्षात्मक विश्लेषण, व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

"भौतिकवादी और भाववादी दर्शन की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने विकासवाद की सीमाएँ बतलाईं हैं। उनका यह कहना सही है कि आधुनिक विज्ञान अभी चेतना के उद्भव की पूरी व्याख्या नहीं कर पाया है।"[90]

आचार्य शुक्ल ने विकासवाद की सीमाओं को पाठक के सामने और स्पष्ट करते हुए जोसेफ मैक्केब और इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कहानीकार ए.कानन डायल के बीच परलोक आदि पर बहस का ज़िक्र भूमिका के पृष्ठ 88-89 पर किया है "अभी हाल में एक शास्त्रार्थ हुआ है जो पुस्तकाकार छपा है।" इसके अतिरिक्त विकासवाद की सीमांकन के सन्दर्भ में ही आचार्य शुक्ल ने 'दोहरी चेतना' का उदाहरण दिखाते हुए भूमिका के पृष्ठ 51 पर फेलिडा नामक एक लड़की के विलक्षण मनोरोग की भी चर्चा की है।

मनोविज्ञान और दर्शन को समर्पित भूमिकांश में आचार्य शुक्ल विकासवाद की सीमाओं को गहरे रेखांकित करने के लिए दर्शन तथा विज्ञान से एक-एक आधारभूत प्रश्न उठाकर अपना निष्कर्ष कुछ इस प्रकार देते हैं।

“विकासवाद जगत की समस्याओं के संबंध में हमारा कहां तक समाधारन करता है, चलती नज़र से यह भी देख लेना चाहिए। जगत के संबंध में दो प्रकार की जिज्ञासा हो सकती है

1. यह जगत क्या है? अर्थात् इसकी मूल सत्ता किस प्रकार की है ?

2. जगत् के नाना व्यापार किस प्रकार घटित होते हैं? उस गति का विधान कैसा है, जिसके अनुसार जगत के नाना पदार्थ अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हो सके है कहने की आवश्यकता नहीं कि विकास सिद्धान्त का संबंध असल में दूसरे प्रश्न से है। सत्ता की मीमांसा विकास का विषय नहीं है। पर दार्शनिक प्रवृत्ति रखने वाले हैकेल ऐसे विकासवादी नाना व्यापारों को सत्ता का लक्षण मान उसके अनुमान में भी प्रवृत्त होते हैं।[91]

विकासवाद की सीमाओं की ओर संकेत करने के बाद आचार्य शुक्ल इन सीमाओं के मूल में आधुनिक विज्ञान के पिछड़ेपन की बात पर दुःख व्यक्त हुए है (उस समय तक नई) प्रो. प्लॉक की क्वाँटम भौतिकी से कुछ उम्मीद करते हुए प्रतीत होते हैं कि, कदाचित् 'प्लॉक की क्वाँटम भौतिकी' विकासवाद की सहायता के लिए आगे आकर बदलते वैज्ञानिक परिवेश में उसकी अदयतन व्याख्या कर सकने में सक्षम हो सके तथा पाठकों को आश्वस्त करते हैं कि

"इतने पर भी यह निश्चय है कि अखण्डत्व ही विकास सिद्धान्त का मूल है। ध्यातव्य है कि यह अखण्डत्व का सिद्धान्त ही प्लॉक का क्वाँटम सिद्धान्त है। आगे खण्ड (10) के रूप में इस सिद्धान्त की संक्षिप्त चर्चा तथा किस प्रकार विश्व प्रपञ्च की भूमिका तथा 'द रिडिल' इस सिद्धान्त की चर्चा के साथ चरम को पहुंचते हैं, की बात होगी।"[92]

10. प्लॉक की कण भौतिकी (क्वाँटम भौतिकी) विकासवाद और एकेश्वरवाद यदयपि हैकेल महोदय दर्शन और विज्ञान में भेद करना ज्ञान की पद्धति के सही विकास के लिए घातक मानते हैं।

"The unnatural and fatal opposition between Science and Philosophy, between the results of experience and of thought, is undoubtedly becoming more and more painful to thoughtful people."[93]

तथापि इसमें दो राय नहीं कि दर्शन और विज्ञान एक सीमा तक तो एक दूसरे से भिन्न हैं ही। ऐसा कहने के बजाय कि दर्शन और विज्ञान में भेद करना अस्वाभाविक और घातक, है, मेरी दृष्टि में, यदि यह कहा जाय कि दर्शन और विज्ञान में पूरकता का सम्बन्ध है, अन्तनिर्भरता का सम्बन्ध है तो कहीं अधिक उचित होगा और आज जबकि विज्ञान के विकास की गति ज्ञान की अन्य शाखाओं के विकास की गति से कहीं अधिक दीख पड़ती है तब ऐसी स्थिति में दर्शन और विज्ञान की पूरकता या एक प्रकार से विज्ञान की दर्शन पर निर्भरता बढ़ती ही जा रही है- 'क्वाँटम-भौतिकी' और 'क्वाँटम- क्षेत्र सिद्धान्त' (Quantum Physics & Quantum Field Theory) इसका सबसे प्रबल उदाहरण है।[94]

आज के समय का सर्वोन्नत विज्ञान क्वाँटम भौतिकी अथवा क्वाँटम रसायन ही है। क्वॉटम भौतिकी की उम्र लगभग सौ साल की हो चुकी है।

क्वाँटम भौतिकी आज के समय की सभी वैज्ञानिक गतिविधियों (अद्यतन नैनोकण भौतिकी, (Nano Particle Physics) सिद्धान्त गुच्छ है। क्वाँटम भौतिकी की मूल प्रस्थापनाओं और हैकेल 'की' द रिडिल ऑव द यूनिवर्स की मूल प्रस्थापना में सच कहें तो कोई मौलिक अन्तर नहीं हैं। अन्तर केवल इतना है कि क्वाँटम भौतिकी को आर्चायों (Physicists) ने जगत के उदभव और विकास के अध्ययन के बजाय पदार्थ और उसकी क्रियाविधियों के उद्भवविकास-प्रभाव-कारण और परिणामों को समझने में लगाया, जिसमें आइन्स्टीन, प्लाँक, डी ब्रोगली, हाइसेनबर्ग, सोडिंगर, हैमिलटन, लाप्लास प्रमुख हैं जबकि हैकेल ने इसी सिद्धान्त की मूल मान्यता तत्वाद्वैतवाद के सिद्धानों को जगत के स्थूल रहस्यों को समझने में में लगाया।

यह अकारण या केवल संयोग ही नहीं कि 'क्वाँटम'का विकास और हैकेल की व्याख्या दोनों अलग-अलग क्षेत्रों में एक साथ चल रही थीं।

क्वाँटम भौतिकी की मूल प्रस्थापना कुछ इस प्रकार है-द्रव्य और उसकी गति में कोई मूल अन्तर नहीं है। वस्तुतः दो भिन्न अवस्थाओं के प्रतिनिधि ही हैं- द्रव्य और गति। ये अवस्थाएं एक साथ एक दूसरे पर निर्भर भी रह सकती हैं और एक दूसरे से स्वतन्त्र भी।

क्वाँटम भौतिकी की इस मूल प्रस्थापना में दर्शन के तत्वाद्वैतवाद का तत्व समाया हुआ है। यहाँ यह उल्लेख करना सर्वथा उपयुक्त होगा कि क्वाँटम भौतिकी को सैद्धान्तिक रूप से बल दर्शन के इसी सिद्धान्त से मिला है। कालक्रम की दृष्टि से यह दार्शनिक मत विज्ञान की इस नई शाखा से बहुत पुराना है। यह सच है कि विज्ञान ने इस मत का प्रयोग करके जगत और उससे जुड़ी भ्रान्तियों का जिस प्रकार निराकरण किया है, दर्शन उस प्रकार से सफल ना हो सका। दर्शन और विज्ञान के प्रभाव में निश्चित रूप से मौलिक भेद है। जहाँ एक और दर्शन अपनी अमूर्तता और जटिलता के कारण नाना प्रकार के विवादों को अनायास ही आमंत्रित करता है वहीं विज्ञान अधिक मूर्त और सहज एवं सरल होने के कारण निर्णायक भूमिका निभाकर जगत के रहस्यों का उद्घाटन कर सकने में अपेक्षाकृत अधिक सफल होता है।

क्वाँटम भौतिकी की मूल प्रस्थापना के दो भाग हैं, पहला भाग, जहाँ पर एक ओर पदार्थ और उसकी गति (अवस्था/ऊर्जा) की अद्वैतता को रेखांकित करता है वहीं दूसरी ओर दूसरा भाग इस अद्वैतता को रेखांकित करता है वहीं दूसरी ओर दूसरा भाग इस अद्वैतता की तात्कालिक (instantaneous) निश्चितता के प्रति संदेह व्यक्त करता है।

दोनो भागों का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है।

पहला भाग

पहले भाग का मूल प्रतिपादक डी ब्रॉग्ली (De'Broglie) रहा है। डी ब्रॉग्ली एक फ्रेंच वैज्ञानिक था जिसे उसके क्वाँटम भौतिकी सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण खोज के लिए 1929 में नोबेल से नवाजा गया था। हालॉकी डी ब्रॉग्ली से पहले प्लॉक, फ्रैंक-हर्ज, आइन्स्टीन स्टर्न-गेरलाक और कौम्टपन ने कण भौतिकी का मूल खाका तैय्यार कर दिया था। डी ब्राग्ली की खोज, वस्तुतः पदार्थ और ऊर्जा के अद्वैत पर प्रकाश डालती है। उसके अनुसार जब कोई पदार्थ गतिशील अवस्था में होता है जब वह अपने पीछे एक तरंग को अथवा कई तरंगो के समूह को छोडता चलता है। अर्थात् ऊर्जा कुछ नही बल्कि पदार्थ की एक निश्चित अवस्था का प्रतिरूपण मात्र है। यह सिद्धान्त 1924 ई. में ब्रॉग्ली ने इन्वेस्टिगेशन्स ऑन क्वाँटम थियरी (Investigations on Quantum theory) नाम के अपने शोधपत्र में प्रस्तुत किया।

दूसरा भाग

दूसरे भाग का सम्बन्ध हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता के सिद्धान्त से है। इस सिद्धान्त के अनुसार घटना/परिघटना के संभावन और मापन में एक निश्चित मात्रा के समय, ऊर्जा आदि का क्षय होने के कारण मापन की निश्चितता संदग्धि हो जाती है। या कह लें कि वैज्ञानिक घटनाओ / परिघटनाओं (के संभावन और मापन) में द्वैत की अवस्था त्रुटिरहित हो ही नहीं सकती।

हैकेल विकासवाद के साथ इस सिद्धान्त को मिलाकर अद्वैतवाद अथवा एकेश्वरवाद की अपनी प्रस्थापना को मूर्तरूप इस दसवें खण्ड में देता है। मूल पुस्तक में अध्याय 18 से अध्याय 20, इसी विवेचना को समर्पित है।

विश्व प्रपञ्च में आचार्य शुक्ल क्वाँटम सिद्धान्त का समर्थन करते हुए लिखते हैं। कि "प्रो. प्लाँक का शक्त्याणु (क्वाँटम) वाद अत्यन्त चित्ताकर्षक, कुछ लोगों की समझ में अत्यन्त प्रबल भी है। ज्योतिः प्रवाह के अणुमय सिद्ध होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं पर ज्योति प्रवाह संबंधी जो विवाद है वह है बड़े महत्त्व का, क्योंकि वह ईथर और द्रव्य के बीच की सबसे अधिक ज्ञात और परीक्षित श्रृंखला है।"[95]

ठीक ही लिखा है आचार्य शुक्ल ने। आचार्य शुक्ल की विज्ञान के प्रति ऐसी समझ निश्चय ही अद्भुत है। वे आगे लिखते हैं "कहने की आवश्यकता नहीं कि अखंडत्व का निर्धारण नाना विशेषों के भीतर एक निर्विशेष का निर्धारण है जिसके द्वारा सत्ता का आभास मिल सकता।

यह धारणा क्वाँटम भौतिकी का दार्शनिक पक्ष है, जो, हैकेल के मोनिज्म का रूप पाकर, 'द रिडिल' और 'विश्व प्रपञ्च' की भूमिका के चरमोत्कर्ष के रूप में मूर्त होता है।[96]

पुस्तक के पाठ (Text/content) से भिन्न एवं स्वतंत्र भूमिका की कल्पना नहीं की जा सकती है। किसी पुस्तक की भूमिका का उस पुस्तक के मूल पाठ और मूलपाठ के संघटक अवयवों से सीधा, गहरा और अनिवार्य संबंध होता है। इस अर्थ में 'विश्व प्रपञ्च की भूमिका एक प्रकार से विश्व प्रपञ्च अथवा 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' के मूल कथ्य को समझाने के लिए लिखा गया 'मिनीविश्व प्रपञ्च' है।

स्वयं आचार्य शुक्ल के शब्दों में

"पुस्तक में आधुनिक दर्शन और विज्ञान से संबंध रखनेवाली जिन-जिन बातों का उल्लेख है उन सबकी थोड़ी बहुत चर्चा भूमिका में इसलिए कर दी गई है जिसमें अभिप्राय समझने में सुविधा हो।[97] 'हिन्दी' के पाठकों के लिए यह भूमिका तीन कारणों से महत्त्वपूर्ण है।

पहला तो यह कि, जितनी सामग्री इस भूमिका मात्र में उपलब्ध है, विशेषकर विज्ञान के संदर्भ में, वह आश्चर्यजनक रूप से कई एक विज्ञान ग्रन्थों के सार-संक्षेप पर भारी पड़ेगी। एक साथ इतनी सामग्री एकत्रित करने के लिए हिन्दी के पाठकों को कई अंग्रेजी ग्रंथों से होकर गुजरना पड़ेगा जो अत्यन्त ही दूरूह कार्य है। इस दुरूहता के दो कारण हैं, एक तो भाषा की समस्या दूसरा कथ्य की समस्या। भाषा की समस्या तो एक बार दूर की भी की जा सकती है

किन्तु कथ्य की समस्या दूर करना आसान कार्य नहीं है क्योंकि इसके लिए विज्ञान की न सिर्फ प्रारम्भिक जानकारी का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है बल्कि विज्ञान की अद्यतन शाखाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है। आचार्य शक्ल ने इस कठिनाई को हिन्दी के पाठकों के लिए बड़ी ही कुशलता के साथ दूर करने का सफल प्रयास किया है। सरल शब्दों में विज्ञान के मूल सिद्धान्तों को एक-दूसरे के साथ तुलनीय बनाते हुए आलोचनात्मक और सूचनापरक टिप्पणी की है, शुक्लजी ने।

विज्ञान का तनिक मात्र भी ज्ञान न रखने वाले हिन्दी पाठक इस भूमिका को पढ़कर स्वयं को इस स्थिति में पा सकते हैं कि वे अदयतन विज्ञान यथा डार्विन के विकासवाद और प्लॉक के क्वाँटम सिद्धान्त की सामान्य समझ विकसित कर सकें।

दूसरा कारण यह कि, प्रायः ऐसा देखा गया है कि दर्शनशास्त्र की व्याख्या स्वतन्त्र रूप से की जाती है। जगत की समस्याओं का समाधान दर्शशास्त्र स्वतंत्र रूप से अपनी मान्यताओं की सीमा के भीतर करता है। इसी प्रकार विज्ञान भी जगत की उत्पत्ति विषय धारणाओं आदि के सम्बन्ध में अपने उद्गार दर्शनशास्त्र से स्वतंत्र होकर देने का प्रयत्न करता है और परिणाम यह होता है कि एक सामान्य जिज्ञासु जो ना ही दर्शनशास्त्र का विधिवत् विद्यार्थी है और ना ही विज्ञान का उसके लिए दोनों (दर्शनशास्त्र की जगत विषयक व्याख्या और विज्ञान की जगत विषयक व्याख्या) में तालमेल बैठा पाना बड़ा ही कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में विश्व प्रपञ्च की यह भूमिका अद्वितीय रूप से उपयोगी।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि पहले और दूसरे कारणों के रूप में भूमिका का महत्त्व हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों/पाठकों को सहज और सरल तर्कों द्वारा विज्ञान की अधुनातन शाखाओं के मलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराना तथा हिन्दी साहित्य के ज्ञानकोश को ऐसी महत्त्वपूर्ण सामग्रियों से समृद्ध करना था।

किन्तु केवल इतना ही उद्देश्य नहीं था और एक दूरदर्शी तथा सचेत साहित्य-निर्माता से हम केवल इतनी ही अपेक्षा भी नहीं कर सकते। विश्व प्रपञ्च की भूमिका और विश्व प्रपञ्च के रूप में 'द रिडिल' जैसे धार्मिक कट्टरता, अवैज्ञानिकता और मतान्धता के खिलाफ आवाज उठाने वाले ग्रन्थ के अनुवाद का चयन और इस चयन के पीछे आचार्य शुक्ल की सूझ-बूझ आज लगभग 85 वर्ष बाद भी हमारे अपने भारतीय समाज में एक विशेष महत्त्व रखती हैं।

आचार्य शुक्ल द्वारा प्रणीत विश्व प्रपञ्च (की भूमिका) के महत्त्व के बारे में प्रो. मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि

"ऐसी स्थिति में रामचन्द्र शुक्ल ने जर्मन वैज्ञानिक और दार्शनिक अट्ट हैकेल की अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' का 'विश्व प्रपञ्च' नाम से जो अनुवाद किया था उसे याद करना और पढ़ना विशेष रूप से आवश्यक लगता है, क्योंकि हैकल ने डार्विन के विकासवाद की मदद से धार्मिक पाखण्ड, रूढ़िवाद और आतंकवाद का जोरदार खण्डन किया हैं।[98]

"आचार्य शुक्ल द्वारा हैकेल की पुस्तक के अनुवाद का निर्णय एक साहसी निर्णय था, अनेक प्रकार के खतरों से भरा हुआ था; क्योंकि भारत में धर्म का मकड़जाल कम मजबूत और फैला हुआ न था।"[99]

जाहिर है कि विश्व प्रपञ्च की भूमिका और विश्व प्रपञ्च के अनुवाद के संदर्भ में आचार्य शुक्ल की दृष्टि का आज सामाजिक महत्त्व कल से कुछ बढ़ ही गया है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि आज हिन्दी साहित्य में ऐसे विषयों पर लिखे जाने वाले लेखों में कोरी बयानबाजी और राजनीतिक नारेबाजी के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया है। विषय के वैज्ञानिक विवेचन और सैद्धान्तिक विश्लेषण की परम्परा, सामाजिक महत्त्व के विशेषकर ऐसे जटिल विषयों पर, हिन्दी साहित्य से लगभग जा चुकी है। अव्वल तो ऐसे विषयों पर अब हिन्दी वाले लिखने-पढ़ने की कदाचित आवश्यकता ही महसूस नहीं करते।

यही कारण है कि विश्व प्रपञ्च को पाठकों के हाथ में आए हुए आठ दशक से भी ऊपर हो गये, तब से हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का विज्ञान विषय पर कोई दूसरा ग्रन्थ अभी तक पाठकों के पास नहीं पहुंचा। ऐसे में यह विश्व प्रपञ्च और भी प्रेरणाप्रद साबित हो सकता है। हिन्दी वालों के इस ढुलमुलपन से रामविलास शर्मा कदाचित् ठीक से परिचित रहे होंगे। उन्होंने 1959 में लिखा कि- उनकी भूमिका पुस्तक का अभिप्राय समझने ही में सहायक नहीं होती। उन्होंने हैकल के बाद की वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करके मूल विवेचन को अपने युग के पाठक के लिए पूर्ण बनाया हिन्दी में पहली बार इतने-विस्तार से विज्ञान का अध्ययन किया गया (सम्भवतः अब तक के लिए अंतिम बार भी!)।[100]

सन्दर्भ सूची

64. सर ऑलिवर लॉज बीसवीं सदी के प्रमुख दार्शनिक-वैज्ञानिक रहें हैं। इनके योगदान और विचारधारा की चर्चा शुक्ल जी ने विश् प्रपञ्च में पृ. 83 और 88 पर की है। ये मूलतः आत्मवादी थे। 'द रिडिल...' की भूमिका में भी अनुवादक जोसेफ मॅक्कैब ने इन पर जमकर बात की है। ये हैकेल के विरोधी खेमें के विचारक थे। इनके साथ प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी लार्ड केल्विन का भी नाम शुक्ल जी ने लिया है।

65. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस- प्रस्तावना, पृ. 15

66. बर्ट्रान्ड रसेल, द इम्पैक्ट ऑफ साइंस ऑन सोसाइटी, पृ. 29

67. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस, पृ. 90.

68. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस, पृ. 90.

69,70. सभी सन्दर्भ, हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस के अग्रलिखित पष्ठों से 1. पृ. 21, 2.पृ. 24 ,3. पृ. 27. 4. पृ. 28, 5. पृ. 29, 6. पृ. 57, 7. पृ. 29 8. पृ. 34 9. पृ. 42, 10. पृ. 54, 11.पृ.79, (पाद टिप्पणी), 12. पृ. 90 (पाद टिप्पणी) 13. और 14. 'द रिडिल... के अंतिम कुछ पृष्ठों से (पृ. 142, 143 तथा 144)

71, 72. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस, पृ. 29; प्रथम स्तम्भ, प्रथम अनुच्छेद

73. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, "विश्व प्रपञ्च' भूमिका भाग, पृष्ठ 64

74. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, "विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग, पृष्ठ 7.

75. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च, भूमिका भाग; पृष्ठ 9--10

76. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग पृष्ठ 14.

77. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग पृष्ठ 19.

78. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग पृष्ठ 19-20.

79. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस, पृ. 28.

80. यूनीर्वस एंड लाइफ : द बिगनिंग्स एफएसटी-1 ईग्नू, पृ. 70

81. द वर्डस वर्थ इनसाइक्लोपीडिया, खण्ड 3 पृ. 1355

82. वही; पृ. 1355.

83. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग; पृ. 16.

84. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग; पृ. 19.

85. रामविलास शर्मा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' पृ. 20.

86. रामविलास शर्मा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' पृ. 21.

87. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग पृ. 87.

88. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस- प्रस्तावना, पृ. 15

89. 'a तथा b के बारे में तो पूरी भूमिका में कहीं न कहीं कुछ न कुछ मिलता रहता है। शेष, विश्व प्रपञ्च की भूमिका में क्रमशः (c, d, e, f, g, h, i, j, k, I, m, n, 0, p) पृष्ठ-84, 50, 64, 61, 72, 78, 78, 78, 77, 80, 88, 88, 89.

90. रामविलास शर्मा- ' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना', पृ. 236.

91. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग; पृ. 62.

92. वही; पृ. 84

93. हैकेल, द रिडिल ऑफ द यूनिर्वस- प्रस्तावना, पृ. 15

94. घटक-लोक नाथन - 'क्वाँटम मैकेनिक्स थियरी एण्ड एप्लीकेशन्स', मैकमिलन इंडिया लि. सन् 2001, पृष्ठ XIII अथवा देखें 'संधान' पत्रिका' (संपादक - सुभाष गता ड़े और लाल बहादुर वर्मा) अंक 2, 3 तथा 4 सन् 2001 में रवि सिन्हा के लेख, 'क्वान्टम क्रांति के विलम्बित प्रहरमें', आदि।

95. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च भूमि का भाग; पृ. 84.

96. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रपञ्च- 'प्रथम संस्करण का वक्तव्य'

97. वही; पृष्ठ 84.

98. 'नया मानदण्ड' ; अंक 31 (जनवरी - मार्च 2004), पृष्ठ 29

99. नया मानदण्ड का यह अंक (जन - मार्च 2004. अंक 31) ये दोनों ही उद्धरण 'नया मानदण्ड-31 में, प्रो. मैनेजर पाण्डेय के लेख- "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और विकासवाद" से लिये गये हैं। इस लेख का महत्त्व ही इस बात में है कि इसके द्वारा विश्व प्रपञ्च की भूमिका के महत्त्व के साथ-साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विज्ञान सम्बन्धी कई अनुवाद कार्यों पर प्रकाश पड़ता है तथा विज्ञान की समझ और उसके के सामाजिक महत्त्व के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है।

इधर हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी लेखन या उससे सम्बन्धित किसी भी चर्चा पर जिस तरह का सूखा व्याप्त है. ऐसे में नया मानदण्ड' का यह अंक वास्तव में इस बात की कुछ आशा जगाता है कि हिन्दी में विज्ञान या उससे जुड़ी हुई चर्चा का महत्त्व समझने वाले कुछ सुधीजन इस सूखे से हिंदी-साहित्य की रचनाधर्मिता और उसके व्यापक उद्देश्यों को पहँचने वाली हानि के प्रति चिन्तित हैं।

'नया मानदण्ड'; अंक 31 (जनवरी-मार्च 2004), पृष्ठ 32. आचार्य शुक्ल के विकासवाद-भौतिकवाद पर केन्द्रित है। यह अंक आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी से कुसुम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित है। वास्तव में नया मानदण्ड का यह अंक शोध संस्थान से ही प्रकाशित शुक्ल जी के 27 अप्रकाशित (तब तक) निबन्धों का संग्रह चिन्तामणि-4' के प्रकाशन के बाद आया है। चिन्तामणि-4 (सं. कुसुम चतुर्वेदी/डॉ. ओमप्रकाश सिंह) में शुक्ल जी के

विज्ञान विषयक दो लेख संकलित हैं। इन दोनों लेखों - " आकाश का नीला रंग" और "निद्रा रहस्य" पर संक्षिप्त टिप्पणी अध्याय-4 में यथास्थान आगे दी गई है)

100 रामविलास शर्मा- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना', पृ. 17.

अध्याय-पांच

द्विवेदीयुग की प्रमुख पत्रिकाओं से चुने हुए लेख

(विज्ञान की चिंता पर टिप्पणी)

पीछे हम यह देख आये हैं कि, किस तरह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा द्विवेदी युग के अन्य बहुत से लेखक 'सरस्वती' के माध्यम से तथा अन्यत्र भी सरस्वती के समानान्तर स्वतंत्र रूप से कई पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी में विज्ञान लेखन करते रहे। ये सभी लेखकगण अपने-अपने स्तर से हिन्दी में विज्ञान लेखन करते हुए दो प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे थे। एक तो यह कि लगातार हिन्दी साहित्य के भण्डार-निर्माण में विज्ञान और इससे किसी न किसी रूप में जुड़े हुए अन्य विषय जैसे गणित, ज्योतिष आदि का योगदान अधिकाधिक रूप में सुनिश्चित हो सके तथा दूसरा यह कि भाषिक अनुशासन के माध्यम से विज्ञान जैसे गंभीर विषय के लिए एक समर्थ भाषा का निर्माण और संधान हो सके। इस संदर्भ में पारिभाषिक शब्दावलियों से जुड़ी हुई समस्या तथा उस समय 1906 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से निकले 'वैज्ञानिक कोश' की चर्चा, समस्या के किसी सीमा तक, समाधान के रूप में की जा चुकी है।

अब आगे कहना यह है कि द्विवेदी युग में शुरू हुआ यह अनुष्ठान बहुत आगे तक सफलतापूर्वक न चल सका। द्विवेदी युग में ही हिन्दी में विज्ञान लेखन की लोकप्रियता और भविष्य में आगे उस लोकप्रियता की बलवती होती दीख पड़ती संभावना को देखकर विज्ञान लेखन में रत लेखकों का समूह दो धड़ों में बँट गया। अब (द्विवेदी युग के अंतिम चरण तक आते-आते) हिन्दी साहित्य में विज्ञान' तथा 'हिन्दी में विज्ञान साहित्य' वाला विभाजन बहुत सीमा तक स्पष्ट हो चला था। हिन्दीमें लिखने वाले विज्ञान विषय के अध्यापक, विदयार्थी या विज्ञान प्रेमी अब हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेख कम छपवाने लगे। स्वतंत्र रूप से, इस युग (द्विवेदी युग) के उत्तरार्द्ध में विज्ञान को समर्पित कई प्रकाशन संस्थायें, पत्र-पत्रिकायें आदि प्रकाश में आने लग गई थीं। 1913 ई. में 'प्रयाग के विज्ञान परिषद् की स्थापना, वहीं से (परिषद् से ही) 1915 ई. में 'विज्ञान' नामक पत्रिका का प्रकाशन, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली द्वारा आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका का 1913 में ही स्वतंत्र प्रकाशन, विज्ञान पर अधिकाधिक पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन आदि कई ऐसी घटनायें हैं जिससे अब हिन्दी साहित्य के निर्माताओं की रूचि और उत्साह में हिन्दी में विज्ञान लेखन के प्रति उत्तरोत्तर कमी होती चली गयी। 'सरस्वती' की द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध की फाईलों तथा उस समय निकलने वाली 'विज्ञान' की फाइलों को पलट कर देखने से यह बात और भी साफ हो जाती है । जितना स्वाभाविक हिन्दी साहित्य के निर्माताओं का हिन्दी के भण्डार निर्माण के लिए विज्ञान आदि अनेक विषयों की ओर प्रवृत्त होना था उतना ही स्वाभाविक यह विभाजन भी था। कहना न होगा इस विभाजन की अनेक कठिनाईयां थीं। सबसे महत्त्वपूर्ण

बात इस संदर्भ में यह रही कि भाषा की जो सरसता और लेखन शैली की जो परिपक्वता, 'हिन्दीसाहित्य में विज्ञान', में देखने को मिलती थी अब वह सरसता और परिपक्वता, हिन्दीमें विज्ञान साहित्य', से लगभग बेपरवाह तरीके से गायब हो चुकी थी। पुनः यह बहुत ही स्वाभाविक बात थी क्योंकि विज्ञान के अध्यापकों की जाहिर तौर पर कोई विशेष चिंता हिन्दीभाषा को लेकर न थी। वे सिर्फ इतना ही कर रहे थे बल्कि इतना ही कर सकते थे कि हिन्दीसमझने वाले लोगों/पाठकों तक विज्ञान से जुड़ी हुई जानकारियाँ सपाट तौर पर पहुँचा दें। जबकि दूसरी ओर हिन्दीसाहित्य से जुड़े लोगों की चिंता दोहरी थी। विषय तथा विषय को आम पाठकों के बीच लोकप्रिय बनाने वाली भाषा का विकास, दोनों साथ-साथ, हिन्दी साहित्य के माध्यम से करने का संकल्प, इन हिन्दीवालों के मन में रहा।

हिन्दी में विज्ञान लेखन को लेकर इस खेमेबाजी (ध्रुवीकरण) के कारण सबसे अधिक नुकसान हिन्दी के पाठकों को हुआ। विज्ञान के लिए बोझिल भाषा और नीरस तथा भावशून्य शैली के इस्तेमाल से विज्ञान की लोकप्रियता का ग्राफ हिन्दी के सामान्य पाठकों के बीच में उत्तरोत्तर गिरता चला गया।

इस चौथे अध्याय में द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' तथा वैज्ञानिक पत्रिका विज्ञान तथा कुछ अन्य पत्रिकाओं यथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि से चुने हुए पांचमहत्त्वपूर्ण लेखों के विवेचन के माध्यम से उस समय विज्ञान को लेकर विषय तथा भाषा के प्रयोग सम्बन्धी रूझानों और दृष्टिकोणों को और व्यावहारिक तरह से समझने का प्रयास किया गया है।

इनमें से चार लेख हिन्दी के सात्यिकारों, द्वारा लिखे गये है। शेष सात लेख विज्ञान से जुड़े हुए लोगों के हैं। इन पांचलेखों को उनके प्रकाशन के बढ़ते हुए क्रम में रखा गया है। लेखों का चयन विषय के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए किया गया है। सरस्वती आदि पत्रिकाओं में 1900 ई.-1920 ई. के बीच प्रकाशित पांचचुनिंदा लेखों के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी सहित लेखों का क्रम उनके प्रकाशन वर्ष के बढ़ते क्रम में हैं दिये जा रहे लेखों की परिचयात्मक सूची इस प्रकार है-

लेख सं.	लेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पत्रिका	प्रकाशन वर्ष
1	पेट की आत्मकहानी	महेन्दुलाल गर्ग	सरस्वती	सितम्बर, 1904ई.
2	आँख	पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	सरस्वती	फरवरी-मार्च, 1905 ई.
3	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	शुकदेव प्रसाद तिवारी	सरस्वती	अप्रैल, 1906 ई.
4.	शब्द और प्रकाश की चाल	राय देवी प्रसाद	सरस्वती	अप्रैल 1908 ई
5.	रक्त - भ्रमण	महेन्दालाल गर्ग	सरस्वती	अक्टूबर, 1908 ई.
6.	निद्रा रहस्य	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी	अक्टूबर, 1912 ई
7.	पदार्थ और शक्ति	चन्द्रशेखर वाजपेयी	सरस्वती	दिसम्बर, 1914 ई.
8.	लल्लू तिवारी और बिजली से बातचीत	गंगा प्रसाद वाजपेयी बी.एस.सी.	विज्ञान	जून 1916 ई.
9.	सूर्य शक्ति	महेश चरम सिंह	विज्ञान	अप्रैल 1917 ई.
10.	पृथ्वी की उत्पत्ति	जगन्नाथ खन्ना	सरस्वती	मई 1917 ई.
11	आकाश का नीला रंग	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी	आषाढ़ श्रावण 1919 ई.

लेख सं. 1

पेट की आत्म कहानी

महेन्दु लाल गर्ग

सरस्वती, सितम्बर, 1900

लेख के बारे में

यह लेख सचित्र है। चित्र, पेट के अनुदैर्ध्य काट के रूप में पेट के भीतरी भागों को दर्शाता है। यह लेख बहुत ही विनोदपूर्ण शैली में लिखा गया है। पेट अपनी कहानी कुछ इस तरह शुरू करता है- "शरीर नामी टापू के बीचों बीच मेरी बस्ती है। आस पास और भी कई बस्तियाँ हैं जिनसे मेरा बड़ा लेन-देन रहता है। हम सब एक दूसरे की सहायता करना ही अपना धर्म समझते हैं। जब तक आप हमारे परकोटे को भेदकर हमारा भेद न देख लें तब तक मै अपना पूर्ण वृत्तान्त नहीं समझा सकता। तो भी आज आपको दो-चार बातें कहनी हैं। हमारे यहाँ ऋतु सदा मनोभावनी बनी रहती है, सर्दी तो कभी पड़ती नहीं और न खुश्की आती है। मेरे एक गांव का नाम "आमाशय" है जो ठाकुर "पाचन" सिंह जी की जमींदारी का सदर मुकाम है। जमींदारी भर में इस गांव से बड़ा और कोई मौजा नहीं है। इसी गांव से लगा हुआ यकृत-गिरि नाम का एक बड़ा पहाड़ है जहां से "पित्त" गंगा निकलकर "आमाशय" से कुछ ही दूर आगे पाचन- सिंह की जमींदारी में आ बहती है। "आमाशय" से नीचे एक और पहाड़ी है जिसको अंग्रेज लोग "पैक्रियास' कहतेहै।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस लेख को रोचक तथा हिन्दीके पाठकों के लिए बोधगम्य बनाने के लिए लेखक ने तरह-तरह की उपमाओं का प्रयोग किया है। कहीं "यकृत" को पहाड़, अग्नाशय (पैक्रियास) को पहाड़ी, 'पित्त" को गंगा कहा गया है। लेख में ही आगे दाँतों को छोटी चक्की भी कहा गया है।

लेख सं. 2

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

सरस्वती, फरवरी-मार्च 1905 ई.

लेख के बारे में-

यह लेख सचित्र है। लेख की रूआत होती है संस्कृत में आँख संबंधी दो श्लोकों से - "य' एषोक्षिपि पुरुषोदृश्यतएष आत्मेति चैतद मृतम्भयमे तद ब्रह्म" -- छान्दोग्य 4/15/1 "अक्षि चष्टेर नक्त रित्य ग्रायणस्तस्मादेत व्यक्तरे इव भवतः" -- निरुक्त1/3/4

लेख में कुल पांच वैज्ञानिक चित्र है तथा एक चित्र इन पाँच चित्रों के अतिरिक्त आंख का है। ये सभी चित्र विषय को न सिर्फ रूचिकर बनाते हैं बल्कि विषय के वैज्ञानिक विवेचन को पाठक के लिए बोधगम्य भी बनाते हैं। इन चित्रों का विवरण इस प्रकार है

चित्र 1 - यह चित्र आँख के स्नायुतन्तुओं को दिखाता है तथा इसी चित्र का एक भाग (ग) आँख में अवस्थित शंकु और छड़ियों का रेखाचित्र प्रस्तुत करता

चित्र 2 आँख के अनुलम्ब काट (Longitudinal cross section) का रेखाचित्र प्रस्तुत करता है। इस चित्र में वस्तुओं का प्रतिबिम्ब आँख पर कैसे बनता है, यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है।

चित्र 3- यह चित्र प्रिज्म द्वारा मोमबत्ती के प्रतिबिम्ब का आँख द्वारा विश्लेषण करने के संदर्भ में है।

चित्र 4- यह चित्र लेंसों के प्रकार, उनकी बनावट आदि को समर्पित है। इस चित्र में उत्तल, अवतल, उभयोत्तल, उभयावतल, समतलोत्तल तथा समतलावतल लेंसों को बनाकर दिखाया गया है।

चित्र 5- यह चित्र उभयोत्तल लेंस द्वारा प्रतिबिम्ब निर्माण की प्रक्रिया को समझाता है। इसमें लेंस के फोकस को अंशुनाभि कहा गया है। दिलचस्प है यह शब्दावली, हिन्दी माध्यम से विज्ञान विषय के विद्यार्थियों के लिए भी है क्योंकि आज सभी लोग अपसरण बिन्द् (Point of convergence) का फोक्स के रूप में ही जाबते हैं।

लेख की भाषा बहुत ही परिष्कृत तथा विषय का विकास एक वैज्ञानिक क्रम से किया गया हैं लेख में जो कुछ भी लिखा गया है वह अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण और सारयुक्त है। यहां तक कि आज के विज्ञान के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए भी इस लेख में दी गई जानकारी खासे महत्त्व की है। प्रस्तुत है लेख से उद्धृत एक नमूना |

"आँख बाहर से प्रायः गोलाकार होती है। समाने ही जो काँच की सी झिल्ली दिखाई देती है उसे कॉर्निया कहते हैं। इसके पीछे थोडी दर पर आइरिस नाम की झिल्ली है, यह वही रंगीन गोल पदार्थ है जो आँख के सफेदे के बीच में दिखाई देता है। इस झिल्ली में एक छिद्र होता है। वह मनुष्य की आँख में गोल होता है, बिल्ली की आँख में तंग और लंबा होता है। इसी के दवारा किरण आँख के भीतर प्रवेश करती है। .... आँख की विशेष उपयोगिता इसी में है कि इसके प्रबन्ध के लिए कितने ही स्नाय हैं जो इसको समयसमय पर मोड़ वा बदल सकते हैं। अन्दर के सिलियरी छल्ले का हाल कह ही चुके हैं। यह समीपावलोकन के लिए काँच को दबाकर अधिक उन्नतोदर कर देता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेख की भाषा अत्यंत ही सरल और हिन्दीपाठकों के अनुरूप है। विज्ञान लेखन में ऐसी भाषा न सिर्फ स्वागत योग्य है बल्कि आज के विज्ञान लेखकों के लिए प्रेरणादायी भी।

लेख में प्रयुक्त कुछ वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और उनके अंग्रेज़ी रूपान्तर यहाँ दिये जा रहें हैं क्योकि मुझे ऐसा लगता है कि जिन हिन्दीशब्दावलियों का प्रयोग गुलेरी जी ने किया है वे उनकी स्वयं की गढ़ी हुई हैं या फिर संस्कृत या अन्य भाषाओं से उनके प्रतिस्थाप्य उठा लिये गये हैं। आज ऐसी शब्दावलियाँ हिंदी-विज्ञान-लेखन में प्रचलित नहीं है। आज अधिकांश वैज्ञानिक शब्दावलियों का अंग्रेज़ी रूपान्तर ही देवनागरी में लिख दिया जाता है। आज हिन्दीमें विज्ञान लेखन करने वाला लेखक लेंस (Lens) को ताल नहीं लिखता। लेंस को लेंस ही लिखता है और कदाचित् ताल लिखने पर पाठकों को शब्द के मूल अर्थ को समझने में असुविधा भी होगी। ध्यान देने वाली बात यह है कि कुछ शब्दावलियों को गुलेरी जी ने ज्यों का त्यों देवनागरी में ही लिख दिया है। उनका हिन्दी प्रतिस्थाप्य प्रयोग नहीं किया है जैसे-

रेटिना (Retina) को रेटिना ही लिखा है।

आइरिस (Aris) को आइरिस ही लिखा है। कॉर्निया (Cornea) को कॉर्निया ही लिखा है। सिलिएरी (Cilliary) को सिलिएरी ही लिखा है।

गुलेरी जी द्वारा प्रयुक्त कुछ हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और उनके अंग्रेज़ी रूपान्तर इस प्रकार हैं

1.	ताल	Lens	(लेस)	2.	अंशुनाभि	Focus (फोकस)
3.	उन्नतोदर	Convex	(कॉनवेक्स)	4.	नतोदर	Concave (कॉनकेव)
5.	त्रिपार्श्व	Prism	(प्रिज्म)			

लेख सं. 3

गुरुत्वाकर्षण शक्ति

शुकदेव प्रसाद तिवारी

सरस्वती, अप्रैल 1906

लेख के बारे में

यह एक सचित्र लेख है। कुल 5 चित्र लेख हैं इस लेख में। अपेक्षाकृत यह लेख पत्रिका में प्रकाशित अन्य लेखों से कुछ बड़ा है। दुर्लभ वैज्ञानिक जानकारियों तथा उन्हें पुष्ट करने वाली सरल गणनाओं और स्वच्छ तथा आकर्षक रेखागणितय चित्रों से इस लेख का पाठ सामान्य तथा विशेष दोनों तरह के पाठकों के लिए समान रूप से रूचिकर तथा महत्त्वपूर्ण है।

लेख की शुरूआत संस्कृत के एक श्लोक से होती है तथा श्लोक में पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के बारे में बताया गया है।

"आकृष्टि शक्तिश्च महीतयां यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्तया ।

आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क पतत्वियं खे" || -गोलाध्याय

विज्ञान के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की व्याख्या की दृष्टि से यह लेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें एक शब्द बार-बार आता है- "तजरिबा" तजरिबा से लेखक का आशय प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) से है। उदाहरण के लिए "इस अत्यधिक दूरी पर, मान लीजिए, कि उसने तजरिबा किया- गोली हाथ से छोड़ दी, कि देखें न्यूटन साहब का कहना, कि इतनी दूरी पर भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है, सही है या नहीं।"

इस लेख की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें स्थान-स्थान पर विषय को समझाने के लिए बहुश्रुत प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) किये गये हैं। चूंकि लेख 'गुरुत्वाकर्षण शक्ति' पर केन्द्रित है और हम सबको यह मालूम है कि इस विषय

पर सर्वमान्य बात सबसे पहले न्यूटन ने की थी इसलिए लेख में कई स्थान पर, न्यूटन का नाम, उसका सिद्धान्त, उसके द्वारा सुझायी गई विधियां/युक्तियाँ, उसके द्वारा किये गये प्रयोग आदि स्वाभाविक तौर पर आते

लेख में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के अतिरिक्त "केपलर" के ग्रहीय गतियों सम्बन्धी नियम भी दिये गये हैं। साथ ही, न्यूटन की परम प्रसिद्ध पुस्तक “प्रिंसीपिया" (मैथमेटिका) की चर्चा भी की गई है। लेखक के अनुसार न्यूटन ने अपनी इस पुस्तक में “केपलर" के तीनों नियमों का कारण केवल गुरुत्वाकर्षण बतलाया है।

लेख में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम तथा केपलर के ग्रहीय-गति सम्बन्धी नियमों के अतिरिक्त अन्य पाँच प्रमुख बातों से पाठक को अवगत कराने का प्रयास किया गया है। ये पाँच बातें इस प्रकार हैं

पहली बात एक अतिसाधारण किन्तु बहुत ही स्वाभाविक प्रश्न के रूप में है। प्रश्न यह है, कि, वस्तुओं को समान ऊँचाई से पृथ्वी की ओर स्वतन्त्र रूप से छोड़ने पर, उनके पृथ्वी पर पंचने में लगे समय में क्या सम्बन्ध होना चाहिए? (अथवा है?), बशर्ते उनके द्रव्यमान समान हों। उत्तर के रूप में लेखक ने वायु के उत्प्लावन बल की चर्चा करते हुए यह बताया है कि यदि वायु की उपस्थिति न हो तो बड़ी या छोटी कैसी भी वस्तु क्यूं न हो सभी समान समय में पृथ्वी पर एक साथ पहुंचेगी (बशर्ते वो सारी शर्ते जो प्रश्न में दी गई हैं पूरी हो रही हों) एक बात जो इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि –

"यदि आपने इन चीज़ों को पृथ्वी से सोलह फीट की दूरी से छोड़ा होगा तो तजरिबे से ज्ञात होगा कि प्रत्येक को गिरने में केवल एक सैकंड लगा है।"

दूसरी बात, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति की तुलना प्रकाश की तीव्रता से की गई तुलना है, और यह बताया गया कि, जिस नियम से गुरुत्वबल घटता या बढ़ता है उसी प्रकार के एक नियम से प्रकाश की तीव्रता भी घटती-बढ़ती है। किंतु लेखक ने उस नियम का नाम नहीं लिया है। केवल सूचना के लिए मैं अपनी ओर से इतना जोड़ दूं कि इस नियम को "लैम्बर्ट का कोज्या नियम' (Lambert's cosine rule) कहते हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात, पुनः एक सहज प्रश्न के रूप में है। "यदि पृथ्वी चन्द्रमा को खींचती है और सूर्य पृथ्वी को खींचता है तो चन्द्रमा पृथ्वी से और पृथ्वी सूर्य से टकराकर ये सब चूर-चूर क्यों नहीं हो जाते? और जहाँ पृथ्वी पहले थीं वहीं

अब भी विद्यमान है। असंख्य वर्षों के आकर्षण ने इन्हें अपने स्थान से जरा भी नहीं हटाया। आकर्षण के नियम के विरूद्ध ऐसा होता हुआ क्यों जान पड़ता है?"

इसके उत्तर के रूप में लेखक पुनः सामान्य बोध-सम्मत गणनाओं का सहारा लेता है और जो सिद्धान्त उभरकर सामने आता है वह है 'कक्षीय-वेग का सिद्धान्त'। कक्षीय-वेग के सिद्धान्त में ही यह बात शामिल है कि एक निश्चित वेग से तथा एक निश्चित कक्षा में घूमता हुआ कोई भी पिण्ड बिना ऊर्जा-क्षय किये हुए अनन्त संभावित युगों तक घूमता रह सकता है। इसे समझाने के लिए लेखक यह कल्पना करता है कि यह वेग मान लो जैसे किसी तोप ("जैसी कि अब तक नहीं ईजाद हुई") से पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य आदि गोलों को छोड़ने से प्राप्त हुआ है।

लेखक को विश्वास है कि विज्ञान का पाठक तो सरलता से इस सिद्धान्त को समझ लेगा किन्तु सामान्य पाठक इसे नहीं समझ पायेगा इसलिए वह इतनी विचित्र कल्पना का सहारा लेता है और सामान्य पाठकों को यह आगाह भी करता है कि

"यह न समझिए कि यह केवल उपन्यास है। यथार्थ में यह बात ऐसी ही होती है। चन्द्रमा तोप से तो नहीं छोड़ा गया, परन्तु उसकी गति इस तरह के तोप के गोले ही की सी है।"।

यहाँ से एक बात तो स्पष्ट जो जाती है कि लेखक ने यह लेख विशेषतौर पर हिन्दी भाषा में विज्ञान के सामान्य पाठकों के लिए ही तैयार किया।

चौथी महत्त्वपूर्ण बात के रूप में, लेखक ने पृथ्वी की कक्षा की आकृति की चर्चा की है और बताया है कि पृथ्वी की कक्षा वृत्ताकार न होकर अण्डाकार है तथा ऐसी कक्षाओं के वृत्ताकार कक्षाओं से भिन्न, दो केन्द्र होते हैं तथा सूर्य उन दोनों में से किसी एक केन्द्र पर अवस्थित होता है। इस प्रकार पृथ्वी की दूरी सूर्य से सदैव समान नहीं रहती। एक वर्ष में पृथ्वी एक बार सूर्य के निकट तथा एक बार दूर हो जाती है। जब सूर्य के निकट पृथ्वी पहुंचती है तो वेग बढ़ जाता है और दूसरी स्थिति में वेग कम हो जाता है। बाकी स्थितियों में वेग एक बार सामान्य तथा एक बार औसत रहता है। मूल लेख में चित्र-3 की सहायता से लेखक ने इसे समझाया है।

पाँचवी और अंतिम महत्त्वपूर्ण बात इस लेख की - 'घर्षण का नियम' है। घर्षण के नियम के ही तहत लेखक ने न्यूटन के गति के नियमों की भी चर्चा की है। इन सभी विषयों पर चर्चा करने के बाद लेखक गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को सर्वव्याप्त बतलाता है तथा इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति को ज्वारभाटे सदृश महत्त्वपूर्ण भौगोलिक परिघटनाओं के लिए भी उत्तरदायी कारक बतलाता है।

"इसी आकर्षण शक्ति से पुच्छलतारों की गति और उपग्रह की चाल इत्यादि जानी जाती है। इसी से ज्वार-भाटे का आना सिद्ध होता है। और और बातें भी, जो सूर्य के कांतिमण्डल में होती हैं इसी से जानी जाती हैं।" इस उद्धरण का यह जो आखिरी वाक्य है कि-"और-और बातें भी जो सूर्य के कांतिमण्डल में होती है, इसी से जानी जाती है," आज के वैज्ञानिक शोध का बड़ा गम्भीर और महत्त्वपूर्ण विषय है। प्लाज्मा-भौतिकी के विकास के बाद से वैज्ञानिकगण सूर्य की आन्तरिक बनावट (वैज्ञानिकों की परिकल्पना है कि यह प्लाज्मा रूप में ही है) की जानकारी के सहारे समस्त खगोलीय पिण्डों के बीच आकर्षण शक्ति के उत्तरदायी कण (ग्रेविटॉन) के बारे में सोच रहे हैं। ध्यातव्य है, आइन्स्टीन ने अपने 'सापेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त' (General theory of relativity) को अधूरा इसीलिए छोड़ दिया था क्योंकि उसके जीवन काल में यह बात नहीं उभर पाई थी कि सूर्य आदि पिण्डों के वायुमण्डल में पदार्थ की चौथी अवस्था, प्लाज्मा, पाई जाती है।

इस प्रकार यह लेख सामान्य तथा विशेष दोनों ही पाठकों के लिए विचारोत्तेजक है।

लेख सं. 4

शब्द और प्रकाश की चाल

राय देवी प्रसाद

सरस्वती, अप्रैल 1908

लेख के बारे में

लेख की शुरूआत लेखक ने एक बड़े ही स्वाभाविक प्रश्न से की है

"क्या सचमुच ही शब्दा और प्रकाश चलते हैं अथवा यह लेखक ही की कोई चाल है?" यह प्रश्न लेखक ने पाठकों की ओर से किया है और अगली ही पंक्ति में यह साफ कर दिया कि- "यथार्थ में शब्द और प्रकाश चलते हैं" इतना ही नहीं लेखक ने लेख का ध्येय निश्चित करते हुए पाठकों को आश्वस्त किया कि-"यथार्थ में शब्द और प्रकाश चलते हैं और यही इस लेख में सिद्ध करना है। सिद्ध ही नहीं करना, किन्तु दिखलाना है कि एक सैकेंड में कितने मील शब्द और प्रकाश दौड़ता है?" यहाँ शब्द का आशय ध्वनि से लगाया जाना चाहिए।

यह लेख स्पष्ट रूप से 7 महत्त्वपूर्ण शीर्षकों में विभाजित है तथा विषय को पाठक के लिए रोचक तथा बोधगम्य बनाने के लिए लेख में 3 चित्र भी दिये गये हैं। इन शीर्षकों तथा चित्रों का विवरण इस प्रकार है

शीर्षक 1 - शब्द की दौड़

शीर्षक 2 - चाल की नाप

शीर्षक 3 - पानी में शब्द की चाल

शीर्षक 4 - प्रकाश का वेग

शीर्षक 5 - बृहस्पति ग्रह और उसके चन्द्र

शीर्षक 6 - दृश्य जगत् की अपारता

चित्र 1, चित्र 2 तथा चित्र 3 क्रमशः एक सरल “धतूरे" (लेखक के अनुसार पानी में ध्वनि की चाल सुनने का एक यन्त्र) प्रकाश का वेग नापने के लिए एक सरल प्रयोग तथा चन्द्र प्रकाश की चाल संबंधी छोटी सी गणना को समर्पित है।

जानकारी देने के दृष्टिकोण से यह लेख महत्त्वपूर्ण तो है ही उससे भी अधिक महत्त्व इस लेख की शैली का है। आसान शब्दावलियों की सहायता से, प्रभावशाली वैज्ञानिक विवेचन इस लेख की विशेषता है। लेख मूलतः संवाद शैली में लिखा गया है, किन्तु ये संवाद अलग से प्रकट नहीं होते, लेख की भाषा के प्रवाह में ही खप जाते हैं। ऐसा लगता है लेखक, पाठक से बात करता चलता है।

वैसे तो सारा का सारा लेख अत्यंत ही रोचक, महत्त्वपूर्ण और वैज्ञानिक जानकारी से लैस है किन्तु जिस महत्त्वपूर्ण अंश को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है वह खासे महत्त्व का है। यह जानकारी वस्तुतः प्रकाश के चाल की गणना से संबंधित है इस अंश को प्रस्तुत करने से पहले इससे संबंधित चित्र को दिखाना

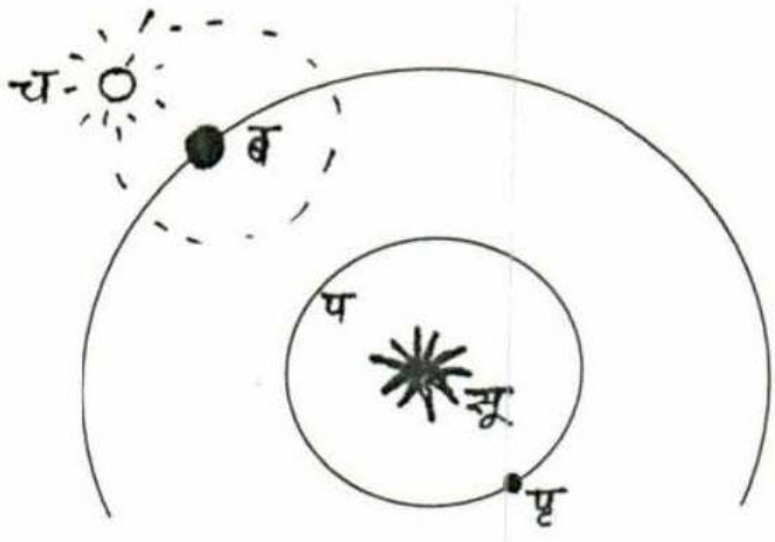

अनिवार्य है क्योंकि इस अंश में दी गई गणनायें चित्र पर निर्भर हैं और यह चित्र इसी लेख का तीसरा चित्र है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

चित्र-3

इस लेखांश (जो आगे उद्धृत किया जा रहा है) के बारे मे खासे महत्त्व की बात यह है कि इसमें प्रकाश की चाल निकालने की एक बहुत ही सरल विधि बताई गई है और इसके लिए जिस विशेष जानकारी की चर्चा होनी चाहिए थी उसकी चर्चा लेख ने इससे ठीक पहले के शीर्षक "बृहस्पति ग्रह और उसके केन्द्र के अंतर्गत कर दी है और वह यह कि बृहस्पति ग्रह के पास भी पृथ्वी की ही भाँति अपने चाँद (उपग्रह) है और इनकी संख्या (उस समय) चार है तथा बृहस्पति पर भी पृथ्वी की ही भाँति चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण लगते हैं।

लेखांश -

"अब कल्पना कीजिए कि "सू" सूर्य (वर्तनी का स्वरूप मूल लेख में जैसा है वैसा ही यहाँ भी लिखा जा रहा है) की जगह है, "च" पृथ्वी की जगह, "ब" बृहस्पति की जगह, और "व" उसके उक्त चन्द्र की जगह जिसमें ग्रहण पड़ रहा हैं। (देखें पिछे चित्र सं. 3)

जिस समय "प" का ज्योतिषी "च" को देखता है, चन्द्र के प्रकाश को "च" से "प" तक का सफर तै करना पड़ता है। परंतु जब पृथ्वी "सू" की परिक्रमा करती हुई "पृ" पर पहुंचती है तब इस प्रकाश को "प" से "पृ" तक का सफर अधिक तै करना पड़ता है तब ग्रहण देखे जाने में 16 मिनट 36 सेकेंड की देर हो जाती है अर्थात् यदि ग्रहण पड़ना चाहिए ठीक 12 बजे तो "पृ' पर देख पड़ता है 12 बजकर 16 मिनट 36 सैकिंड पर। तो यह 16 मिनट 36 सैकिंड कहाँ खा गये? उत्तर स्पष्ट है कि प्रकाश को "प' से "पृ" तक का अधिक सफर तय करना पड़ा, उसी में वह समय खप गया।

अब त्रैराशिक लगा लो कि "प" से "पृ" तक का प्रकाश इतनी देर में चलता है तो एक सैकिंड में कितना चलता है? सूर्य से जो पृथ्वी की दूरी है उसी का दूना "प" से "पृ" है, अर्थात् 9, 23, 00000 मील का दूना, जो बराबर 18, 50, 00000 मील के है। जब इतने मील प्रकाश 16 मि. 36 सैकिंड में अर्थात् 996 सैकिंड में चला है तब एक सैकिंड में वह 1, 85, 744 मील चलता है।

दूसरी युक्ति से 1, 86, 300 मील प्रति सैकिंड आता है। एक लाख 86 हजार मील वेग गति मानने में प्रायः सारे वैज्ञानिक सहमत हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि राय देवी प्रसाद महोदय ने एक बहुत ही सरल युक्ति से प्रकाश के चाल की गणना का तरीका पाठकों के सामने रखा है। यह एक नई जानकारी है।

इसके अतिरिक्त लेख में दो-तीन स्थल और भी हैं जहां लेखक ने नई जानकारी देने का प्रयास किया है लेकिन इन जानकारियों को विधिवत् न देकर केवल उनके संकेत मात्र दिये गये हैं, जैसे- दृश्य जगत की अपारता शीर्षक में सापेक्षिकता के सिद्धान्त की झलक मिलती है, 'पानी में शब्द की चाल' शीर्षक में चाल की निर्भरता किस प्रकार ताप और घनत्व पर होती है, इसकी जानकारी मिलती है आदि।

लेखक ने लेख का जो ध्येय आरम्भ में निश्चित किया था उसे प्राप्त करते हुए वह शब्द अर्थात् ध्वनि की चाल भारत की जलवायु के सापेक्ष (ध्यान देने वाली बात है कि ध्वनि की चाल जलवायु की दशाओं पर भी निर्भर करती है, शुष्क जलवायु में ध्वनि की चाल आर्द्र जलवायु से कम होती है, वर्षाकाल में जलवायु के आर्द्र होने के कारण ध्वनि की चाल बढ़ जाती है) कम से कम, 1100 फीट (एक सैकिंड में) है। अपने प्रेक्षण और तर्क के पक्ष में लेखक एक संतुलित गणना भी प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह लेख विज्ञान के सामान्य पाठकों के लिए ही नहीं वरन विज्ञान के प्रारम्भिक विदयार्थियों के लिए भी उपयोगी है, विशेषकर उस समयावधि के संदर्भ में यदि देखें जब विज्ञान पर अंकिक गणना पर आधारित लेख लगभग नहीं छप रहे थे, यह लेख निश्चित ही बहुचर्चित रहा होगा।

लेख सं. 5

रक्त-भ्रमण

महेन्दु लाल गर्ग

सरस्वती, अक्टूबर 1908

लेख के बारे में

इस लेख का पहला वाक्य ही संकेत देता है कि यह लेख हिन्दी माध्यम से विज्ञान समझने वाले सामान्य पाठकों को लक्ष्य करके लिखा गया है। "रक्त भ्रमण समझना कुछ कठिन नहीं है।" इसे समझाने के लिए लेखक ने अपेक्षाकृत छोटे लेख का सहारा लिया है। लेख सचित्र है। एक ही चित्र है, इस लेख में, लेकिन यह चित्र ही पर्याप्त है, मानव शरीर में रक्त भ्रमण के मूल सिद्धान्त को समझने के लिए। विज्ञान में प्रायः ऐसा होता है कि किसी विषय को समझाने के लिए चित्र का सहारा लिया जाता है लेकिन मुझे यहाँ लगता है कि इस चित्र को समझाने के लिए लेखक ने लेख लिखा है। चित्र तनिक उलझाऊ है। चित्र हृदय तथा उसे जुड़ी धमनियों और शिराओं के बारे में है।

एक बात जो इस लेख की भाषा के बारे में ध्यान देने योग्य है वह यह कि लेखक ने अपनी ओर से वैज्ञानिक शब्दावलियों का हिन्दीरूपान्तर प्रस्तुत ना करके लेख को भाषायी स्तर पर बोझिल होने से बचा लिया है। उदाहरण के लिए लेखक ने (Auricles) को ऑरिकिल्स ही लिखा है जबकि आज विज्ञान में इसका हिन्दीरूपान्तर "आलिन्द" प्रचलित है, (Ventricle) को वेन्ट्रिकिल्स ही लिखा है जबकि आज विज्ञान में इसका हिन्दीरूपांतर "निलय" प्रचलित है इसी प्रकार आरट्रिज और वेन्स को भी लेखक ने हिन्दीमें रूपांतरित न करके ठीक ही किया है। वैज्ञानिक शब्दावलियों के हिन्दीरूपांतर किस तरह विषय को बोझिल बना सकते हैं इसे समझने के लिए विज्ञान विषय पर, विद्यालयों में, चलने वाली पाठ्यपुस्तकों को देख लेना पर्याप्त होगा। भाषा में प्रवाह को बाधित होने से बचाने के लिए वैज्ञानिक शब्दावलियों के हिंदीकरण से यथा सम्भव बचना चाहिए। हृदय की पूरी कार्यविधि की जानकारी ही इस लेख के कथ्य का निर्माण करती है। किस प्रकार शुद्ध रक्त हृदय से निकलकर शरीर के शेष भागों को जाता है तथा पुनः वहां

से अशुद्ध रक्त हृदय में शुद्ध होने के लिए कैसे, किन-किन भागों से होकर आता है, यही समझाया गया है इस लेख में। प्रस्तुत है लेख से उद्धृत एक महत्त्वपूर्ण अंश

"रक्त भ्रमण का मार्ग इस प्रकार समझना चाहिए - दाहिने ऑरिकिल से दाहिले वेन्ट्रिकिल में, वहाँ से फेफड़े में जाने वाली आरट्री में। फेफड़े में रुधिर कैपिलरीज़ में बँट जाता है। ये कैप्लिरीज़ फेफड़े की उन पोली कोठरियों की दीवार में फैली होती हैं जिनमें सांस लेने की हवा ठहरती है। यहाँ रूधिर शुरू होकर जिन नलियों के द्वारा हृदय में लौटता है वे पल्मोनरी वेन्स कहलाती हैं। ये नलियां बायें वेन्ट्रिकिल में आकर खत्म होती हैं। वहाँ से रूधिर बायें वेन्ट्रिकिल में दाखिल होता है ओर फिर एऑर्टा नामक मोटी नली द्वारा सिर धड़ और हाथ पैर की आरट्रीज़ और कैप्लिरीज़ में बँट जाता है। शरीर के अवयवों का पालन करके और अस्वच्छ होकर वेन्स के द्वारा रूधिर दो बड़ी-बड़ी मोटी नलियों से दाहिने ऑरिकिल में जा पहुंचता है।

अध्याय-छह

1920 से लेकर 1947 के बीच भारत में विज्ञान लेखन से सम्बन्धित चिंतन (आधुनिक विज्ञान पत्रकारिता के विकास का शैशव काल)

स्वतन्त्रता-पूर्व विज्ञान पत्रकारिता

विज्ञान संचार का इतिहास और विकास उतना ही प्राचीन है, जितनी कि मानव सभ्यता। आग को उत्पन्न करने की तकनीक का प्रसार सम्भवतया इस दिशा में पहला कदम था। आदिकालीन विज्ञान साहित्य में बेबिलोनी काल की ईसापूर्व 4000 की सुमेरी सभ्यता की चित्रलिपि है, जिसमें अंकगणित का समावेश है। ईसा पूर्व 1700 की, मिट्टी पर लिखी गणितीय सारणियाँ हैं। प्राचीन वैज्ञानिक उपलब्धियों के उल्लेख ईसापूर्व 600-500 के यूनानी अभिलेखों में हैं। चीन में ईसा पूर्व 400 में ग्रंथ मोचिंग का पता चलता है, जिसमें प्रकाशिकी, लेंसों और सूची छिद्र कैमरे का उल्लेख था। प्राचीन भारतीय विज्ञान अनुवाद होकर अरब होता हुआ यूरोप पहुँचा जहाँ आधुनिक विज्ञान की आधारशिला रखी गई। सन् 1476 में छापाखाने की शुरुआत के साथ ही महत्त्वपूर्ण प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों के मुद्रण का सिलसिला चला और 15 वीं शताब्दी से आधुनिक विज्ञान और विज्ञान साहित्य का केन्द्र पश्चिमी जगत बन गया। सन् 1600 में रानी एलिजाबेथ के निजी चिकित्सक विलियम गिलबर्ट ने चुंबकीय सिद्धान्त पर लैटिन पुस्तक लिखी, जो इंग्लैंड की पहली विज्ञान पुस्तक है। 1632 में गैलीलियो ने 'जगत की दो पद्धतियों का संवाद' पुस्तक तैयार की। गैलीलियो ने ही 1610 में दूरवीक्षण पर 24 पृष्ठों की पुस्तक लिखी, जो विज्ञान साहित्य की सबसे छोटी महत्त्वपूर्ण पुस्तक कहलाती है। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का श्रेय इंग्लैंड के फ्रांसिस वेकन (1561-1626) को है जिन्होंने रॉयल सोसाइटी की स्थापना की और महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। इस तरह विज्ञान पुस्तकों के लेखन के साथ ही विज्ञान लेखक तत्कालीन समाचार-पत्रों में भी छुटपुट विज्ञान लेख लिखते रहे पर इनकी संख्या काफी कम रही। तब कहीं जाकर "जनवरी 1665 में दुनिया की पहली वैज्ञानिक पत्रिका 'जर्नल देस स्कैवान' मासिक, फ्रेंच एकेडमी देस साइंसेज द्वारा आरम्भ हुई। लगभग इसी समय इंग्लैंड की रॉयल सोसाइटी ने भी 'फिलासॉफिकल ट्रांजैक्शन' नामक विज्ञान पत्रिका आरम्भ की और तब से अब तक दुनिया के विभिन्न देशों से बड़ी संख्या में विज्ञान पत्रिकाएँ निकल रही हैं।"[101]

भारत में विज्ञान पत्रकारिता

चरक द्वारा रचित 'चरक संहिता' को हम अनेक दृष्टियों से भारत का प्रथम शुद्ध वैज्ञानिक ग्रंथ कह सकते हैं। आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय के अनुसार 'रसार्णव' 12 वीं शती में लिखा गया। हमारे वैदिक और पौराणिक ग्रंथों में अनेक

वैज्ञानिक प्रकरण भरे पड़े हैं। भावमिश्र ने 'भावप्रकाश' में सर्वाधिक विस्तृत सूचनाएँ दी हैं। इस तरह समय-समय पर स्वेच्छिक रूप से देश में विज्ञान पुस्तकें लिखी जाती रहीं। सन 1800 में बंगाल में श्रीरामपुर मिशन प्रेस की स्थापना के साथ अंग्रेजी, बांग्ला और हिन्दी में विज्ञान पुस्तकों की छपाई आरम्भ हुई। 1817 में बंगाल में स्कूल बुक सोसाइटी बनी जिसमें विज्ञान पाठ्य पुस्तकें भी तैयार हुईं। 11 सितम्बर 1823 को राजा राम मोहन राय ने गर्वनर जनरल एग्महर्ट को यूरोपीय विज्ञान को भारतीयों को उपलब्ध कराने के लिए पत्र लिखा। अनेक समाचारपत्र-पत्रिकाओं ने भी वैज्ञानिक लेख और समाचार छापने शुरू कर दिए।

इस तरह देश में अंग्रेजी एवं हिन्दी सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं में निरन्तर बढ़ते छुटपुट वैज्ञानिक प्रकाशनों के बाद, सन् 1834 में कोलकाता की विद्वत् संस्था, एशियाटिक सोसाइटी ने देश की सर्वप्रथम वैज्ञानिक पत्रिका 'एशियाटिक सोसाइटी जर्नल' अंग्रेजी त्रैमासिक का प्रकाशन आरम्भ किया। आज देश में विज्ञान की विविध शाखाओं और उपशाखाओं पर अनेक विज्ञान पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित की जा रही हैं।

हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता

वैसे तो विज्ञान लेखन की शुरुआत उन पुराने ग्रंथों से मानी जा सकती है, जिनमें चिकित्सा, खगोल और रसायन शास्त्रीय प्रकरणों का समावेश है, लेकिन आधुनिक विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत 19वीं शताब्दी के आरम्भ से होती है। यद्यपि स्पष्ट रूप से हिन्दी विज्ञान पत्रिका और पुस्तकों का प्रकाशन तो बाद में आरम्भ हुआ, पर सामान्य समाचारपत्र-पत्रिकाओं में सामान्य विज्ञान के लेख तथा समाचार पहले छपने शुरू हुए। वहीं से हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का सूत्रपात माना जा सकता है। यह संयोग ही कहा जाएगा कि हिन्दी पत्रकारिता के बिल्कुल साथ ही हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता भी आरम्भ हुई।

अप्रैल 1818 में सीरामपोर (श्रीरामपुर) जिला हुगली, बंगाल के बेपटिस्ट मिशनरियों ने बांग्ला और अंग्रेजी में मासिक 'दिग्दर्शन' शुरू किया। इसके सम्पादक क्लार्क मार्शमैन (1793-1877) थे। बाद में उसका हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित किया जाने लगा जिसके लिए दिल्ली से कैप्टन गावर द्वारा दो विद्वान भेजे गए। इसके पहले 'अंक में दो विज्ञानपरक लेख थे, एक तो अमेरिका की खोज और दूसरा बैलून (गुब्बारा) द्वारा आकाश यात्रा के बारे में। दूसरे अंक में भी दो लेख विज्ञानपरक थे, एक तो हिन्दुस्तान में उगने वाले किन्तु इंग्लैंड में न उगने वाले वृक्ष और दूसरा भाप की

शक्ति से चलने वाली नाव (स्टीम बोट) के बारे में था। इसमें शैक्षिक, सामाजिक और अन्य राजनीतिक सामग्री भी पर्याप्त थी। उन दिनों पाठ्य पुस्तकों की कमी होने के कारण कोलकाता स्कूल बुक सोसाइटी ने दिग्दर्शन के बहुत से अंक खरीदकर स्कूलों में बँटवाए। इसमें पर्याप्त वैज्ञानिक-शैक्षिक सामग्री होती थी। दिग्दर्शन हिन्दी और बांग्ला का पहला अखबार था। श्री शिवनारायण खन्ना ने दिग्दर्शन के बारे में। लिखा है कि कोलकाता स्कूल बुक सोसाइटी की 1619 में प्रकाशित द्वितीय रिपोर्ट में परिशिष्ट 18 से प्रमाणित होता है कि 1818-19 में हिन्दी दिग्दर्शन की 2000 प्रतियाँ छपने का प्रावधान था। मिशन प्रेस श्रीरामपुर में छपी 'द सेकंड रिपोर्ट ऑव द इंस्टीट्यूशन फॉर द सपोर्ट एंड एनकरेजमेंट ऑव नेटिव स्कूल्स' से प्रमाणित होता। है कि दिग्दर्शन मासिक के प्रथम 3 अंक नागरी लिपि हिन्दी में प्रकाशित हुए। रिपोर्ट। के अनुसार ये हिन्दी अंक भारत के विभिन्न स्कूलों को भेजे गए। इस तरह पहली बार देश में विज्ञान पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ। दिग्दर्शन, हिन्दी, अंग्रेजी और बांग्ला में छपता था।

उन्नीसवीं शताब्दी

19वीं शताब्दी में आधुनिक हिन्दी विज्ञान लेखन की शुरुआत तो हो गई पर उसका स्वरूप ज्यादा नहीं निखरा और छुटपुट स्वैच्छिक प्रयास ही चलते रहे। बनारस के जिला विद्यालय निरीक्षक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 1882 में काशी पत्रिका निकाली, जिसमें विज्ञान विषयों पर उत्तम लेख प्रकाशित होने का उल्लेख है।

सन् 1862 में अलीगढ़ में साइंटिफिक सोसाइटी नामक संस्था बनी। इसका उद्देश्य यूरोपीय विज्ञान साहित्य को अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं से हिन्दी, उर्दू और फारसी में अनुवाद करना था। इसने 8 पुस्तकें इस हेतु चुनी। समिति ने 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसमें कृषि विज्ञान विषयों का समावेश था।

सन् 1888 में वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करने की दिशा में बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ की संरक्षता में प्रो. त्रिभुवन कल्यान दास गज्जर ने वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद का बृहत् और संगठित प्रयत्न शुरू किया। महाराजा ने इस हेतु 50,000 रुपए स्वीकृत किए। लेकिन शब्दावली के अभाव में पहले वर्ष 5 पुस्तकें ही लिखी जा सकीं और बहुत से लेखकों ने पुस्तकें लिखने से मना कर दिया। तब प्रो. गज्जर ने 80 खंडों के बहुभाषी विज्ञान विश्वकोश की योजना बनाई। इस विशाल विश्वकोश की पांडुलिपि बड़ौदा विश्वविद्यालय में होने की सूचना है। सन् 1852 में आगरा में बुद्धि प्रकाश नामक पत्र आरम्भ हुआ। इसमें इतिहास और भूगोल सहित विज्ञान, शिक्षा और

गणित पर भी लेख छपते थे। सरकार इसे स्कूलों में बँटवाने हेतु खरीदती थी। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 15 अक्तूबर 1873 को 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' शुरू की, बाद में इसका नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' हो गया। इसमें वैज्ञानिक लेखों के प्रकाशन के उल्लेख मिलते हैं। पं. बालकृष्ण भट्ट ने 1877 में प्रयाग से 'हिन्दी प्रदीप' निकाला, जिसमें विज्ञान का समावेश था। विद्या, इतिहास, दर्शन, आदि सामी। की सूचना मुखपृष्ठ पर दी जाती थी।

यद्यपि 1854 में कोलकाता से प्रकाशित समाचार सुधावर्षण' को हिन्दी का प्रथम दैनिक होने का श्रेय प्राप्त है, तथापि सही अर्थों में हिन्दी 'दैनिक हिन्दोस्थान 1985 में कलाकांकर (प्रतापगढ़, उप्र) के राजा रामपाल सिंह ने प्रकाशित किया । इसका सम्पादन महामना मदनमोहन मालवीय ने किया। उन्होंने समाचार-पत्र में प्रतिदिन का विशेष विषय निश्चित किया था, जिसमें हालाँकि शुद्ध विज्ञान का तो। उल्लेख नहीं है, लेकिन ग्रामीण, शारीरिक उन्नति और शैक्षिक विषयों का समावेश था। अलीगढ़ से 1887 में बाबू तोताराम ने 'साप्ताहिक भारत बंधु' आरम्भ किया। यह प्रत्येक शुक्रवार को छपता था। इस पत्र में विज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसके मखपष्ठ पर पत्रिका के नाम के नीचे स्पष्ट रूप से लिखा होता था-'ए वीकली जर्नल ऑप लिटरेचर, साइंस न्यूज एंड पालिटिक्स'। 1879 में मेवाड़ से प्रकाशित सज्जनकीर्ति सुधाकर में पुरातत्व विषयों पर लेख प्रकाशन का उल्लेख है। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1893 में काशी में हुई, जिसने आगे चलकर हिन्दी विज्ञान साहित्य के सृजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी विज्ञान लेखन का कार्य चलता रहा। समाचार-पत्रों में जो विज्ञान के लेख प्रकाशित होते थे, उनका उद्देश्य शैक्षिक ज्यादा था और इनमें से ज्यादातर लेख शुद्ध विज्ञान की श्रेणी में नहीं आते थे।

स्वतन्त्रता-पूर्व : बीसवीं शती

उन्नीसवीं शती के अन्त और बीसवीं शती के आरम्भ में हिन्दी विज्ञान साहित्य की अभिवृद्धि हेतु सुनियोजित प्रयास आरम्भ हुए। गुरुकुल कांगड़ी ने 1900 में अपने यहाँ हिन्दी को शिक्षा माध्यम बनाया, जिसमें विज्ञान भी शामिल था। 10 मार्च 1913 को प्रयाग में विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई। परिषद् ने हिन्दी में विज्ञान साहित्य सृजन और विज्ञान का प्रचार करना अपना उद्देश्य रखा।

सन् 1900 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन पर सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी पत्रकारिता की दृष्टि से युगांतरकारी था। इसमें साहित्यिक सामग्री सहित स्पष्ट रूप से विज्ञान, शिल्प

कौशल, कौतुक और पुरातत्व पर सामग्री देने का प्रावधान था। सरस्वती के प्रथम अंक में बाबू श्यामसुंदर दास का वैज्ञानिक लेख, 'आलोक चित्रण : फोटोग्राफी' प्रकाशित हुआ था। इसी अंक में प. किशोरी लाल गोस्वामी का भी एक लेख था-प्रकृति की विचित्रता। सरस्वती के प्रकाशन का उद्देश्य हिन्दी के विकास, पोषण और अभिवर्धन के साथ ही सामयिक विज्ञान समाचारों तथा टिप्पणियों को स्थान देना था। यह स्तंभ लगभग 4-5 पृष्ठों, का होता था। इसका नाम था 'चारु चयन'। इसमें लेखकों को पारिश्रमिक देने की भी व्यवस्था थी। 1914 में विद्यार्थी पत्रिका में विज्ञान लेखों का उल्लेख है। 19131 में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने दिल्ली से मासिक आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका आरम्भ की। पर सही अर्थों में पहली संपूर्ण विज्ञान पत्रिका होने का श्रेय 'विज्ञान' को है, जो विज्ञान परिषद् प्रयाग से 1915 में आरम्भ हुई। धन्वंतरि 19247 में अलीगढ़ से शुरू हुई। भोपाल से कृषक जगत 1945 में निकला। सरकारी क्षेत्र से इंडियन मिनरल्स 1947 में निकली। 1942 से झांसी से प्रकाशित दैनिक जागरण में विज्ञान लेख प्रकाशित होते थे। इसके सम्पादक श्री राजेन्द्र गुप्त थे। 1947 में श्री पूर्ण चन्द गुप्त ने कानपुर से भी दैनिक जागरण निकाला। इसमें भी विज्ञान लेख प्रकाशित होते थे। 1919 में नागपुर से उद्यम मासिक आरम्भ हुआ, जिसमें प्रचुर मात्रा में वैज्ञानिक तकनीकी लेख छपते रहे।

इस तरह स्वतन्त्रता के पूर्व बीसवीं सदी में हिन्दी विज्ञान लेखन में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की अपेक्षा काफी प्रगति हुई। 'सरस्वती' ने स्पष्ट रूप से विज्ञान विषय का समावेश करके ऐतिहासिक कदम उठाया, वहीं हिन्दी में संपूर्ण विज्ञान पत्रिकाएँ 'आयुर्वेद महासम्मेलन' और 'विज्ञान' आरम्भ हुईं। 'विज्ञान' के प्रकाशन से हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का एक युग आरम्भ हुआ। स्वतन्त्रता-पूर्व लगभग 250 पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इस अवधि में हिन्दी विश्वकोश और वैज्ञानिक शब्दकोशों के प्रणयन से हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता में उन्नीसवीं सदी में जो अवरोध था, वह काफी कुछ दूर हुआ और इस तरह हिन्दी विज्ञान लेखन की ओर प्रगति के द्वार खुले। इस समय का विज्ञान लेखन उन्नीसवीं शताब्दी से अधिक विकसित था, लेकिन परिमार्जित नहीं। उसका परिमार्जित स्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत ही सामने आया।

छूटे हुए सूत्र और अनछुए अध्याय

आधुनिक हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से व्यक्तिगत प्रयासों से ही हुई और उसके विकास तथा पोषण में भी रुचिवान विचारकों, चिंतकों, वैज्ञानिकों सहित भाषाविदों की भी भूमिका रही। यहाँ विज्ञान लोकप्रियकरण के अन्य अनेक पहलुओं पर न जाकर सिर्फ उन छूटे हुए सूत्रों को खोजने का प्रयास किया गया है, जिनके सहारे पीछे जाने पर विज्ञान पत्रकारिता और लेखन के क्षेत्र में किए गए उत्कृष्ट प्रयासों के अनेक अनछुए पक्षों को उजागर किया जा सकेगा।

विज्ञान पत्रकारिता, विज्ञान लोकप्रियकरण और विज्ञान संचार कार्यों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हालाँकि स्वतन्त्रता से पहले ज्ञान की इस शाखा पर कोई सुनिश्चित, सुव्यवस्थित और सुनियोजित एवं स्पष्ट प्रयास नजर नहीं आते, लेकिन स्वैच्छिक स्तरों पर किए गए व्यक्तिगत प्रयासों की श्रृंखला देखने को मिलती है, जिनसे पता चलता है कि उस जमाने में कुछ मनीषी विज्ञान की बातों को लोगों तक पहुँचाने के लिए कितने समय और जागरूक थे। विज्ञान लेखन और पत्रकारिता का स्वरूप स्वतन्त्रता से पहले कर आकार से चुका था। हिन्दी में विज्ञान लेखन और पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक लोगों ने व्यक्तिगत स्तरों पर अपनी अभिरुचि के कारण योगदान किया।

1. सार्क मार्शमैन (1794-1877) के सम्पादन में 1818 में सीरामपोर (श्रीरामपुर) जिला हुगली, पश्चिम बंगाल से हिन्दी अंग्रेजी मासिक 'दिग्दर्शन' शुरू हुआ। इस प्रकार 1818 में हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता शुरू हुई। हालांकि कुछ विद्वान 'उदंत मार्तण्ड' (सम्पादक पं. युगल किशोर शुक्ल, 1826) का हिन्दी का पहला अखबार मानते हैं। लेकिन उसमें विज्ञान प्रकरणों के उल्लेख नहीं मिलते हैं। हिन्दी दिग्दर्शन निकालने के लिए कैप्टन गाँवर ने दिल्ली से दो विद्वानों को श्रीरामपुर भेजा था किन्तु इनके नामों का उल्लेख नहीं मिलता। इन्हीं में से एक ने "दिग्दर्शन' में हिन्दी विज्ञान लेखन शुरू किया था।

2. पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र की, हिन्दी विज्ञान लेखन और पत्रकारिता के व्यक्तिगत प्रयासों में, खासी भूमिका रही। उन्होंने अपने निजी प्रयासों से 1882 में बनारस से साप्ताहिक काशी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। काशी पत्रिका का हिन्दी में विज्ञान सामग्री प्रस्तुत करने में उल्लेखनीय योगदान रहा। इसके मुखपृष्ठ पर पत्रिका के नाम के नीचे हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में एक विशेष वाक्य छपता था-'ए वीकली एजूकेशनल जर्नल ऑव साइंस, लिटरेचर एंड न्यूज इन

हिन्दुस्तानी । इसमें भरपूर शैक्षिक और वैज्ञानिक रचनाएँ होती थी। प. लक्ष्मीशंकर मित्र इसके सम्पादक थे। वे भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर थे और बनारस कॉलेज में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक थे। वे बनारस के जिला विद्यालय निरीक्षक भी रहे। काशी पत्रिका को पहली हिन्दी विज्ञान पत्रिका की दिशा में एक अच्छा प्रयास माना जाता है। काशी पत्रिका प्रकाशित करने के साथ ही उन्होंने लोकप्रिय विज्ञान पर विभिन्न पुस्तकें भी लिखी। उन्होंने विभिन्न लक्ष्य समूहों के बीच विज्ञान के विभिन्न रोचक विषयों पर लोकप्रिय व्याख्यान दिए। वे स्वयं काशी पत्रिका के नियमित लेखक भी वे तथा नियमित स्तंभों हेतु सामग्री न मिलने पर खुद ही स्तंभ लिख डालते थे।

3. प्रो. त्रिभुवन कल्याण दास गज्जर ने 1888 में वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करने की दिशा में वैज्ञानिक पुस्तकों के लेखन, अनुवाद और प्रकाशन का बीड़ा उठाया। बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने इस हेतु 50 हजार रुपए स्वीकृत किए।

4. श्री हीरालाल खन्ना का विज्ञान साहित्य में काफी योगदान रहा। वह विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभापति भी रहे। 1931 में वैज्ञानिक व्याख्यानों की श्रृंखला में झांसी में आयोजित विज्ञान परिषद् में दिए गए अपने व्याख्यान में उन्होंने वैज्ञानिक लेखन हेतु 3 बातें बताई थीं-आसान भाषा, पारिभाषिक शब्दों की उपलब्धि और निश्चयता तथा सहकारिता और सहयोग। इस तरह उन्होंने विज्ञान साहित्य सृजन में प्राण फूंके और सीमित साधनों में विज्ञान लेखन सम्भव हो सका।

5. श्री सुखसंपत राय भंडारी ने 1932 के आसपास बीसवीं शताब्दी अंग्रेजी हिन्दी कोश निकाला। यह पाँच खंडों में है, और इसमें एक लाख से अधिक शब्द, पर्यायों और विवरणों सहित दिए गए हैं।

6. डॉ. रघुबीर का बंगला, देवनागरी, तमिल, तेलुगु का परिष्कृत कोश 1944 में प्रकाशित हुआ। डॉ. रघुबीर का प्रयास विज्ञान शब्दावली के आरंभिक प्रयासों में उल्लेखनीय है।

7. डॉ. गोविन्द बिहारी लाल उन जाने माने विज्ञान लेखकों में रहे हैं, जिन्होंने न केवल भारत में बल्कि पश्चिमी जगत में भी आधुनिक विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत की। डॉ. लाल ने दिल्ली विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त की। विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही विज्ञान लेखन और पत्रकारिता की ओर उनका रुझान

हुआ। आरम्भ में वे सक्रियतापूर्वक स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़े रहे। वह एक समर्पित देशभक्त थे। गदर के समय वे काफी सक्रिय रहे, किन्तु उन्हीं दिनों वे अमेरिका चले गए। वहाँ जाकर वे सक्रिय पत्रकारिता के क्षेत्र में आए और अपने कार्य के लिए विशेष रूप से पत्रकारिता का क्षेत्र चुना। सन् 1931 में 29 वर्षीय दो युवा वैज्ञानिकों ने एसोसिएटेड प्रेस के विज्ञान सम्पादक हॉवार्ड डब्ल्यू. ब्लेकसली, न्यूयार्क टाइम्स के विज्ञान लेखक विलियम लारेंस और विज्ञान पत्रकार गोविन्द बिहारी लाल को अपनी बात सुनाने के लिए आमन्त्रित किया। ये वैज्ञानिक थे-डॉ. अनेस्ट ओ. लारेंस और राबर्ट ओपेनहाइमर (परमाणु बम के निर्माता)। उन्होंने बताया कि उन्हें विद्युत आवेशित कणों को तीव्र से तीव्रतर गति में ऊर्जित करने वाली मशीन की आवश्यकता है, पर उनके पास धन और उपकरण नहीं है। डॉ. गोविंद बिहारी लाल सहित अन्य वैज्ञानिक लेखकों ने उन वैज्ञानिकों से बातचीत के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार की। जब यह रिपोर्ट समाचार-पत्रों में छपी तो उन्हें वह मशीन मुफ्त में मिल गयी, जिसे पाने के लिए वे कितने ही प्रयास कर चोरी इसके अतिरिक्त डॉ. लाल ने महान वैज्ञानिक एल्बर्ट आइंस्टाइन और अल अनेक प्रमुख वैज्ञानिकों सहित डॉ. हरगोविन्द खुराना से भी साक्षात्कार किया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण उनमें कूट-कूट कर भरा था। उनका कहना था कि आज हमें वैज्ञानिक राष्ट्रवाद का निर्माण करना होगा, मदिरों, मस्जिदों, गरुदारों और चर्चों के गुंबदों पर दूरबीन लगवा दी जानी चाहिए, ताकि लोग आडंबरपूर्ण भक्ति के माध्यम से नहीं, विज्ञान के माध्यम से ब्रह्मांडीय रहस्यों के दर्शन कर सकें। विदेश जाने से पहले डॉ. लाल हिन्दू कॉलेज दिल्ली में पढ़ाते थे। उन्होंने 19 वर्ष की उम्र में अपने स्कूली दिनों में विकासवाद के सिद्धान्त पर भाषण दिया था और पुरस्कार जीता था। 'विदुर' नवम्बर 1967 (प्रेस इंस्टीच्यूट ऑव इंडिया की त्रैमासिक पत्रिका) को दिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा 'मुझे भौतिकी, चुंबकीय तरंगों और प्रकाश के विज्ञान से गहरा लगाव है। विज्ञान ने मुझे हमेशा रोमांचित किया।' इसी रोमांच को लेकर वे अमेरिका पहुँचे। अमेरिकी समाचार-पत्रों में काम करने वाले वह एकमात्र एशियाई थे। सैनफ्रांसिसको एक्जामिनर में जब उन्होंने काम शुरू किया तो देखा कि वहाँ विज्ञान के बारे में ज्यादा कुछ नहीं छपता था और उन्होंने नोबेल पुरस्कार विजेता रॉबर्ट मिलिकान से साक्षात्कार करने की ठानी, लेकिन प्रबन्ध सम्पादक उसे छापने को तैयार नहीं था। तब उन्होंने अखबार छोड़ने की धमकी दी। अन्ततोगत्वा ब्रह्मांडीय किरणों पर उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई और पाठकों ने उसे सराहा। इस प्रकार भारतीय विज्ञान पत्रकार डॉ. लाल ने अमेरिका में बिज्ञान पत्रकारिता का कार्य शुरू किया। सन् 1930 में उन्होंने अपने एक लेख में कैंसर के जैव रासायनिक कारणों की व्याख्या की और आज वास्तव में यह स्पष्ट हुआ है कि वृक्क

के ऊपरी भाग में स्थित एड्रीनल ग्रंथि से उत्पन्न एक विशेष प्रकार का हार्मोन कुछ प्रकार का कैंसर पैदा करता है। बाद में डॉ. एडवर्ड सी. केंडाल ने खोज द्वारा इस बात की पुष्टि की जिस पर उन्हें नोबल पुरस्कार मिला। डॉ. केंडाल ने इस खोज के लिए प्रेरणा का श्रेय डॉ. लाल की रिपोर्टों को दिया। विज्ञान पत्रकारिता के लिए 1937 में डॉ. लाल को पुलित्जर सम्मान से पुरस्कृत किया गया। वह लॉस एंजिल्स टाइम्स और हर्स्ट ग्रुप न्यूज सर्विस के भी विज्ञान सम्पादक रहे। कुल मिलाकर डॉ. लाल ने सही अर्थों में भरपूर विज्ञान पत्रकारिता की और पत्रकारिता की सभी विधाओं में सफल प्रयोग किए। बीच-बीच में वे जब भी भारत आते थे, यहाँ के विज्ञान लेखकों, सम्पादकों के लिए प्रेरणा के स्रोत होते थे। उनका कहना था कि भारत में विज्ञान लेखक, विकास की भावना, प्रकृति के नियमों की समझ और प्रकृति के नियमों के अनुसार समाज को ढालने के प्रयासों को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।'

8. श्री हरगू लाल : हमारा देश प्राचीन काल से ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में आगे रहा। इसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के लोकप्रियकरण के प्रयासों की खोज करते समय एक सूत्र और हाथ लगा, जिनका नाम है श्री हरगू लाल। श्री हरगू लाल ने 1857 के आसपास विज्ञान और स्कूली वैज्ञानिक उपकरणों मॉडलों के निर्माण और प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में काम किया। यदि हम गौर करें तो पाएँगे कि ज्यादातर प्रयास 19वीं सदी के अन्तिम दशकों से आरम्भ होते हैं। इस प्रकार भारत में विज्ञान लोकप्रियकरण के समर्पित व्यक्तिनिष्ठ प्रयासों की तारीख 1857 तक खिसक जाती है। श्री हरगू लाल अंबाला में शिक्षक थे। उन्होंने बच्चों को विज्ञान पढ़ाते समय यह अनुभव किया कि विज्ञान की पढ़ाई के साथ-साथ अगर विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रयोगों के माध्यम से करके समझाया जा सके तो बच्चे ज्यादा आसानी से समझ सकते हैं। शुरू में उन्होंने चंबक, प्रकाश, आदि सम्बन्धी प्रयोगों के उपकरण बनाए। इन उपकरणों की आसपास के क्षेत्रों में धीरे-धीरे काफी माँग होने लगी। उपकरणों के साथ ही उन्होंने सचित्र पोस्टर और रेखाचित्र बनाने शुरू कर दिए। इससे माँग कई गुना ज्यादा बढ़ गयी। धीरे-धीरे उन्होंने मानव के विभिन्न अन्तरांगों, जीव जंतुओं, मशीनों, उपकरणों, आदि के स्थिर माडल भी बनाने शुरू कर दिए। अब उनके साथ और भी लोग इस व्यवसाय में जुड़ गए। धीरे-धीरे मॉडलों और उपकरणों में उन्होंने और सुधार किए और जब कार्यकारी मॉडलों, उपकरणों का विकास हुआ। यह कार्य चल निकला और देखते ही देखते वे इन सस्ते और सरल उपकरणों का निर्यात भी करने लगे। उन्होंने अपने उपकरणों, सचित्र पोस्टरों की एक सूची भी छपवाई।

इस सम्बन्ध में एक मजेदार घटना हुई। मुम्बई के किसी व्यवसायी ने उनकी सूची के आधार पर अपना एक कैटेलॉग छपवाया, जिसके माध्यम से वह यह प्रचार करने लगा कि उसके पास ये उपकरण उपलब्ध हैं, जबकि वास्तविकता यह थी कि वे उपकरण वह श्री हरगूलाल, अंबाला से मँगवाता था और अधिक कीमत पर बेचता था। हरगूलाल को जब यह पता चला तो उन्होंने उस व्यवसायी के खिलाफ दावा दायर कर दिया, जिसमें हरगूलाल की जीत हुई और विपक्षी को जुर्माना भरना पड़ा।

इसके बाद स्वदेशी आंदोलन के दौरान अंबाला में ही श्री नंदलाल और उनके पुत्र पन्नालाल द्वारा इसी प्रकार का कार्य करने के उल्लेख मिलते हैं। शायद यही कारण है कि सन् 1857 में हरगूलाल ने स्वप्रेरणावश वैज्ञानिक उपकरणों, पोस्टरों, मॉडलों के प्रचार-प्रसार की जो नींव रखी थी वह आज पुष्पित और पल्लवित हो चुकी है। अंबाला के विज्ञान नगर में प्रायः हर घर और गली में वैज्ञानिक उपकरणों का निर्माण बड़े स्तर पर किया जा रहा है और अंबाला शहर इस क्षेत्र में देश का एक मुख्य केन्द्र बन गया है।

9. श्री देवी शंकर मिश्र : श्री देवी शंकर मिश्र 1930 से 1950 के आसपास सक्रिय रहे। उन्होंने प्राणिशास्त्र और नवविज्ञान नामक दो पत्रिकाएँ प्रकाशित की। अपने समय में वह एक समर्पित विज्ञान लेखक/पत्रकार रहे हैं। श्री मिश्र से लेखक का साक्षात्कार जून 1994 में लखनऊ में राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद और विकास द्वारा आयोजित विज्ञान पत्रकारिता कार्यशाला में हुआ। तब वे करीब 90 वर्ष के थे। श्री मिश्र प्राचीन ऋषिया मनियों की भारतीय वैज्ञानिक परम्परा के थे। साँपों के ऊपर उन्होंने 500 पृष्ठों की पुस्तक 'विश्व सर्प सम्मेलन' लिखी। पत्रिकाओं में चमत्कारों और अंधविश्वासों के खिलाफ भी उनकी काफी सामग्री प्रकाशित होती थी।

एक बार समाचार-पत्रों ने एक समाचार प्रकाशित किया-लद्दाख में रक्त का वर्षा हुई और रक्त तमाम गड्ढों में भरा देखा गया। यहाँ की बर्फ से ढकी पहाड़ों की चोटियाँ भी लाल हो गयीं। वहाँ के निवासी इसे परमात्मा का प्रकोप समझकर भयभीत हो गए और पूजा अर्चना में लग गए। प्राणि शास्त्र के अगले अंक में श्री मिश्र ने इस तथाकथित चमत्कार का वैज्ञानिक समाधान लिखा-इस घटना को परमात्मा का प्रकोप कहना ठीक नहीं। यह तो एक साधारण प्राकृतिक घटना है। तथ्य यह है कि एक प्रकार के कशाभीय (फ्लैजलेट) प्रोटोजोआ होते हैं जिनका वैज्ञानिक नाम है-हीमैटोकॉर्पस । ये इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शी से ही देखे जा सकते हैं। यदि एक पंक्ति में 500 सजाए जाएँ तब

जाकर लंबाई में एक मि.मी. पहुँचेंगे। इनका रंग खून की तरह लाल होता है और जब नमी में पहुँचकर विभाजित होकर करोड़ों की संख्या में पहुंच जाते हैं तो पानी या नमी वाला स्थान खून की तरह लाल दिखाई देने लगता है और अंधविश्वासी लोग समझते हैं कि अन्तरिक्ष में देवों और दानवों का युद्ध हुआ है। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण श्री मिश्र के लेखन में देखने को मिलते हैं। विज्ञान लेखक के साथ ही वह कवि, नाटककार, कहानीकार और भारतीय ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित विषयों के उत्कृष्ट लेखक रहे हैं। 1938 में उन्होंने आकाशवाणी में भविष्य के विज्ञान पर एक रूपक प्रस्तुत किया। 1939 में उन्होंने लखनऊ यूनिवर्सिटी जुऑलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना की। 1941 में पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) में हिन्दी साहित्य समिति की स्थापना की। श्री मिश्र ने अपने विज्ञान लेखन में स्वनिर्मित तकनीकी शब्दों का खूब उपयोग किया। वह कहते थे कि उनके पास ज्यादातर प्रकाशनार्थ आए लेख अंग्रेजी में होते थे जिनका अनुवाद उन्हें करना पड़ता था। प्रकाशनार्थ आए चित्रों का नामांकन भी अंग्रेजी से हिन्दी में करना होता था। अनेक पारिभाषिक शब्द खुद गढ़ने होते थे। इस प्रकार साधनों के अभाव में उन्होंने विज्ञान लेखन कार्य को आगे बढ़ाया। हाल ही में वह दिवंगत हुए।

10. प्रो. फूलदेव सहाय वर्मा ने 1934 में गंगा पत्रिका का विज्ञान अंक निकाला था। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में स्वैच्छिक और व्यक्तिगत स्तरों पर अनेक लोगों ने अपनी स्वतःप्रेरणा के और अपनी परिकल्पना के अनुसार शब्दों के नए सिरे से बनाकर समस्या का समाधान किया। एक बात जो देखने में मिलती है वह यह है कि देशभर में विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार के स्वैच्छिक प्रयास लगातार चलते रहे हैं, जिन्होंने विज्ञान लेखन और पत्रकारिता को आगे बढ़ाया है। यही नहीं भारतीय संस्कृति की परम्परा नामक पुस्तक में दिए गए उद्धरणों के अनुसार, राजा भोज द्वारा लिखे गए एक ग्रंथ में विभिन्न यंत्रों, स्वयं खुलने और बद होने वाले दरवाजों. लिफ्ट जैसे यंत्र, ट्रेन जैसी मशीन की कल्पना की गयी है। इसमें सुन्दरियों की मूर्ति में नखों तथा नाभी से फव्वारों की तकनीक तथा ऐसा हाथी बनाने की तकनीक का सुझाव दिया गया है कि वह पानी तो पीता जाए पर पता नहीं चले कि पानी कहां जाता है इस प्रकार स्वतंन्त्र स्तरों पर विज्ञानोन्मुखी लेखन के प्रयास हुए। हिन्दी विज्ञान लेखन और पत्रकारिता के इस स्वरूप को आज की स्थिति में पहुंचने के लिए लगभग 188 वर्ष की लंबी यात्रा तय करनी पड़ी है। उन्नीसवीं शताब्दी, हिन्दी विज्ञान लेखन और पत्रकारिता के प्रादुर्भाव और उसके विकास के लिए महत्त्वपूर्ण रही है।

स्वतंत्रता पश्चात् विज्ञान पत्रकारिता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान द्वारा हिन्दी राजभाषा घोषित होने पर हिंदी विज्ञान लेखन और पत्रकारिता की दिशा में भी प्रगति हुई और अनेक प्रकाशकों ने हिंदी वैज्ञानिक साहित्यका कार्य गंभीरता से आरम्भ किया। पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त जन विज्ञान पर पुस्तकें प्रकाशित की गईं। 1958 में भारतीय संसद ने विज्ञान नीति प्रस्ताव पारित किया, जिसमें लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रावधान था।

सन् 1970 में प्रांतीय स्तरों पर ग्रंथ अकादमियों की स्थापना से काफी वैज्ञानिक साहित्य रचा गया। अप्रैल 1960 में राष्ट्रपति के अध्यादेश पर सुनियोजित और आधुनिक वैज्ञानिक शब्दाबलियों के निर्माण और मानकीकरण के लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई, जिसने अब तक विज्ञान के विभिन्न विषयों पर प्रामाणिक शब्दावलियां प्रकाशित की हैं, जिनके कारण आज परिमार्जित विज्ञान लेखन संभव हो सका है। केन्द्रीय स्तर पर वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने हिंदी विज्ञान साहित्य की अभिवृद्धि में खासी भूमिका निभाई।

स्वतंत्रता के बाद देश में अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित की जाने लगी और कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने विज्ञान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। इस दौरान केवल विज्ञान विषयों की नई पत्रिकाएं भी आरंभ हुई। 1948 में लखनऊ से प्राकृतिक जीवन एवं पटना से सचित्र आयुर्वेद आरम्भ हुई। 1950 में पूना से स्वास्थ्य और जीवन निकली। होमियोपैथिक संदेश 1948 में दिल्ली से आरंभ हुई। चिकित्सा विज्ञान के साथ ही कृषि पत्रिकाएं भी प्रकाश में आई। 1948 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से खेती आरम्भ हुई। कृषि विभाग, मध्य प्रदेश से 1948 में किसानी समाचार, 1950 में लखनऊ से कृषि और पशुपालन, 1952 में विस्तार निदेशालय, दिल्ली ने उन्नत कृषि फार्म सूचना एकक से गोसंवर्धन, आदि पत्रिकाएं आरम्भ हुई। 1948 में भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद से प्राणिशास्त्र निकली। इस तरह से स्वतंत्रता के बाद विज्ञान के विभिन्न विषयों पर विज्ञान पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं, जिनमें से कुछ आज भी चल रही है। 1958 में विज्ञान परिषद प्रगाग ने हिंदी में त्रैमासिक शोध पत्रिका 'विज्ञान परिषद्' अनुसंधान पत्रिका आरंभ करके एक नया प्रयोग किया, जिसके फलस्वरूप और भी शोध पत्रिकाएं प्रारंभ हुई। 1966 तक जहां 81 हिंदी विज्ञान पत्रिकाएं

प्रकाशित होने की सूचना थी, वहीं 1983 तक विभिन्न विज्ञान विषयों पर 321 पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। पर सामान्य विज्ञान की पत्रिकाएं इतनी अधिक लोकप्रिय हुईं कि आगे लोग सिर्फ उन्हें ही विज्ञान पत्रिका मानने लगे।

सन् 1915 में विज्ञान परिषद इलाहाबाद से 'विज्ञान' के प्रकाशन के 37 वर्ष बाद वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद से 1952 में 'विज्ञान प्रगति' का प्रकाशन ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। पहले इसमें जटिल तकनीकी विषयों और पेटेंट विशिष्टियों, आदि का समावेश रहता था। पर 1964 में इसका कायाकल्प कर इसे लोक विज्ञान पत्रिका बना दिया गया, और इसकी लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती चली गई। 1960 में विज्ञानन समिति उदयपुर ने डॉ- कुंदनलाल कोठारी के सम्पादकत्व 'लोक विज्ञान' (मासिक) आरमभ की जिसमें विज्ञान की विविध शाखाओं पर लेख छपते थे।1961 में दो हिंदी विज्ञान मासिक पत्रिकाएं आरम्भ हुईं, जिनका गेटअप पूर्णतया वाणिज्यिक सफल पत्रिकाओं की तरह था। इनमें रंग-बिरंगे चित्र और विज्ञान पर अच्छे स्तर के लोकप्रिय लेख थे। इनमें से प्हली थी 'विज्ञान लोक' (मासिक) जो श्री शंकर मेहरा ने आगरा से शुरू की, और दूसरी थी 'विज्ञान जगत' (साइंस डाइजेस्ट), जिसे इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से आर-डी- विद्यार्थी के संपादकत्व में आरम्भ किया गया। इसके प्रवेशांक में थ्रोम्बोसिस, (डॉ- प्रीतम दास), उड़ती मोटरों का रहस्य (डॉ- नवल बिहारी मिश्र), टेलीविजन (वी- सिंह), सर्जरी का चमत्कार (डॉ. आर.के. विद्यार्थी) आदि लेखों के साथ चित्रकथा, समाचार तथा विज्ञान क्लब नामक स्तभ भी थे। विज्ञान जगत का प्रकाशन ऐतिहासिक था, पर यह ज्यादा नहीं चला। हां आगरा की विज्ञान लोक लगभग 15 वर्ष सफलतापूर्वक चली। विज्ञान पत्रकारिता की दिशा में इन पत्रिकाओं का उल्लेख योगदान है। 1964 में सूरज प्रकाश पापा के सम्पादन में जयपुर से 'वैज्ञानिक बालक' निकली, अब यह बंद है।

इसी क्रम में 1969 में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का गठन किया और 'वैज्ञानिक' नामक त्रैमासिक पत्रिका आरम्भ की। यह आज भी निकल रही है। इसमें उच्च कोटि के लेख प्रकाशित हाते हैं। जनवरी 1971 में राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम, नई दिल्ली से मासिक पत्रिका, आविष्कार शुरू हुई। अक्टूबर 1975 में नैनीताल से 'विज्ञान डाइजेस्ट' मासिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 1979 में विज्ञान परिषद, महोबा (उ-प्र-) की स्थापना हुई और तभी वहां से 'ज्ञान विज्ञान' मासिक पत्रिका आरम्भ हुई। इसके सम्पादक मनोज पटौरिया थे। पत्रिका में विविध वैज्ञानिक विषयों पर रोचक जानकारी दी जाती थी, किन्तु परिषद के सीमित साधनों के कारण यह पत्रिका बंद हो गई। 1978 में इलाहाबाद से विज्ञान भारती त्रैमासिक तथा 1980 में विज्ञान वैचारिकी

त्रैमासिक पत्रिककाएं प्रारंभ हुई किन्तु असमय ही बंद हो गयीं। 1979 में भारतीय विज्ञान संस्थान से 'विज्ञान परिचय' नामक त्रैमासिक पत्रिका आरंभ हुई। इसमें जटिल वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में ठोस लेख प्रकाशित होते हैं।

जुलाई 1981 में 3 पत्रिकाएं आरम्भ हुई। 'विज्ञानपुरी' त्रैमासिक, ग्रामशिल्प त्रैमासिक और जूनियर साइसं डाइजेस्ट मासिक। विज्ञानपुरी, विज्ञान परिषद, महोबा से मनोज पटौरिया के सम्पादकत्व में आरम्भ हुई। ग्राम शिल्प, राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम ने ग्रामीण प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के लिए आरम्भ की। जूनियर साइसं डाइजेस्ट दिल्ली से वर्मा ब्रदर्स नामक प्रतिष्ठान ने निकाली। यह पत्रिका पूर्णरूपेण पाठ्यक्रम विषयक विज्ञान पर केंद्रित थी। दिसम्बर 1982 में बैरकपुर, पश्चिम बंगाल से 'विज्ञान दूत' नामक मासिक पत्रिका डॉ- गोविंद प्रसाद यादव के सम्पादकत्व में आरंभ हुई। यद्यपि यह व्यावसायिक प्रतिष्ठान, एशिया बुक कंपनी, इलाहाबाद से निकाली गई, पर तीन अंक निकालकर बंद हो गई। 1986 में मुंबई से एक चित्रत्मक बाल विज्ञान पत्रिका, 'साइफन' आरंभ हुई जो निःसंदेह बच्चों को वैज्ञानिक जानकारी के लिए एक सर्वोपयुक्त पत्रिका थी। इसी दौरान केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने 'विज्ञान गरिमा सिंधु' नामक त्रैमिकासि पत्रिका प्रारंभ की जिसका उद्देश्य स्नातक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए नई पाठ्य सामग्री रोचक ढंग से प्रस्तुत करना है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा हिंदी को विश्व की तीसरी भाषा मानने के कारण यूनेस्को की पत्रिका 'कूरियर' का हिंदी संस्करण भारत में नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशित करता है। कुछ समय तक विश्व स्वास्थ्य संगठन के भारतीय कार्यालय से 'वर्ल्ड ग्रोथ' का हिंदी सस्करण प्रकाशित होता रहा। हिंदी में विज्ञान के प्रचार-प्रसार में विदेशी एजेंसियां भी आगे आई हें। सोवियत रूस की पत्रिकाओं में काफी विज्ञान होता है। इधर भारत में ब्रिटिश दूतावास की ब्रिटिश सूचना सेवा 1985 से एक त्रैमासिक हिंदी विज्ञान पत्रिका 'ब्रिटिश वैज्ञानिक एवं आर्थिक समीक्षा' प्रकाशित कर रही है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान नई दिल्ली ने 1987 से अर्धवार्षिक विज्ञान पत्रिका जिज्ञासा आत्मा की है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान जैसे अंग्रेजीपरक संस्थान से हिंदी पत्रिका का प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा अन्य संस्थानों के लिए अनुकरणीय भी। अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन ने बेगलोर से स्पेस इंडिया हिंद त्रैमासिक का प्रकाशन आरंभ किया है। इसमें भारतीय अन्तरिक्ष विान पर मनमोहक सचित्र लेख प्रकाशित होते हैं। श्री बी.डी. पटैरिया के सम्कादत्व में केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद, नई दिल्ली ने जनवरी1988 से 'विज्ञान गंगा' नामक त्रैमासिक हिंदी

विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जो कुछ वर्ष बाद बंद हे गई। लखनऊ से मुकुल शर्मा के सम्पादन में 1998 से विज्ञान आलोक मासिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ, यह पत्रिका भी अनियमित हो गई है। गाजियाबाद से डॉ- ओम प्रकाश शर्मा के सम्पादन में विज्ञान आपके लिए, जयपुर से श्री एस- के- मिश्र के सम्पादन में परिबोध, तथा जयपुर से श्री तरूण जैन के सम्पादन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रकाशन पिछले वर्षों से आरंभ हुआ है। इनके अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान, कृषि विज्ञान और अन्य शाखाओं पर अनेक विज्ञान पत्रिकाएं उदय और अस्त होती रहीं तथा कुछ अभी भी निकल रही हैं। इस तरह हिंदी विज्ञान पत्रकारिता की यह यात्र विकास की ओर अग्रसर है।

भारत में विज्ञान-लेखन का कार्य काफी प्राचीन एवं गौरवपूर्ण रहा है। आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा को माना गया है। हिन्दी में विज्ञान लेखन की कला भी संस्कृत भाषा से ली गई है। अर्थात हम यह कह सकते भारत में विज्ञान लेखन का आरम्भ प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे मिलता है। "प्राचीन भारत में चरक पहले ऐसे विज्ञान विषयक एवं सम्पादक थे जिन्होंने 'चरक संहिता का संपादन किया और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए संभाल कर रख दिया और यही से भारत में विज्ञान लेखन की परम्परा के विकास का मार्ग प्रशस्त होता जान पड़ता है। भारत में विज्ञान लेखन को आगे बढ़ाने का कार्य पाणिनी द्वारा रचित 'अष्टाध्यायी, कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र, वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र एवं भास्कर द्वारा रचित 'गोलाध्याय इत्यादि ने किया।[102]

आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व चाहे अमीर खुसरो रहे हों या सन्तकवि कबीर दास, इनके काव्य में खड़ी बोली के बीज थे। लेकिन फिर भी खड़ी बोली को खड़ी करने का सर्वाधिक श्रेय ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द के समकालीन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। उन्होंने इसे गद्य की भाषा के रूप में खड़ा किया। भारतेन्दु मंडल कई सारे सात्यिकारों ने इसका सम्वर्धन किया। यही खड़ी बोली आगे चलकर विज्ञान लेखन की प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। 1900 ई. में प्रयाग से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन एक महत्त्वपूण घटना है और खड़ी बोली के प्रयोग द्वारा ही पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा में परिवर्तित कर दिया। "उत्तरभारत के वे हिन्दी भाषी जो काव्य सागर में आनन्द के हिलोरे लेने में मस्त थे, सहसा विज्ञान की तरंगों में बहने लगे। हिन्दी अब विज्ञान संचारिका बन गई थी। शुरूआत के 20 वर्षों में विज्ञान साहित्य के लेखन कार्य को इतना बढ़ाया गया कि पाठकों को विश्वास हो गया कि वे ऐसे उन्नत युग का सपना देख सकते हैं, जिसमें संस्कृत भाषा गम्भीर प्रभाव आने से विज्ञान की बातें आम लोगों तक सुलभ माध्यम से पहुँच सकती है और सचमुच ही यह सपना साकार हुआ।[103] सन् 1947,

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक इलाहाबाद हिन्दी विज्ञान साहित्य सृजन का केन्द्र बना रहा। "अभी तक जितने भी साहित्य लेखन का कार्य करने वाले या फिर विज्ञान विषयक रुचि रखने वाले लोग, जो कि 'सरस्वती' में लिख रहे थे, उनके लिए 'विज्ञान' पत्रिका का नवीन मंच मिला और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक 'विज्ञान' ही एकमात्र विज्ञान विषयों की पत्रिका बनी रही। जो कि भारत के लिए एक गौरवर्पूण बात थी"।[104]

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जिस तरह से भारतीय भाषों में विज्ञान लोकप्रिय हो रहा था, उसे "वर्नाकुलराइजेशन' की संज्ञा प्रदान की गई। इसी समय हमारा देश ब्रिटिश शासन के अधीन था। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लेखकों में राष्ट्रीय आंदोलन की भावना उत्पन्न हो रही थी। "बंगाल में रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी , दिल्ली में मास्टर रामचन्द्र तथा जकाउल्ला और बनारस में लक्ष्मी शंकर मिश्र अपने लेखन द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में विज्ञान विषयक अभिरुचि का विस्तार करने में लगे थे। उन्हें अंग्रेजी से परहेज नहीं था बल्कि हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने आवश्यकता अनुसार अंग्रेजी से अपनी भाषाओं में अनुवाद करके और स्वयं मौलिक लेखन करके देश में विज्ञान लेखन की नींव डाली। सैकड़ों पुस्तकें बीसवी सदी के आरम्भिक समय तक लिखी जा चुकी थीं एवं बीसवी सदी के अंत तक कई सारी हिन्दी में विज्ञान विषयक पुस्तकों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई।[105]

हिन्दी गद्य के विकास में संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान है । हिन्दी के विद्वानों को अंग्रेजी शब्दकोश को भी हिन्दी में अनुवाद करने में कोई संकोच नहीं होता था यही कारण था कि आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल, जिन्होंने 1920 में हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा था, जर्मनी के प्रसिद्ध जीव-विज्ञानी हेकेल द्वारा रचित पुस्तक (Riddle for the Universe) का अनुवाद 'विश्व प्रपञ्च' नाम से किया और इसे काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा बहुत ही खुशी के साथ प्रकाशित किया गया।

हिन्दी में विज्ञान लेखन का कार्य करने में कथावस्तु का बहुत बड़ा हाथ होता है। आरम्भ में जो हिन्दी में विज्ञान लेखन का कार्य हुआ उसकी विषयवस्तु लेखक के विचारों के अनुसार होती थी।

हिंदी के विज्ञान विषयक लेखक को सबसे बड़ा सहारा जब मिला जब कि गुरुकुल कांगडी (1900) ने हिन्दी भाषा को सभी विषयों की शिक्षा के लिए अनिवार्य कर दिया और तदनुरूप 17 पुस्तकों का प्रणयन भी किया। यहाँ इस बात को ज्ञात करना बड़ा ही रोचक होगा जब भारतेंदु और द्विवेदी युगीन लेखकों और संपादकों ने हिंदी में पर्याप्त विज्ञान

विषयक लेखन भी किया। "पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्यकारों ने विज्ञान विषयक विषयों पर भी अत्यंत सहज ढंग से लिखा और इस क्रम में अनेकानेक विज्ञान विषयक शब्दावली और अभिव्यक्तियों का निर्माण किया"।[106]

"चन्द्रशेखर वेंकटरमन या सर सीवी रमन ऐसे प्रख्यात भारतीय विज्ञान विषयक थे जिन्होंने कई दशक पहले की गई आसाधारण विज्ञान विषयक खोज, के लिए नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया था एवं आज भी वह खोज उतनी ही प्रासंगिक है वैज्ञानिकों को बार-बार याद करना जरूरी हो जाता है"।[107]

हिन्दी में विज्ञान लेखन-

हिंदी साहित्य की परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास'(1929) को सबसे ऊपर माना गया है। आचार्य शुक्ल जी ने इस पुस्तक के प्रारंभ में अपने विचार इस तरह प्रस्तुत किए हैं - "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां के लोगों के दृष्टिकोण का एक संचित प्रतिबिंब है, लेकिन यह निश्चित है कि लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य की प्रकृति भी बदलती है। साहित्य के इतिहास को दिखाना कहा जाता है। शुरू से अंत तक इन मन-प्रवाह (पैटर्न) की परंपरा को बनाए रखते हुए भित्ति परंपरा के साथ परंपरा का सामंजस्य"।

यह विचार विज्ञान-लेखन के संदर्भ में पूरी तरह से सच नहीं है। विज्ञान लेखन उद्देश्य है कि आम लोगों की समझ को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक हित को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उन लेखनो के कुछ अंश केवल साहित्यिक स्तर पर लिए जा सकते हैं। यहां तक कि उच्च गुणवत्ता वाले साहित्यकार अपनी निष्पक्षता के साथ डगमगाते हैं।

विज्ञान लेखन मूल रूप से दो प्रकार का होता है –

1 सैद्धांतिक लेखन

2 लोकप्रिय विज्ञान लेखन

सैद्धांतिक लेखन में प्रायः बुनियादी विज्ञान विषयक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व, शोध पत्र लिखना और पाठ्य पुस्तकें लिखना आदि शामिल शामिल किये जाते हैं। इसका लेखन एक विशिष्ट वर्ग या छात्रों के लिए है और इसका क्षेत्र तय है।

लोकप्रिय विज्ञान लेखन पाठ्यपुस्तक लेखन से पूरी तरह अलग है। विज्ञान का यह लेखन दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है।

“पहला, विज्ञान विषयक तथ्यों, खोजों और विज्ञान द्वारा प्रदान किए गए उपयोगी संसाधनों के बारे में जनता को सूचित करना है और दूसरा आम लोगों में विज्ञान विषयक दृष्टिकोण को विकसित करना।"

डॉ० शिवगोपाल मिश्र कहते हैं, "लोकप्रिय विज्ञान लेखन' के लिए, एक विषय का चयन करना पड़ता है, जो पाठ्य-पुस्तकों में नहीं मिलता है, लेकिन जिसके बारे में जानकारी आवश्यक है। यह एक पूरक सामग्री के रूप में काम करता है।[108]

लोकप्रिय विज्ञान के शास्त्रीय विज्ञान का उल्लेख करते हुए, डॉ. मिश्र कहते हैं- विज्ञान के बारीक बिंदुओं के बारे में लोगों को शिक्षित करने के लिए, यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे विषयों का चयन प्रकृति में या सभ्य समाज में हमारे चारों ओर से किया जाना चाहिए और उनके बारे में ज्ञात तथ्यों के आधार पर पुस्तकें बनाई जानी चाहिए जो पाठक को मंत्रमुग्ध कर सकें। इस तरह से लोकप्रिय विषयों पर विज्ञान लिखना विज्ञान लेखन है। इसे विज्ञान का लोकप्रियीकरण कहा जाता है।

विभिन्न विषयों की विविधता के साथ लोक विज्ञान में शैली की विविधता भी पाई जाती है। प्रस्तुति की रोचकता इसका मुख्य धर्म है।

जहाँ एक ओर सैद्धांतिक विज्ञान लेखन हिंदी भाषा में विज्ञान विषयक लेखन की एक अमूल्य निधि है वहीं लोकप्रिय विज्ञान-लेखन साहित्य-वर्धन की एक नितांत आवश्यकता है।

विज्ञान लेखन को प्रभावित करने वाले यदि महत्त्वपूर्ण कारको की परीक्षा की जाये तो कुछ प्रमुख बिंदु इस प्रकार होंगे

• चरित्र विषय और उद्देश्य।

• लेखन किस समूह के लिए किया जा रहा है - पाठकों का स्तर।

• चित्रमय शैली।

• रचना की मौलिकता और प्रयोज्यता।

• भाषा, शैली, परिभाषित शब्दावली और आम पाठक के मन के अनुसार इसका उपयोग।

इसलिए विज्ञान लेखन के इतिहास पर एक अलग तरीके से विचार करना होगा। साहित्य में विज्ञान लेखन के लिए आवश्यक सामग्री के रूप में कदाचित इन अवलंबो का सहारा लिया जा सकता है।

• विज्ञान लेखकों के प्रकाशित कार्य

• विज्ञान-लेखकों और उनके कार्यों का परिचय प्रस्तुत करता है

• हिंदी साहित्य के इतिहास से संबंधित ग्रंथ।

• पत्र - पत्रिकाएँ - क्योंकि विज्ञान लेखन अक्सर उनमें भिन्न होता है।

• कुछ आंतरिक और बाहरी साक्ष्य।

किसी भी ज्ञान विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में भाषा, लेखन शैली और लेखन विधा का योगदान महत्त्वपूण होता है। शायद इसीलिए विज्ञान लेखन के कई अन्य रूप विकसित हुए हैं, जैसे कि कथा, कहानी, कार्टून, कथा, कविता, नाटक, लेख, फीचर, समाचार-कहानी आदि।

वर्तमान युग में विज्ञान के ज्ञान को आम लोगों तक फैलाने का काम कितना महत्त्वपूण है, इसे दोहराने की जरूरत नहीं है। विज्ञान का सरल ज्ञान लोगों को विदेशी भाषा के माध्यम से पारित नहीं किया जा सकता है और न ही विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इस संदर्भ में, भारतेंदु हरिश्चंद की निम्नलिखित पंक्तियाँ सार्थक हैं-

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

आज, शोधकर्ता ऐसे तथ्यों और शब्दों का पता लगा रहे हैं, जिन्हें आम लोगों की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है, जैसे कि क्वांटम सिद्धांत, कण भौतिकी या वनस्पति विज्ञान में पौधों के वर्गीकरण से संबंधित कुलों के नाम। ऐसे शब्दों को आज हिंदी में किसी मानक शब्दवाली द्वारा प्रतिस्थापित नहीं जा सकता है। शब्दवाली की समस्या विज्ञान लेखन के दौरान आने वाली समस्याओं में से एक मुख्य समस्या है। आम जन-मानस में व्याप्त बहुत सारे शब्द ऐसे है जिन्हें यदि हिंदी में अनूदित किया जाये तो संभवतः उन्हें समझ पाना दुरूह होगा। जैसे कि हार्मोन, विटामिन, एक्स-रे, अल्ट्रासाउंड, कंप्यूटर, इंटरनेट, जीनोम आदि।

विज्ञान अपनी स्थूल सामग्रियों और सूक्ष्म पूंजी तथा मानव-उपयोग के ज्ञान को लेखकों और साथ ही वैज्ञानिकों के लिए खुले तौर पर साझा करने के लिए तैयार है। साहित्यकार भी वैज्ञानिकों को उसी तरह आत्मसात करने के लिए तैयार हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विज्ञान और साहित्य के पक्षों का सीमांकन किया है - "विज्ञान वास्तव में एक वर्जित वस्तु है - उसका धर्म सत्य के बारे में अप्रिय जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा की गति ने यहां के साहित्य को भी घेर लिया है। लेकिन साहित्य की विशेषता उसका पक्षपातर्पूण धर्म हैय साहित्य की आवाज स्वयंवर है। ‘‘विज्ञान से रहित, न तो कुतुहल साहित्य की अलौकिक प्रकृति को पराजित करने के लिए है, न ही लेखक को अलग करने के लिए। यह जरूर है कि दोनों का मिजाज अलग-अलग है लेकिन एक-दूसरे से अलग है और उन्हें इंसानों की हैसियत को बढ़ाने के लिए एक-एक कदम आगे बढ़ाना होगा और जुड़ना होगा।[109]

जैसा कि सर्वविदित है, 16 वी शताब्दी से ही विज्ञान, धर्म और कला के साथ-साथ एक प्रतिस्पार्द्धात्मक शक्ति के रूप में विकसित हो रहा था। इसने 18 वी शताब्दी के मध्य में प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के मन में विशेषाधिकार की इच्छा जगाई। इसने अपने प्रयोगों के माध्यम से भौतिक दुनिया में अपनी उपस्थिति दिखाई।

साहित्य की भाषा पर विज्ञान का महत्त्वपूण प्रभाव है, जिससे यह स्पष्ट, सरल और संक्षिप्त हो जाता है। भाषा की इस सरलता और सहजता से हर कोई खुश है।

"इस तरह, साहित्य में विज्ञान विषयकता के समावेश और साहित्य के विकास ने विज्ञान विषयक प्रौद्योगिकी की प्रगति और साहित्य में इसकी शुरुआत को संभव बनाया है। माधुर्य और प्रफुल्लता के संकेत काफी हद तक छोड़े जा रहे हैं। इस प्रकार विज्ञान का साहित्यिक गतिविधियों पर महत्त्वपूण प्रभाव पड़ता है"।[110]

हिंदी में, ये संगठन, जो विज्ञान लेखन के लिए सरणियाँ प्रदान करते हैं और प्रारंभिक पथ प्रदान करते हैं, कदाचित किसी भी हिंदी लेखक के लिए अपरिचित नहीं हैं।

इस विकास यात्रा का प्रारम्भ गुलामी के दिनों से होता है। इसलिए, कलकत्ता, मदरसा और बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना अंग्रेजों ने क्रमशः इस्लामिक विषयों और हिंदी साहित्य के अध्ययन के उद्देश्य से किया था, हिंदी भाषा के प्रति समझ विकसित करने का काम किया इन संस्थाओं ने मूल प्रभावी रूप से किया।

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ यह काम और भी आसान होता चला गया। फोर्ट विलियम कॉलेज ने अन्य विषयों के बीच विज्ञान, अर्थशास्त्र और गणित की शुरुआत की। आवश्यकता के अनुसार, इस संस्था ने पाठ्य पुस्तकों के लिए विज्ञान पुस्तकें भी लिखीं। मिशनरियों ने स्कूल खोले और धार्मिक प्रचार के उद्देश्य से पाठ्य पुस्तकें लिखीं। ये विज्ञान की प्रारंभिक पुस्तकें थीं। "अलेक्जेंडर डफ ने कलकत्ता में उच्च शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से एक कॉलेज की स्थापना की। इसने भाषाई लेखकों के लिए ज्ञान के संसाधन दिए। श्रीरामपुर मिशनरियों, कलकत्ता बुक सोसाइटी और आगरा बुक सोसाइटी द्वारा इसे अंग्रेजी से लिंगुआ फ्रैंका में अनुवादित और प्रकाशित करने का अर्थ था"।[111]

विज्ञान के हिंदी स्तर के अध्ययन की शुरुआत लेफ्टिनेंट गवर्नर थॉमसन के प्रयासों से हुई और उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी या अन्य भाषाओं की पुस्तकों का हिंदी में या मूल लेखन के लिए अनुवाद करने की घोषणा की। यह एक बड़ा कदम था।

काशीपत्रिका, भारत मित्र, हिंदी प्रदीप, आनंद कादंबिनी में साहित्यिक लेखों के साथ कुछ विज्ञान संबंधी साहित्य भी थे, लेकिन इसे भारतीय प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित 'सरस्वती द्वारा पूर्ण आयाम दिया गया था।

इलाहाबाद में स्थापित हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग और विज्ञान परिषद ने विज्ञान लेखन को नया बल और उचित समर्थन प्रदान किया।

वास्तव में, हिंदी में विज्ञान को चिन्हित करना एक नियमित और श्रमसाध्य कार्य है, प्रसिद्ध हिंदी विज्ञान पत्रिका अविष्कार एक पुराने संपादक डी.एन. भटनागर के अनुसार, हिंदी विज्ञान लेखन एक तप है। हिंदी के लेखक

विज्ञान-लेखन के मार्ग में विद्यमान कई बाधाओं के बावजूद, अटूट दृढ़ संकल्प के साथ लगे रहे। विज्ञान के लेख स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित सभी स्तर के समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहे। "विज्ञान, विज्ञान प्रगति नवाचार जैसी शुद्ध पत्रिकाओं में, विज्ञान के लिए दृश्य तय हो गया है। मास मीडिया विज्ञान विषयक कार्यक्रमों को भी प्रमुखता देने लगा"।[112]

अब तक हिंदी में विज्ञान लेखन को संवैधानिक दबाव के कारण सतही रूप दिया गया है। इसलिए, यह आवश्यक है कि समर्पित सरकारी संस्थानों में सभी स्तरों पर निष्पक्ष तरीके से हिंदी में विज्ञान लेखन को सक्रिय मान्यता दी गई है। हिंदी को थोपा नहीं जाना चाहिए बल्कि प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ऐसा माहौल बनाया जाना चाहिए कि हिंदी में विज्ञान लेखन रोचक, लोकप्रिय, लाभप्रद और प्रतिस्पर्धात्मक होना चाहिए।[113]

हिन्दी साहित्य में विज्ञान लेखन में आई चुनौतियाँ –

शब्दावली की समस्या -

• अंग्रेजी भाषा की अधिकता होने के कारण विज्ञान तथा तकनीकी पर आधारित पुस्तक की भाषा अंग्रेजी होती है।

• हिन्दी के विज्ञान लेखकों का विषय कुछ भी हो , उन्हें लेखन कार्य के लिए सन्दर्भ ग्रन्थों की आवश्यकता होती है।

• विज्ञान लेखन का सही तथा वास्तविक रूपान्तर तभी संभव है जब हिन्दी विज्ञान-लेखक की पृष्ठभूमि विज्ञान विषयक हो।

• अंग्रेजी और हिन्दी दोनों ही भाषाओं पर उसका नियंत्रण एक समान हो

ताकि वह विज्ञान विषयक तथ्यों को सही तरह से ज्ञात कर सके, आत्मसात कर सके और भारतीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार उनको लेखन मे ढाल सके।

• हिन्दी में विज्ञान लेखन का कार्य करते समय सबसे बड़ी समस्या वैज्ञानिकों को तब आती है जब अंग्रेजी भाषा में उपलबध विज्ञान विषयक तथा तकनीकी शब्दों के समतुल्य हिन्दी शब्दों का न मिलना।

• "लोकप्रिय और रुचिकर विज्ञान का लेखक अपने लेखन में अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग ज्यों का त्यों कर लेता है, परन्तु इसमें सबसे विशेष कठिनाई तब आती है जब भाषा की एकरूपता समाप्त हो जाती है। अतः आवश्यकता है कि शब्दावली में समरुपता लाकर उसका प्रयोग सनिश्चित किया जाये। इस दिशा में, विज्ञान विषयक और तकनीकी शब्दावली आयोग का योगदान भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं"| [114]

विज्ञान लेखन का आधार -

विज्ञान लेखन की कसौटी इसका मजबूत सैद्धांतिक आधार है। चाहे वह विज्ञान कथा हो या कल्पना, इसके मूल में एक विज्ञान विषयक सिद्धांत या एक परिकल्पना होनी चाहिए, जिसका परीक्षण किया गया विज्ञान विषयक सत्य का आधार सत्य हो। उनकी बौद्धिकता और कल्पना की बहआयामी उडान के बावजूद, सापेक्षता का सिद्धांत इतना गहरा है कि इसे सीधे बच्चों के साहित्य में ढालना आसान नहीं है। लेकिन आइंस्टीन के शोध से उत्पन्न एक अजीब कल्पना ने बच्चों के साहित्य की समृद्धि का द्वार खोल दिया।

आइंस्टीन ने साबित किया कि समय यात्रा का भी आनंद लेता है। इसका वेग प्रकाश के वेग के बराबर भी है। अब तक यह माना जाता था कि समय को वापस चलाया जा सकता है। विज्ञान साहित्य - लेखन के लिए गहन विज्ञान - समझ की आवश्यकता होती है। उन्नत विज्ञान ज्ञान के साथ भी, विज्ञान के कामचला ज्ञान को बनाए रखा जा सकता है। विज्ञान विषयक रूप से संपन्न लेखक अपने परिवेश से हैं, ऐसे कई विषयों को खोज सकते हैं जो विज्ञान के प्रति बच्चे की रुचि और उत्साह बढ़ाने में मदद कर सकते हैं। तदनुसार, विज्ञान साहित्य एक साहित्य है जो एक विज्ञान विषयक सिद्धांत की पुष्टि करता है या विज्ञान साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो एक विज्ञान विषयक सिद्धांत की पुष्टि करता है या जो एक विज्ञान विषयक आविष्कार के दृष्टिकोण से लिखा जाता है। अगर हम विज्ञान विषयक लेखन के कुछ संतुलन का उल्लेख करते हैं, जो विज्ञान लेखन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, इस प्रकार है-

विज्ञान विषयक साहित्य की भाषा आसान होनी चाहिए।

• इसमें अनावश्यक विवरण नहीं होना चाहिए।

• इसमें, मूल सिद्धासंतो की सही और सटीक व्याख्या की जानी चाहिए।

• इसमें भाषा स्पष्टता और गरिमा बनाए रखी जानी चाहिए।

• इसमें विषय को पर्याप्त उदाहरणों द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए।

चर्चा –

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि हिंदी विज्ञान-लेखन और खड़ी बोली हिंदी गद्य का विकास समानांतर रूप से जारी रहा। 18वी शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर 20वी सदी के दूसरे दशक तक, शैक्षणिक और भाषा संबंधी गिरावट और प्रसार की दिशा में किए गए प्रयासों के मुख्य बिंदु इस प्रकार है खड़ी हिंदी भाषा में गद्य लेखन अपने आधुनिक रूप में आने से पहले, हिंदुस्तानी, हिंदू भाषा जैसे कई चरणों को पार करते हुए, खुद को व्यक्त करने में सक्षम होने लगा। देवनागरी लिपि अपनी विज्ञान विषयकता और ध्वनि विशेषता के कारण रोमन लिपि को हटाने में भी पूर्ण सक्षम थी। ईसाई मिशनरियों ने गद्य-लेखन और हिंदी में इसके प्रचार में महत्त्वपूण योगदान दिया। अपनी व्यावसायिक नीति के तहत शासित प्रांतों का पूरा लाभ उठाने के इरादे से, उन्होंने यूरोपीय ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा के केंद्र स्थापित किए। श्रीरामपर मिशनरी, फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता बक सोसाइटी और आगरा बुक सोसायटीज ने विभिन्न विषयों पर क्षेत्रीय भाषाओं और हिंदी को प्राथमिकता देते हुए कई उपयोगी साहित्य और विज्ञान पुस्तकें प्रकाशित की। चार्ल्स वुड की शिक्षा योजना के परिणामस्वरूप, कई गांव के स्कूल स्थापित किए गए और क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं को उनमें शिक्षा का माध्यम बनाया गया। हिंदी गद्य को उनसे प्रोत्साहन मिला और हिंदी में कई पाठ्य पुस्तकें लिखी गई। शिक्षा प्रणाली बदल गई और भारत में आधुनिक विज्ञान के लिए नई शिक्षा प्रणाली खुल गई। स्वार्थगत सोच के कारण शिक्षा प्रणाली में बदलाव के बिना समुचित विकास संभव नहीं था। यह बदलाव विज्ञान विषयक सोच का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आवश्यक था। चार्ल्स वुड के सुझावों के अनुसार, भारत में सहकारी विश्वविद्यालय बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, लाहौर और इलाहाबाद में स्थापित किए गए थे और इन सभी की शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से की गई थी। लेफ्टिनेंट गवर्नर थॉमसन ने हिंदी में पाठ्य पुस्तकों के लिए मूल ग्रंथ लिखने या संस्कृत, अंग्रेजी आदि से हिंदी में अनुवाद के लिए पुरस्कार की घोषणा की। हिंदी भाषी क्षेत्रों में, गद्य को हिंदी में एक निश्चित रूप और प्रचार मिला। हिंदी में विज्ञान पढ़ाना और लिखना और उच्च कक्षाओं में भी हिंदी के माध्यम से पढ़ाने

के लिए पाठ्य पुस्तकों के लेखन और प्रकाशन में गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के योगदान और कार्य प्रारंभिक चरण का एक उत्कृष्ट और प्रेरक उदाहरण है।

संदर्भ सूची

101. मनोज कुमार पटौरिया, हिंदी विज्ञान पत्रकारिता, पृ. 27

102. आचार्य प्रसन्न कुमार, डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, पृ.-102

103. डी. एम. बोस, एस. एन. सेन, और सुब्बा रायप्पा, ए कंसाइस हिस्ट्री ओ एफ साइंस इन इंडिया पृ.54

104. डी. एम. बोस, एस. एन. सेन, और सुब्बा रायप्पा, ए कंसाइस हिस्ट्री ओ एफ साइंस इन इंडिया पृ.54

105. सनथ कुमार चटर्जी, द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया पंचम खण्ड, पृ. 78

106. देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय, स्टडीज इन द हिस्ट्री ऑफ साइंस इन इंडिया (खंड-2), पृ.64

107. डब्ल्यू. सी. डैम्पियर, विज्ञान का इतिहास और दर्शन तथा धर्म के साथ इसके संबंध, पृ.82

108. आर. जे. फोर्ब्स, प्राचीन कालीन धातुकर्म, पृ.57

109. जी. एन. मुखोपाध्याय, हिस्ट्री ऑफ इंडियन मेडिसिन (खंड-3), पृ. 43

110. ओ. पी. जग्गी, मध्यकालीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पृ.12

111. रेने टैटन, (अनुवाद) विज्ञान का इतिहासः प्राचीन मध्यकालीन विज्ञान की शुरुआत से 1450 तक, पृ.-24

112. लेफ्टिनेंट, कर्नल डी. जी क्रॉफोर्ड, ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन मेडिकल सर्विसेज, खण्ड-5, पृ.68

113. बर्किल, भारत में वनस्पति विज्ञान के इतिहास पर अध्याय, पृ.65

114. लेफ्टिनेंट, कर्नल डी. जी क्रॉफोर्ड, ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन मेडिकल सर्विसेज, खण्ड-5, पृ.57

उपसंहार

उपसंहार

अंग्रेजी राज में जिन भारतीयों का पढ़ाई-लिखाई से वास्ता रहा है उनमें से अधिकांश लोग किसी न किसी रूप में ब्रिटिश शासन से जुड़े हुए थे। यह जितना स्वाभाविक था उतना ही आवश्यक भी था, अन्यथा आज भारत में शिक्षा की क्या स्थिति होती इसका हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। उन्नीसवी सदी तक आते-आते ब्रिटिश राजसत्ता यह जान चुकी थी कि उन्हें यदि कुछ और वर्षों तक अभी भारत पर राज करना है तो यहां के भद्र पुरुषों, जो अंग्रेजी शिक्षा से लैस थे. को शासन में शामिल करना चाहिए जिससे वे हमारी बातों / नीतियों को आम जनता तक उनकी ही भाषा में पहुंचा सकें। इसके लिए सबसे पहले तो उन्होंने भारतीय ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों को आदर-सत्कार या कह लें अहमियत देना सीखा होगा क्योंकि यही एक मात्र तरीका था जिससे उससमय के बुद्धिजीवियों / समाजसुधारकों को वे तुष्ट करते हए अपनी बात कर सकते थे अन्यथा हम सभी जानते हैं कि अंग्रेज यहां आये और सबसे पहले उन्होंने भारत को मदारियों और भिखारियों के देश के रूप में प्रक्षिप्त करने का प्रयास किया और दोनों ही विशेषणों मदारियों और भिखारियों में ज्ञान-विज्ञान की हीनता की बात को गहरे अर्थों में शामिल किया गया। यही वो हथियार था जिसकी मदद से सफेद चमड़ी वालों ने भारतीयों के मनोबल दबाये रखा।

अपने शासन को जायज ठहराने के लिए उन्हें (अंग्रेज़ों को) सबसे पहले पूर्व-औपनिवेशिक काल के कई संरचनागत विधाओं यथा ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों आदि को नाजायज और अनर्गल ठहराने के छल करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसके लिए अंग्रेजों ने भारतीयों को अवैज्ञानिक सोचसमझ वाले, अन्धविश्वासी तथा परिवर्तन-विमुख घोषित किया और इनकी पहचान में 'मदारियों और भिखारियों वाले जुमले गढ़े गये। इन सबका प्रभाव

यह हुआ कि भारतीयों के मन में अपने ही ज्ञान-विज्ञान के प्रति संशयग्रस्त हीनता का भाव आता चला गया और वे अपनी ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों से दूर होते चले गये, परिणाम यह हुआ कि अपनी भाषा (मातृ-भाषा) में ज्ञानविज्ञान के सृजन की नई संभावनाओं पर पहरा लग गया। मैकौले की शिक्षा नीति (1833 ई.) ने इन सारी परिस्थितियों में उत्प्रेरक का काम किया। निजभाषा में ज्ञान-विज्ञान के विमर्श को धक्का पहुँचने से प्रत्यक्ष रूप से निजभाषा के विकास को धक्का पहुंचा।

और फिर जैसा कि हमेशा ही होता है कि समस्याएं अपने साथ अपना समाधान भी लेकर आती है, भारतीय भाषाओं में नये ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों 5 विकास की आवश्यकता स्वयं अंग्रेजों को ही महसूस होने लगी क्योंकि अब ये भारतीयों की अपनी हर प्रकार की अस्मिता की रक्षा चाहे भाषाई हो, चाहे सांस्कृतिक हो या राजनैतिक - सामाजिक - आर्थिक कुछ भी के लिये तड़प और संघर्ष को और अधिक उपेक्षित नहीं कर सकते थे। मैकॉले शिक्षा नीति ने पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान सामाजिक मूल्यों लोकतंत्रात्मक शासन पद्धतियों, मानवाधिकारों के प्रति सजगता और शोषण के प्रति संघर्ष के नये पाठ भारतीयों तक पहुँचाने में अनचाहे और अनजाने रूप से भरपूर मदद की व्यापक स्तर पर भारतीय नवजागरण का स्वर मुखरित हो उठा। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में भी उन्नीसवी सदी के ढलते - ढलते इसकी गूंज चहुँदिश फैलने लगी। हिन्दीभाषा का स्वरूप नये ज्ञान-विज्ञान के संगठन के लिए तैयार होने लगा। हिन्दी गद्य का विकास इस अर्थ में एक क्रांतिकारी घटना मानी जाती है। भारतेंदु उनके सहयोगी और कुछ अन्य प्रबुद्ध जन पूरे परिश्रम और दूरदर्शिता के साथ इस दिशा में सक्रिय हो गये।

भारतेंदु द्वारा दिया गया "निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल" के मूल मंत्र को आगे के साहित्य के सिपाहियों ने गाँठ बाँध लिया और पूरी कर्मठता के साथ साहित्य की ज्ञान राशि के निर्माण में सक्रिय हो उठे। इस पूरे क्रियाकलाप के सूत्रधार के रूप में व्यक्ति के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों तथा संस्था के रूप में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा पत्रिका के रूप में 'सरस्वती' का नाम बिना किसी हिचक के तथा पूरे सम्मान के साथ हमेशा लिया जाता रहेगा।

द्विवेदीयुग में हिन्दी की ज्ञान राशि का समुचित विस्तार हुआ। न सिर्फ विस्तार हुआ बल्कि इस विस्तार का जन साधारण में खूब प्रचार-प्रसार भी हुआ। इस सन्दर्भ में सरस्वती की भूमिका तथा स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के योगदानों की एक संक्षिप्त चर्चा हम दुसरे अध्याय में कर आये हैं। और अन्यत्र भी 'सरस्वती' तथा द्विवेदी जी पर इस विषय पर अनेक शोधार्थियों द्वारा किये गये शोध इस पर विधिवत् प्रकाश डालते हैं। इस प्रसंग में मैं जिस एक शोध का नाम लेना चाहूँगा वह श्री हर प्रकाश गौड़ द्वारा किया गया शोध 'सरस्वती' और राष्ट्रीय जागरण' (1981 में पी.एच.डी. की उपाधि हेतु भारतीय भाषा केन्द्र, जे.एन.यू. में जमा) तथा सरस्वती और राष्ट्रीय आन्दोलन' (1978 में एम.फिल. की उपाधि हेतु, भारतीय भाषा केन्द्र, जे.एन.यू. में जमा) है।

द्विवेदीयुग में हिन्दीसाहित्य में विज्ञान सम्बन्धी विवेचन का जो विप्ल भण्डार मिलता है, वह महावीर प्रसार द्विवेदी की साहित्य सम्बन्धी अवधारणा, जिसमें उनका मानना है, साहित्य-ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम है, का ही एक तरह से प्रतिरूपण है। ज्ञान राशि के संचित कोश का दायरा इतना बड़ा है कि उसमें विज्ञान समेत ज्ञान की अनेक शाखाओं का समायोजन हो सकता है और हुआ भी। द्विवेदी युगीन साहित्य इसी वजह से केवल कविता, कहानी और उपन्यास तक नहीं सिमटा रहा अनुभव करने की बात है कि किस तरह द्विवेदीयुग के कवियों / कहानीकारों ने विज्ञान जैसे लगभग विजातीय (कम से कम उनके लिये) विषय पर सप्रयास अपनी पकड़ बनाते हुए उसे भी हिन्दी साहित्य के दायरे में घसीट कर न सिर्फ हिन्दी का बल्कि हिन्दी वालों का भी उद्धार करना चाहा। जबकि आगे के युग में ऐसे भी सहित्यकार हुए हैं जो वैज्ञानिक पृष्ठभूमि से होते हुए भी हिन्दी साहित्य में अपनी कलम से विज्ञान लेखन का एक उदाहरण भी प्रस्तुत ना कर सके।

प्रयोगवाद में प्रयोग शब्द से जिस वैज्ञानिकता की सुगन्ध आनी चाहिए, कहना चाहूँगा इस संदर्भ में वह अनुपस्थित है। अज्ञेय इस युग के प्रमुख साहित्यकार रहे और वैज्ञानिक पृष्ठभूमि से भी रहे किन्तु कोई बता दे हिन्दी में उन्होंने विज्ञान, चाहे सामाजिक विज्ञान या प्राकृतिक विज्ञान, पर कितना और क्या लिखा?

आज के हिन्दी साहित्य सेवियों से मैं निवेदनपूर्वक यह कहना चाहूँगा कि साहित्य की द्विवेदी युगीन अवधारणा जिसमें उसे ज्ञान-राशि का संचित कोश माना गया, को साहित्य के व्यापक हित के लिए अपने चित्त में उतारने का प्रयास करें और इस प्रसंग में विशेष तौर पर हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के संदर्भ में इस शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट में तथा अन्यत्र भी जो भी पुस्तकें | पत्रिकायें / लेख आदि समाग्रियों की जानकारी उपलब्ध कराई जा सकी है, के संग्रह और पुनर्प्रकाशन की दिशा में ठोस कदम बढ़ाने का प्रयास करें नहीं तो कुछ मूढमतियों द्वारा पूर्वग्रह पूर्ण, बेबुनियादी तौर पर आँख मूंदकर लगाये गये आरोप कि हिन्दी में विज्ञान पर कहाँ-कुछ लिखा गया? हिन्दी में वैज्ञानिकता के भार वहन के लिए समर्थ भाषा ही नहीं है, या फिर हिन्दी नवजागरण के साहित्यकार केवल वेदों, उपनिषदों का गान ही कर रहे थे आदि का प्रमाण रहते हुए भी, खण्डन करना दुष्कर होगा।

मेरे इस शोध का उद्देश्य भी वस्तुतः यही है कि विज्ञान से जुड़ी सामग्रियों को हिन्दी के पुरातन भण्डार से खोजकर निकाला जाये और आज के हिन्दी सेवियों के सम्मुख रखा जाये जिससे हमें हिन्दी में विज्ञान लेखन की

परम्परा, विकास और संक्षिप्त इतिहास की एक झलक मिल सके और अंग्रेजी वालों तथा कई हिन्दी वालों द्वारा हिन्दी के जन्मजात पिछड़ेपन के आरोप की असत्यता और निरर्थकता खुलकर सामने आ सके।

मेरा ऐसा मानना है कि कदाचित मेरे इस शोध प्रबन्ध में हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन सम्बन्धी सूचनाओं विशेषकर हिन्दीनवजागरण काल (भारतेंदु युग) में विज्ञान लेखन सम्बन्धी खोजकर एकत्रित की गई जानकारियों के माध्यम से हिन्दीनवजागरण के सम्बन्ध में कुछ दकियानूसी दृष्टिकोणों की पुनर्परीक्षा के स्रोत खुलेंगे।

आगे एक प्रश्न के साथ मैं अपनी बात फिलहाल समाप्त करना चाहता हूँ- भारतेंदु युग में ज्ञान-विज्ञान के साहित्य निर्माण के प्रयासों के मद्देनजर क्या अभी भी हिन्दी नवजागरण जैसी किसी महत्त्वपूर्ण घटना के अस्तित्व को नकारने या फिर हिचकिचाते हुए स्वीकार करके उसे केवल हिंदू नवजागरण मानने का अविवेकपूर्ण हठ और पूर्वग्रह उचित ठहराया जाता रहेगा? यह सब देखकर -

प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने इस संदर्भ में ऐसे बुद्धिजीवियों के सम्मान में दो टूक शब्दों में बड़ी मार्के की टिप्पणी की है। वे लिखते हैं -

"शिक्षित समाज में अपने ज्ञान पर भी गर्व करना अच्छा नहीं समझा जाता है, लेकिन आजकल हिन्दी में ऐसे बुद्धिजीवी हैं जो अपने अज्ञान पर भी गर्व करते दिखाई देते हैं।"[115]

संदर्भ सूची

115. डॉ. मैनेजर पाण्डेय- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और विकासवाद (लेख), 'नया मानदण्ड' अंक 31 (जनवरी-मार्च 2004), पृष्ठ 39,

परिशिष्ट-एक

भारतेन्दु युग में वैज्ञानिक लेखों/पुस्तकों की सूची

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

भारतेन्दु युग में वैज्ञानिक लेखों/पुस्तकों की सूची (लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित) स्रोत: नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्राप्त आर्यभाषा पुस्तकालय के सूचीपत्र का प्रथम खण्ड (संवत् 2001 विक्रमी)

भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें

मूल पुस्तक सूची में पृष्ठ 255-256 पर देखें, '530' के अन्तर्गत

क्र.सं	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम विषय	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	वंशीधर	सिद्ध पदार्थ विज्ञान अनुवादक मोहनलाल पंडित	सरकारी पुस्तकालय, आगरा	1853 ई.
2.	मथुरादास	प्रश्नोत्तर जड़तत्व विज्ञान 1 जड़तत्व विज्ञान 2	ग्रन्थकार, मिल्टरी वर्क्स, फिरोजपुर	1887 ई
3.	लक्ष्मी शंकर मिश्र	वायुचक्र विज्ञान भाग1 भाग 2	ग्रन्थकार बनारस कॉलेज	1874 ई
4.	विनायक राव	संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान विटप	चन्द्रप्रभा प्रेस बनारस	1884 ई
5.	वैलेन्टाइन	वायु सागर	ग्रन्थकार, जयपुर	1867 ई

रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा प्राणिशास्त्र पर पुस्तकें पुस्तकों के नाम के आगे उनके विषय संक्षेपाक्षरों में लिख दिये गये हैं। जैसे रसायन के लिए (रसा.), भूगर्भ शास्त्र के लिए (भूग) आदि. मूल सूची में पृष्ठ .256, 257, 258, 259 पर देखें '540' के अन्तर्गत

क्र.सं	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम (विषय)	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	वैलेंटाइन	सुलभ रसायन संक्षेप	-------	1856 ई.
2.	विश्वं भरनाथ शर्मा	रसायन संग्रह (रसा.)	ग्रन्थकार, 66/4 सस्ट्रीट कोलकाता	1896ई.
3.	हरि शरणानन्द वैद्य	रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर	आगरा स्कूल बुक सोसायटी	1847ई.
4.	गुरुदासजी	रत्नपरीक्षा (भूग)	वेंकेटेश्वर प्रेस,बम्बई	1896 ई (1953 वि.)
5.	एडवर्ड अनुवादकः विनायक राव	संसार की बाल्यावस्था (भूग.)	मेडिकल हाल प्रेस काशी	1882 ई
6.	अलेक्जेंडर जे. डब्लू	बॉटनी (वनस्पति)	मेयो कालेज, अजमेर	1880 ई
7.	योग्ध्यान मिश्र	पंचावली दूसरा अंक (प्राणि)	सारसुधा यंत्र कलकत्ता	1895 वि
8.	शेरिंग, एम. ए.	तन्तु प्रबन्ध (प्राणि)	आरफन प्रेस, मिर्जापुर	1864 ई
9.	सालिग राम वर्मा गोपाल स्वरूप भार्गव	वनपशुओं की चित्रकला मछली नामा तथा सर्पनामा	क्रि.लि.सो. इलाहाबाद	1895 ई
8	चन्दी सिंह	जिहवाग्र गणित भाग-3	मेथोडिस्ट पब्लिशिंग हाउस लखनऊ	1892ई.
9.	चक्रवर्ती यादव चन्द्र	अंकगणित भाग-1	पी.सी. द्वादश श्रेणी एंडको अलीगढ़	1990ई.
10	चक्रवर्ती वीरेश्वर	गणित गुरु भाग-1	चक्रवर्ती वीरेश्वर बी.एल. चक्रवर्ती 8,	1886 ई.

			डिस्कनसन लेन, कलकत्ता	
11	चिंतामणि	आरम्भ गणित	ग्रन्थकार फर्रुखाबाद	1889 ई.
12	त्रिलोकीनाथ सिंह	भुवनेश यन्त्र प्रकाश	ग्रन्थकार ओनरेरी मजिस्ट्रेट अयोध्या	1895 ई. (1952 वि.)
13.	पाली राम पाठक	पाटी गणित भाग-1	ग्रन्थकार नार्मल स्कूल मेरठ	1874 ई.
14.	बापूदेव शास्त्री	व्यक्त गणित भाग-1	मेडिकल हाल प्रेस, बनारस	1875 ई-
15.	मनराखन लाल	गणित रामायण प्रथम खण्ड	प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ	1900 ई.
16.	मुन्नीलाल	गणित विज्ञान	ग्रंथकार, मुर्रिस तहसीली सराय, मीरागंज	1888 ई.
17.	लक्ष्मीशंकर	गणित भाग 1 भाग 2	गोपीनाथ पाठक, बनारस लाईट प्रेस चन्द्रप्रभा प्रेस बनारस	1886ई. 1895 ई.
18.	वंशीधर पण्डित	दशलमव दीपिका	गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद	1881 ई.
19.	बृजमोहन लाल	गणित तरंगिणी भाग 1	ग्रन्थकार सीताराम, एटा	1886 ई.
20.	श्री नारायण	गणित गुरु प्रकाशिका	न्यू मेडिकल हाल, प्रेस, बनारस	1880 ई.
21.	साहब प्रसाद सिंह	गुरु साहब प्रसाद भाग 1	बिहार बंधु छापाखाना	1879ई.

			बांकीपुर	
22.	’’	,, भाग 2	खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर	1883 ई.
23.	हरिऔध अयोध्या	अंकगणित	------	1896 ई.
24.	हेरंबगिरि गोसाई	ब्याज की पुस्तक अरिथमेटिक भाग-5	महकमा सरिश्ते तालिम अवध	1872 ई.
25.	’’	लोवर प्राइमरी गणित	चन्द्रप्रभा प्रेस काशी	1883 ई.
26.	कुल	सुलभ बीजगणित	गवर्नमेन्ट प्रेस, प्रयाग	1875 ई.
	बिहारीलाल			
27.	बापूदेव शास्त्री	बीजगणित	मेडिकल हाल, प्रेस बनारस	1875 ई.
28.	भट्टाचार्य	बीजगणित	गवर्नमेन्ट प्रेस इलाहाबाद	1874 ई.
29.	मोहनलाल पंडित	हिन्दी बीजगणित-2	मेडिकल हाल प्रेस, बनारस	1859 ई.
30.	रामेश्वर प्रसाद	मिडिल क्लास बीजगणित	नागरी प्रेस, इलाहाबाद	1886 ई.
31.	आत्माराम	रेखागणित प्रश्न कौमुदी पहला अध्याय	झुन्नीलाल फर्रुखाबाद	1884 ई.

32.	उमराव सिंह	मसाहत मिडिल क्लास भाग 1	चिन्तामणि यंत्रालय फर्रुखाबाद	1890 ई.
33.	’’	भाग-3	’’	1876 ई.
34.	’’	रेखागणित सिद्धान्त चन्द्रोदय		1876 ई.
35.	कुंज बिहारीलाल	रेखागणित तत्व	सिकन्दर के छापाखाना आगरा	1854 ई.
36.	गूदर सहाय	रेखागणित अध्याय 5	खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर	1895 ई.
37.	दीनदयाल शुक्ल	रेखागणित तत्व दर्पण	गवर्नमेन्ट हाई स्कूल फर्रुखाबाद	1882 ई.
38.	पिंडीशंकर मोहनलाल पंडित	रेखागणित रेखागणित भाग 1	’’ मेडिकल हाल प्रेस काशी	1875 ई. 1858 ई.
39.	विनायक राव	व्यावहारिक रेखागणित	गवर्नमेंट सेन्ट्रल बुक डिपो, नागपुर	1888 ई.
40.	सदानन्द मिश्र	रेखागणित बुक 1	जीवानन्द विद्यासागर संस्कृत कालेज कलकत्ता	1874 ई.

परिशिष्ट-दो

द्विवेदी युग वैज्ञानिक लेखों की सूची 'सरस्वती' के सन्दर्भ में (लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

सन् 1900 ई. से लेकर 1920 ई. के बीच सरस्वती के विभिन्न अंकों में छपे लेखों की सूची।लेखों को प्रकाशन वर्ष के बढ़ते क्रम में सजाया गया है।कई लेख ऐसे भी मिले हैं जिनके लेखक का नाम नहीं दिया गया है,"लेखक का नाम' - शीर्षक के नीचे उनके आगे- का चिन्ह लगाया गया है।ऐसे लेख सम्पादक महोदय दवारा प्रणीत माने जा सकते हैं।

'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित वैज्ञानिक लेखों की सूची

क्र.स.	**लेख का शीर्षक**	**लेखक का नाम**	**माह/वर्ष (सन)**
1.	जन्तुओं की सृष्टि	-	फरवरी 1900 ई.
2.	फोटोग्राफी	-	फरवरी 1900 ई.
3.	जन्तुओं की सृष्टि	-	मार्च 1900 ई.
4.	-	-	अप्रैल 1900 ई.
5.	रेल	-	जून 1900 ई
6.	चन्द्रलोक की यात्रा	हंसपाल	जून 1900 ई.
7.	मानवी शरीर	अक्टूबर	1900 ई.
8.	भारतवर्ष की शिल्प विद्या	-	दिसम्बर 1900 ई.
9.	चन्द्रलोक	बाबू दुर्गा प्रसाद	मार्च 1901 ई.
10.	पलुए जंगली जानवर	कुमार योद्धासिंह मेहता	मई 1901ई.
11.	प्रलय	-	जून 1901 ई.
12.	मोती	ठाकर प्रसाद	अप्रैल 1902 ई.
13.	मोतियों का गुफा	गोपाल दास	मई-जून 1902 ई.
14.	हीरा	ठाकुर प्रसाद	नवम्बर 1902ई.
15.	ब्रह्माण्ड घाटी की जंगली जातिया	गोपाल दास	नवंबर 1901 ई.

16.	हीरा	ठाकुर प्रसाद	दिसम्बर 1902 ई.
17.	गरुड़	-	जनवरी 1903 ई.
18.	ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान	-	जनवरी 1903 ई
19.	अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार	-	फरवरी-मार्च 1903 ई.
20.	जल-चिकित्सा	-	मई 1903 ई.
21.	विमान और उड़ने	-	मई 1903 ई.
22.	आँख की फोटोग्राफी वाले मनुष्य	-	मई 1903 ई.
23.	जल चिकित्सा	-	जुलाई 1903 ई.
24.	मनुष्येतर जीवों का अन्तर्ज्ञान	-	-
25.	जलगामिनी पैरगाड़ी और तैरने का यंत्र	-	जुलाई 1903 ई.
26.	गर्भ-संचार	-	जुलाई 1903 ई.
27.	दीप्ति मण्डल और सूर्याभास	-	अगस्त 1903 ई.
28.	जल-चिकित्सा	-	अगस्त 1903 ई.
29.	गर्भ के आकार और	-	अगस्त 1903 ई.
30.	महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री सी. आई.ई	पं. गिरिजा द्विवेदी	सितम्बर 1903 ई
31.	पृथ्वी	-	सितम्बर 1903 ई.
32.	कर और सिरमयी मछली	-	अक्टूबर 1903 ई
33.	ध्वनि	-	नवंबर 1903 ई.

34.	मारकार लौट आने वाला अस्त्र	-	नवंबर 1903 ई.
35.	प्रसूति	-	नवंबर 1903 ई.
36.	कीट ग्राहक पौधा	-	दिसंबर 1903 ई.
37.	अतुल यंत्र	-	दिसंबर 1903 ई.
38.	रजो दर्शन	-	दिसंबर 1903 ई.
39.	शुक्र	-	फरवरी 1904ई.
40.	वराहमिहिर	पं. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	अप्रैल 1904 ई.
41.	रेडियम	-	अप्रैल 1904 ई.
42.	हमारी देह	-	अप्रैल 1904 ई.
43.	ज्वार भाटा	-	पं. महेन्दुलाल गर्ग
44.	कीड़े मकोड़े	पं. श्रीनारायण मिश्र	जून 1904 ई
45.	विद्युत	बाबू माणिक्यचंन्द्र जैन	जुलाई 1904 ई.
46.	मत्स्याहारी वनस्पति	बाबू यशोदानन्दन अखौरी	अगस्त 1904ई.
47.	सामुद्रिक सुरंग और समुद्रोदरगामिनी डोंग	-	अगस्त 1904 ई.
48.	पेट की आत्म-कहानी	पं. महन्दुलाल गर्ग	सितम्बर 1904 ई.
49.	किरण, रेडियम और परमाणु	बाबू जीतन सिंह	अक्टूबर 1904 ई.
50.	पौंधे का सांस लेना	पं. सूर्य नारायण दीक्षित	नवम्बर 1904 ई.
51.	नेपल्स की कासानोवा नाम औद्योगिकशाला	माधवराव सप्रे	दिसम्बर 1904 ई.
52.	विस्यूवियस	-	जनवरी 1905
53.आँख	पं. चन्द्रधर 'गुलेरी'	फरवरी 1905 ई.	
54.	तार द्वारा खबर भेजने का यंत्र	-	मार्च 1905 ई.

55.	कुण्डलिनी	-	मार्च 1905 ई.
56.	पौंधों में रस प्रवाह	-	मार्च 1905 ई.
57.	आँख	-	मार्च 1905 ई.
58.	सृष्टि विचार	-	मई 1905 ई.
59.	कस्तूरी मृग	-	मई 1905 ई.
60.	आकाश मण्डल	जीतन सिंह	मई 1905 ई.
61.	सवाई जयसिंह	-	मई 1905 ई.
62.	आँख	पं. सर्यनाराण दीक्षित	मई 1905 ई.
63.	भूकम्प	माणिक्य चन्द्र जैन	जून 1905 ई.
64.	आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण	-	जून 1905 ई.
65.	आँख	-	पं. चन्द्रधर 'गुलेरी'
66.	पौंधों की नींद	सूर्यनारायण दीक्षित	जुलाई 1905ई.
67.	फोटोग्राफी के उपयोग	रामदुलारी दुबे	जुलाई 1905ई.
68.	आँख	पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	अगस्त 1905 ई.
69.	व्योम विहार	-	सितम्बर 1905
70.	पत्थरका एक अद्भुत गोला	पं. देवी प्रसाद शुक्ल	सितम्बर 1905ई.
71.	हिम स्फटिक	सरयू नारायण त्रिपाठी	सितम्बर 1905 ई.
72.	प्रपञ्च	गवीश	सितम्बर 1905 ई.
73.	मार्तण्ड महिमा	-	अक्टूबर 1905 ई.
74.	सबसे बड़ा हीरा	-	अक्टूबर 1905 ई.
75.	वानस्पति संज्ञानता	सूर्य नारायण दीक्षित	अक्टूबर 1905 ई.
76.	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	शुकदेव प्रसाद तिवारी	अप्रैल 1906 ई.

77.	कृत्रिम हीरा	गिरजा दत्त वाजपेयी	मई 1906 ई.
78.	क्या जानवरी भी सोचते हैं?	-	मई 1906 ई.
79.	विवीसेक्शन	महेन्दुलाल गर्ग	मई 1906 ई.
80.	प्रकाश	लक्ष्मीधर वाजपेयी	जनवरी 1907 ई.
81.	वानस्पति विद्या में अद्भुत चमत्कार	गिरिजा दत्त वाजपेयी	जनवरी 1907 ई.
82.	ज्योतिष वेदांग	पर्यालोचक	फरवरी 1907 ई.
83.	सम चिकित्सा चमत्कार	राय देवी प्रसाद	मार्च 1907 ई.
84.	बिजली की रेलगाड़ी	सत्यदेव	अप्रैल 1907 ई.
85.	मानव जाति के उन्नायक रामजी लाल शर्मा सिद्धान्त	-	अप्रैल 1907 ई.
86.	प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता	सत्यदेव	मई 1907 ई.
87.	रायबहादुर	पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र रामनारायण सिंह	जून 1907 ई.
88.	रेडियम	सरयू नाराण त्रिपाठी	अगस्त 1907 ई.
89.	पराग मिश्रण पाचौली	गंगाशंकर	अगस्त 1907 ई.
90.	बिजली का बाजा	सूर्य नारायण दीक्षित	सितम्बर 1907ई.
91.	गेहूँ से रबड़	लक्ष्मण गोविन्द आठले	सितम्बर1907ई.
92.	आत्मा का अमरत्व	माधव राव सप्रे	नवम्बर 1907 ई.
93.	किरण-विकिरण	जगन्नाथ प्रसाद वर्मा	दिसम्बर 1907 ई.
94.	कृषि विज्ञान में अद्भुत आविष्कार	महावीर प्रसाद द्विवेदी	मार्च 1908 ई.

95.	मंगल के चित्र	महावीरप्रसाद द्विवेदी	मार्च1908 ई.
96.	शब्द और प्रकाश की चाल	राय देवी प्रसाद	अप्रैल 1908 ई.
97.	पौधे की बाढ़	पं. सूर्यनाराण दीक्षित	अप्रैल 1908 ई.
98.	सोमलता	-	मई 1908 ई.
99.	प्लेग-तत्व	महेन्दु लाल गर्ग	मई 1908 ई.
100.	हमारा वैद्यक शास्त्र	पं. लक्षमीधर वाजपेयी	मई 1908 ई.
101.	लाई केलविन	उदयनारायण वाजपेयी	मई 1908 ई.
102.	शरीर के भीतरी भागों का फोटो	पं. गिरजा दत्त वाजपेयी	जून 1908 ई.
103.	अध्यापक वसु के नूतन आविष्कार	उदयनारायण वाजपेयी	जून 1908 ई.
104.	प्राकृतिक दुर्घटना सूचक पौधा	महावीर प्रसाद द्विवेदी	जून 1908 ई.
105.	रोगोत्पाद जन्तु, विज्ञान	डॉ. मुरलीधर	सितम्बर 1908 ई.
106.	योगाभ्यास की शक्ति	लाला मुंशीलाल	सितम्बर 1908 ई.
107.	रक्त भ्रमण	पं. महेन्दु लाल गर्ग	अक्टूबर 1908 ई.
108.	बरबैंक साहब के नूतन आविष्कार	-	अक्टूबर 1908 ई.
109.	मलेरिया	पं. लल्ली प्रसाद पाण्डेय	नवम्बर 1908 ई.
110.	पुनर्जन्म	-	नवम्बर 1908 ई.
111.	जलरूपी वायु	सरय् नारायण त्रिपाठी	जनवरी 1910 ई.
112.	मानव रहस्य	महेन्दुलाल गर्ग	जनवरी 1910 ई.
113.	पुच्छल तारा	सरयू नारायण त्रिपाठी	मार्च 1910 ई.
114.	एटम	सरयू नाराण त्रिपाठी	अप्रैल 1910 ई.
115.	पक्षी और कृषि	भोला दत्त पाण्डेय	मई 1910 ई.

116.	भोजन की रसायन	महेश चरण सिंह	मई 1910 ई.
117.	खाद और उसका व्यवहार	मोहब्बत सिंह दोनवार	जुलाई 1910 ई.
118.	बिजली	महेश चरण सिंह	अगस्त 1910 ई.
119.	ऑक्सीजन	सरयू नारायण त्रिपाठी	सितम्बर 1910
120.	श्रीयुत भोला दत्त पाण्डेय सत्यदेव	-	अक्टूबर 1910 ई.
121.	दूध से बीमारियाँ	रामनारायण शर्मा	नवम्बर 1910 ई.
122.	जीवधारियों की बनावट	काशी दत्त पाण्डेय	नवम्बर 1910 ई.
123.	मलेरिया के मच्छड़	लल्ली प्रसाद पाण्डेय	फरवरी 1911 ई.
124.	उषा	गिरजा प्रसाद द्विवेदी	मार्च 1911 ई.
125.	गर्मी	गिरधर शर्मा	मार्च 1911 ई.
126.	लिखने के साधन	पाण्डुरंग खानखोजे	अप्रैल 1911 ई.
127.	रक्त विज्ञान	-	अप्रैल 1911 ई.
128.	जल का घनत्व	कृष्ण चन्द गुप्त	मई 1911 ई.
129.	शिशु पोषण	रामनारायण शर्मा	मई 1911 ई.
130.	शाक भोजन और मांस भक्षण	केशव देव	मई 1911 ई.
131.	उल्कापात	उदयनारायण वाजपेयी	जुलाई 1911 ई.
132.	सौर जगत	रघुवर प्रसाद द्विवेदी	सितम्बर 1911 ई.
133.	भूकम्प के लाभ	उमराव सिंह गुप्त	नवम्बर 1911 ई.
134.	पदार्थ विज्ञान का अभ्युदय	अनुवादक बालकृष्ण शर्मा	जनवरी 1912 ई.
135.	ज्योर्तिविद्या	रामावतार शर्मा	जनवरी 1912 ई.
136.	डार्विन का सिद्धान्त	गिरिजादत्त वाजपेयी जनवरी 1912 ई.	

137.	क्या पुनर्जन्म संभव है?	रामनारायण शर्मा	जनवरी 1912 ई.
138.	मारकोनी का माहातम्य	जगन्नाथ खन्ना	फरवीर 1912 ई.
139.	जर्मनी में सुनारी का काम	गुरुदयाल सिंह	फरवरी 1912 ई.
140.	व्योम यानों से गोलों वर्षा	-	फरवरी 1912 ई.
141.	विश्व विज्ञान	भगवान दत्त रूपलाल	अप्रैल 1912 ई.
142.	जनसंख्या की निस्सीम वृद्धि से हानियाँ और उनसे बचने के उपाय	जनार्दन भट्ट	मई 1912 ई.
143.	मनुष्य क्या चीज है	रामनारायण	जून 1912 ई.
144.	भूगर्भ विद्या	रामावतार शर्मा	जनवरी 1913ई.
145.	सर आइजक न्यूटन सरयू	नारायण त्रिपाठी	फरवरी 1913 ई.
146.	प्रकृति के अद्भुत रहस्य	रामनारायण शर्मा	फरवरी 1913 ई.
147.	पशुओं में बोलने की शक्ति	-	मार्च 1913 ई.
148.	वनस्पति शास्त्र	नारायण प्रसाद अरोड़ा	अप्रैल 1913 ई.
149.	पनामा की नहर	बद्री नाथ	मई 1913 ई.
150.	परमाणुवाद	गोपाल स्वरूप भार्गव	जुलाई 1913 ई.
151.	सांप काटे का इलाज	रामनारायण शर्मा	जुलाई 1913 ई.
152.	भाष्कराचार्य	अगस्त गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	1913 ई.
153.	कपास मन्नन द्विवेदी गाजीपुरी	-	नवम्बर 1913 ई.
154.	वनस्पति विचार	नन्द किशोर	नवम्बर 1913 ई.
155.	भावी हवाई युद्ध आदित्य नारायण सिंह शर्मा	नवम्बर 1913 ई.	

156.	जगत में विज्ञान का विकास	रामावतार शर्मा	जनवरी 1914 ई.
157.	क्षय रोग का कारण Draft और उसका इलाज	बाल कृष्ण शर्मा	मार्च 1914 ई.
158.	मांस खाने वाले पोधे	कर्म नारायण	अप्रैल 1914 ई.
159.	उद्योग धन्धे की शिक्षा की जरूरत	विष्णुदास कोछड़	मई 1914 ई.
160.	स्तनपायी पशुओं में मनुष्यकी सर्वश्रेष्ठता	रामनारायण शर्मा	मई 1914ई.
161. एक्स किरण	विनायक गणेश साठे	जून 1914 ई.	
162.	बेतार की तारबी	जगन्नाथ खन्ना	जून 1914 ई.
163.	अमेरिका में कृषि विषयक प्रयोगालय	पाण्डरंग खानखोजे	जुलाई 1914 ई.
164.	इन्द्रधनुष	गोमती प्रसाद अग्निहोत्री	जुलाई 1914 ई.
165.	खुजली	मैथली शरण गुप्त	जुलाई 1914 ई.
166.	कोयला	दुर्गा प्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेवरिया	जुलाई 1914 ई.
167.	आधुनिक तोपे	-	अक्टूबर 1914 ई.
168.	हाइड्रोजन के चमत्कार	रामदास गौड़	नवम्बर 1914 ई.
169.	वृक्षों में जी	प्रो. बालकृष्ण	दिसम्बर 1914 ई
170.	हमारे किसान और खेती की कलें	वीरसेन सिंह	दिसम्बर 1914ई.
171.	पदार्थ ओर शक्ति	पं. चद्रशेखर वाजपेयी	दिसम्बर 1914 ई

172.	जलांतक रोग	नन्द किशोर	फरवरी 1915 ई.
173.	प्रकाशतत्व	-	फरवरी 1915 ई.
174.	कुछ आधुनिक आविष्कार	संपादक	मार्च 1915 ई.
175.	वायुयान	उमराव सिंह विद्यार्थी	मार्च 1915 ई.
176.	प्रकाश का वेग	निलाल स्वामी	अप्रैल 1915 ई.
177.	भास्कराचार्य और लालावती	अम्बिका प्रसाद पाण्डेय	अप्रैल 1915 ई.
178.	क्रम विकास	द्वारिकानाथ मिश्र	मई 1915 ई.
179.	वायु	दुर्गा प्रसाद सिंह श्रीवास्तव	जून 1915 ई.
180.	समुद्र के भीतर तार डालना	संपादक	जून 1915 ई.
181.	मक्खियों से हानि पद्मनाथ	पाण्डेय जून	1915 ई.
182.	खेती की बुरी दशा	संपादक	जून 1915 ई.
183.	उद्योग धन्धे की शिक्षा	कृष्णानन्द जोशी	जुलाई 1915 ई.
184.	भारतीय किसानों के उद्धार के उपाय	ईश्वर दास मारवाड़ी	अगस्त 1915 ई.
185.	सवितृ मण्डल	जयवन्तराम	सितम्बर 1915 ई.
156.	भारतीय किसान	कृष्णानन्द जोशी	सितम्बर 1915 ई.
187.	आकाश गंगा	श्रीलाल शालग्राम पंडया	अक्टूबर 1915 ई
188.	भोजन	हीरा बल्लभ जोशी	नवम्बर 1915 ई.
189.	कृत्रिम नेत्र	दयाशंकर झा	नवम्बर 1915 ई.
190.	सोने के गुण	गंगा शंकर पंचौली	दिसम्बर 1915 ई.
191.	हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय	लाला कन्नोमल मीमांसा	जनवरी 1916 ई.
192.	विज्ञान की महत्ता	संपादक	मार्च 1916 ई.
193.	शरीर की उष्णता	चन्दमौलि शुक्ल	अप्रैल 1916 ई.

194.	मृत्यु का नया रूप	संपादक	जून 1916 ई.
195.	वृक्ष की आँखें	-	जुलाई 1916 ई
196.	एयरोप्लेन वाय्यान	जगन्नाथ खन्ना	अगस्त 1916 ई.
197.	बेंजामिन फ्रैंकलिन सिंह वर्मा	-	अगस्त 1916 ई.
198.	पारस पत्थर	-	अगस्त 1916 ई.
199.	सब – मेरीन	जगन्नाथ खन्ना	सितम्बर 1916 ई.
200.	चिउटियां	लज्जा शंकर झा	सितम्बर 1916 ई.
201.	बिना तार का टेलीफोन	शाकान जगन्नाथ खन्ना	अक्टूबर 1916 ई.
202.	नक्षत्रों के भैतिक परिवर्तन	विष्णु नारायण सेन	नवम्बर 1916 ई
203.	डेनमार्क के किसानों की सहकारिता और उनका सम्मिलित व्यापार	चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	दिसम्बर 1916 ई.
204	सामुद्रिक माइन अर्थात् सुरंग	निरंजन दास धीर	दिसम्बर 1916 ई.
205.	पशु पक्षियों की स्मरण शक्ति पं.	बनमाली प्रसाद शुक्ल	जनवरी 1917 ई.
206.	बिजली और रसायन के बदौलत धनोपा	जगन्नाथ खन्ना	जनवरी 1917 ई.
207.	चार्ल्स डार्विन	श्याम सुन्दर जोशी'	मार्च 1917 ई.
208.	श्रीयुत् जगन्नाथ खन्ना	सेठ निहाल सिंह	मार्च 1917 ई.
209.	ग्रामो फोन	जगन्नाथ खन्ना	मई 1917 ई.
210.	पृथ्वी की उत्पत्ति	जगन्नाथ खन्ना	मई 1917 ई.
211.	साकची में लोहे का कारखाना	जोखू पाण्डेय	मई 1917 ई.
212.	जीवन क्या है	-	मई 1917 ई.
213.	प्राचीन विषयों का वैज्ञानिक	कौशलेन्द्र प्रताप शाही	मई 1917 ई.

	अनुभव		
214.	किसानों की शिक्षा	माधव राव सप्रे	जून 1917 ई.
215.	प्राणि शास्त्र	जगन्नाथ खन्ना जुलाई	1917 ई.
216.	सूर्य	शारदा प्रसाद	अगस्त 1917 ई.
217.	कपड़ों के कीड़े	श्रीचरण वर्मा	अगस्त 1917 ई.
218.	गणित ज्योतिष शास्त्र	जगन्नाथ खन्ना अगस्त	1917 ई.
219.	केंचुए की राम कहानी	कर्मनारायण	सितम्बर 1917 ई.
220.	वैज्ञानिक तौल और परीक्षा	चन्द्रमौलि शुक्ल	अक्टूबर 1917 ई.
221.	पदार्थ केसे बने?	जगन्नाथ खन्ना	अक्टूबर 1917 ई.
222.	भारत की खाने	ईश्वर दास जालान	नवम्बर 1917 ई.
223.	विज्ञानाचार्य वसु का विज्ञान मंदिर	-	जनवरी 1918 ई.
224.	विज्ञान की उपयोगिता	जगन्नाथ खन्ना	फरवरी 1918 ई.
225.	स्वास्थ्य मंत्र	गोपाल दामोदर तामसकर	मार्च 1918 ई.
226.	भूचाल	जगन्नाथ खन्ना	मई 1918 ई.
227.	मनुष्येतर प्राणियों की लीला	-	जून 1918 ई.
228.	विज्ञान का अध्ययन	दिनेश प्रसादवर्मा और नन्द कुमार सिंह	जून 1918 ई.
229.	पत्थर और लकड़ी के कीड़े	श्रीचरण वर्मा	जुलाई 1918 ई.
230.	मक्खन	अनुवादक गुलजारी लाल चतुर्वेदी	अगस्त 1918 ई.
231.	सफलता रहस्य	एल.सी. वर्मन	सितम्बर 1918 ई.
232.	मिट्टी का तेल	हरनारायण वाथम	दिसम्बर 1918 ई.

233.	जीव क्या वस्तु है?		- दिसम्बर 1918 ई.
234.	विस्फोटक शीतला रोग	प्रसादी लाल झा	जनवरी 1919 ई.
235.	मक्खियाँ	लज्जा शंकर झा	दिसम्बर 1918 ई.
236.	गणित से लाभ	गोपाल दास झालानी	मई 1919 ई.
237.	पृथ्वी और उसके खनिज पदार्थ	कृष्ण कुमार माथुर	जून 1919 ई.
238.	राशिचक्र	'कन्नोमल	मई 1919 ई.
239.	क्षय रोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा	सं. निहाल सिंह	दिसम्बर 1919 ई.
240.	प्लेटो	वृजमोहन वर्मा नवम्बर	1919 ई.
241.	सांपों का स्वभाव	दबीलदास सामन्त	नवम्बर 1919 ई.
242.	रेल में बिजली	जगन्नाथ खन्ना	नवम्बर 1919 ई.
243.	महाकर्षण	-	अक्टूबर 1919 ई.
244.	विषधर प्राणी	वनमाली प्रसाद शुक्ल	अक्टूबर 1919 ई.
245.	पत्थर का कोयला	रामवृक्ष पाल सिंह संघी	जनवरी 1920 ई.
246.	बिजली क्या है?	जगन्नाथ खन्ना	फरवरी 1920 ई.
247.	खेतों का संघटन और एकीकरण	चम्पाराम मिश्र	मार्च 1920 ई
248.	अनाज की कमी कैसे दूर हो ?	दयाशंकर दुबे	अप्रैल 1920 ई.
249.	शक्ति उत्पन्न करने वाली बिजली	जगन्नाथ खन्ना	अप्रैल 1920 ई.
250.	पृथ्वी का पुत्र	वनमाली शुक्ल	जून 1920 ई.
251.	संस्कृत भाषा में रेखागणित	केदार नाथ	अगस्त 1920 ई.
252.	परमाणु की शक्ति	-	अगस्त 1920 ई.

253.	वायुमापक यन्त्र	अम्बिका प्रसाद पाण्डेय	अप्रैल 1920 ई.
254.	बिजी की ट्राम और रेलगाड़ी	जगन्नाथ खन्ना	अक्टूबर 1920 ई.
255.	जीवन और जीवनी शक्ति	रघुवर दयाल गुप्त	अक्टूबर 1920 ई.
256.	लुई पाश्चुर	संपादक	दिसम्बर 1920 ई.
257.	विषधर सर्प	संपादक	नवम्बर 1920 ई.
258.	हेनरी फेवर	वनमाली प्रसाद शुक्ल	नवम्बर 1920 ई.
259.	पृथ्वी की दैनिक गति और समय संबंधी चमत्कार	गोपाल दामोदर तामसकर	दिसम्बर 1920 ई.
260.	मकड़ी	वनमाली प्रसाद शुक्ल	दिसम्बर 1920 ई.
261.	भंग	कृष्ण राम झा	नवम्बर 1920 ई.
262.	विमानों का भविष्य	बालकृष्ण	सितम्बर 1920 ई.
263.	प्रो. त्रिभुवन दास गज्जर	विनायक मेहता	नवम्बर 1920 ई.
264.	मेघदूत में विज्ञान	रामदहिन मिश्र	अगस्त 1920 ई.

परिशिष्ट-तीन

द्विवेदी युग विज्ञान-विषयक पुस्तकों की सूची

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौदयोगिकी संचार परिषद, नई दिल्ली

(National Council for Science & Techonology Communication, New Delhi, NCSTC) द्वारा कराये गये सर्वेक्षण में उधृत पुस्तकों की सूची।

ये पुस्तकें देश के विभिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं, उनका भी एक सन्दर्भ इस सूची के साथ संलग्न है।

इस सर्वेक्षण में वैसे तो दो हजार से अधिक पुस्तकों का जिक्र है लेकिन मेरे विषय की समयावधि (1900ई.-1920ई.) को ध्यान में रखते हुए मैंने यह सूची बनाई है जिसमें कुल 69 पुस्तकों का ज़िक्र हो सका है।

क्र.सं.	**पुस्तक का नाम**	**लेखक का नाम तथा प्रकाशन स्थल**	**प्रकाशन वर्ष (सन् ई.)**	**पुस्तकालय जहाँ पुस्तकें सुरक्षित हैं**
1.	ज्योर्तिविनोद	सम्पूर्णानन्द, लक्ष्मी-नारायण प्रेस काशी	1917	नेशनल लाईबेरी, कोलकाता
2.	सूर्य सिद्धान्त	अनुवादक पं. इन्द्र नारायण द्विवेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,इलाहाबाद	1918	प्रयाग लाईब्रेरी
3.	गणित प्रकाश	पं. श्रीलाल मेडिकल हाल, प्रेस बनारस	1860	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, लाईब्रेरी, इलाहाबाद
4.	पिण्ड चन्द्रिका	पं. वंशीधर गौरमेण्ट प्रेस इलाहाबाद	1868	कार्माइकेल लाईब्रेरी, ज्ञानवापी,वाराणसी
5.	बीजगणित	बापू देवशास्त्री परांजपे श्री गणपति कृष्ण जी,बाम्बे	1850	नेशनल लाइब्रेरी कोलकाता
6.	मेंसुरेशन	मुंशी रतन लाल	1880	डॉ०. शिवगोपाल मिश्र, व्यक्तिगत लाईब्रेरी, इलाहाबाद
7.	सरल त्रिकोणमिति की उपक्रमणिका	लक्ष्मी शंकर मिश्र बनारस मेडिकल हाल प्रेस,	1873	डॉ० शिवगोपाल मिश्र, लाईब्रेरी

		वाराणसी		
8.	हिन्दी बीजगणित	पं. मोहन लाल, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ	1865	नेशनल लाईब्रेरी कोलकाता
9.	भूकम्प	रामचन्द्र वर्मा, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ	1918	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी, इलाहाबाद
10.	पदार्थ विद्यासार	सदासुख लाल अनुवादक : विजय शंकर (उर्दू से) मुंशी नवल किशोर अवध	1865	नेशनल लाईब्रेरी कोलकाता
11.	वायु-विज्ञान	राजा राम सिंह इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद	1908	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, इलाहाबाद
12.	हिन्दी कमेस्ट्री	प्रो. लक्ष्मी चंद विज्ञान हुनर कार्यालय,बनारस सिटी	1917	माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
13.	खाद और उनका व्यवहार	ज्ञानदत्त त्रिपाठी राधारमण त्रिपाठी, जवाहिरी मोहल्ला, इलाहाबाद	1913	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
14.	वृष्टि प्रबोध	पं. मिठाई लाल, व्यास अलभ्य प्राचीन ग्रन्थ साहित्य, राजपूताना	1913	हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
15.	जन्तु-प्रबन्ध व प्राणि-व्यवहार	प. गंगा प्रसाद मिश्रा खड़ग विलास, प्रेस बांकीपुर, पटना	1911	हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
16.	पशुपालन	राय बहादुर लाला बैजनाथ मैनेजर दपहर वैश्य हितकारी, मेरठ	1913	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
17.	कपास और भारतवर्ष	प्रो. तेज शंकर विज्ञान परिषद प्रयाग इलाहाबाद	1920	हिंदी सा. सम्मेलन परिषद् इलाहाबाद
18.	कपास और खेती	अनुवादक राम प्रसाद भिसिलसा स्टेट ग्वालियर, के सूबा-जिला मजिस्ट्रेट	1918	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी, इलाहाबाद
19.	मक्का की खेती	राम प्रसाद	1918	-
20.	मूंगफली की खेती	-	1918	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, इलाहाबाद
21.	कृषि कौमुदी	दुर्गाप्रसाद सिंह काशी	1919	कार्माइकेल लाईब्रेरी

		नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी		ज्ञानवापी, वाराणसी
22.	कृषि विद्या	अश्विनी कुमार शुक्ल	1918	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी, इलाहाबाद
23.	कृषि सुधार	कुँवर हनुमन्त सिंह रंधुवंशी, आगरा	1916	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, लाईब्रेरी इलाहाबाद
24.	वैज्ञानिक खेती	हेमन्त कुमारी देवी अन्नदा प्रसाद भट्टाचार्य, लखनऊ	1914	-
25.	उत्तम संतति	प्रवासी लाल वर्मा वाणी विहार वाराणसी	1911	-
26.	उत्तम संतति	वैदय जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी, अहमदाबाद	1915	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
27.	नारी स्वास्थ्य रक्षक	शालिग्राम, पं. सुदर्शन आचार्य, गृह लक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग	1920	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी इलाहाबाद
28.	बाल स्वास्थ्य रक्षा	पं. रामजी लाल शर्मा इंण्डियन प्रेस, प्रयाग	1910	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन लाईब्रेरी इलाहाबाद
29.	मानव संतति शास्त्र	मुंशी हीरा लाल (जालोरी) खड्ग विलास प्रेस,बांकीपुर पटना	1913	-
30.	क्षय रोग	डॉ० एस. एडोल्फ नाफ़ अनुवादक :बालकृष्ण शर्मा इण्डियन प्रेस, प्रयाग	1913	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
31.	चिकित्सा सोपान	बी. के. मित्रा, इण्डियन इक्लिक्टिक फार्मेसी, दिल्ली	1919	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
32.	छूत वाले रोग, और उनसे बचने के उपाय	मिसेज़ जगरानी देवी, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	1909	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
33.	नपुंसक चिकित्सा	पं. कन्हैयालाल मिश्र अनुवादक : रामचन्द्र राघव	1914	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
34.	प्राकृत ज्वर	राधा बल्लभ, वैद्य	1911	-

		जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला, प्रयाग		
35.	भारत में प्लेग	हनुमान शर्मा, वैद्य जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला प्रयाग	1911	-
36.	औषधि संग्रह कल्पावली	राधा कृष्ण महाराज नवल किशोर प्रेस,लखनऊ	1875	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
37.	वृहद् बूटी प्रचार	कृष्ण लाल बाबू किशन लाला प्रेस, मथुरा	1917	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
38.	मैं नीरोग हूँ या रोगी	लुई कूने हिंदी पुस्तक ऐजेन्सी हैरिसन रोड कोलकाता	1920	-
39.	रसेन्द्र चिन्तामणि	धुन्धक नाथ जीअनुवादक बलदेव प्रसाद मिश्र, खेतबाडी सातवां गली खमभात लेन, मुम्बई	1901	विज्ञान परिषद् प्रयाग, लाईब्रेरी, इलाहाबाद
40.	वृक्ष विज्ञान	प्रो. राधाकृष्ण पाराशर मेडिकल पुस्तक भवन, अशोक भवन,बनारस	1895	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन
41.	शरीर और शरीर रक्षा	चन्द्रमौलि शुक्ल अपूर्व कृष्ण बोस, इंडियन प्रेस,इलाहाबाद	1914	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन लाईब्रेरी इलाहाबाद
42.	संजीवनी बूटी	सत्यदेव परिव्राजक	1917	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
43.	आरोग्य शिक्षा	पं. मुरलीधर शर्मा, खेमराज श्रीकृष्णदास बॉम्बे	1908	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन लाईब्रेरी इलाहाबाद
44.	सरल शिक्षा	पं. तारिणी प्रसाद मिश्र, द कॉरपोरेशन बुक डिपो, भागलपुर	1913	-
45.	विज्ञान कल्पतरु अर्थात् वैज्ञानिक विश्वकोश	मुख्तयार सिंह जनरलपब्लिशिंग कम्पनी मेरठ	1914	-
46.	हिंदी वैज्ञानिक कोश	श्याम सुन्दर दास नागरी	1906	-

		प्रचारिणी सभा वाराणसी		
47.	औद्यागिकी	पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रीय हिंदी मंदिर, जबलपुर	1920	हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद
48.	कालबोध	शिवकुमारसिंह काशी नागरी प्रचारिणी सभा बनारस	1916	हिन्दुस्तानी एकेडमी
49.	गुरु देव के साथ यात्रा-1	बसीश्वर सेन अनुवादक : महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, विज्ञान कार्यालय,	1917	विज्ञान परिषद् प्रयाग, लाईब्रेरी, इलाहाबाद
50.	जेनेटॉलॉजी	जॉन बॉबी डॉड्स अनुवादक : नाथ खत्री आर्य काशी दर्पण प्रेस,शाहजहाँपुर	1884	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
51.	डोमेस्टिक हाईजीन	डॉ० कालीचरण दूबे, पं.आत्माराम शर्मा, काशी	1916	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
52.	तम्बाकू विष है	रामेश्वर प्रसाद शर्मा	1916	सचित्र नवजीवन लाईब्रेरी, कानपुर
53.	पदार्थ विज्ञान विटप	पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र, मेडिकल हाल प्रेस,बनारस	1875	कार्माइकेल ज्ञानवापी, वाराणसी
54.	रसायन इतिहास	आत्माराम	1918	विज्ञान परिषद इलाहाबाद
55.	वायु चक्रविज्ञान	पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र मेडिकल हाल प्रेसबनारस	1874	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
56.	वायु सागर अर्थात् वायु की उत्पत्ति	कॉलिन एस.वैलेन्टाइन, देहाती राम प्रेस, आगरा	1867	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
57.	विज्ञान और आविष्कार	सुख सम्पत्ति रायभण्डारी, श्री मध्य हिंदी साहित्यसमिति इन्दौर	1919	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी इलाहाबाद
58.	विज्ञान प्रवेशिका	रामदास गौड़ औरशलिग्राम भार्गव विज्ञान परिषद, प्रयाग	1914	‘’
59.	विज्ञान गोवर्धन	गोवर्धन यत्रालय गुरुकुल	1910	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन

	(भौतिकी)	कांगड़ी		इलाहाबाद
60.	विश्व प्रपञ्च-1	अनुवादक:रामचन्द्र शुक्लकाशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	1920	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
61.	वैज्ञानिक अद्वैतवाद	रामदास गौड़, ज्ञानमण्डल कार्यालय,काशी	1920	हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद
62.	व्यावहारिक विज्ञान	कृष्ण गोपाल माथुर राजपूताना हिंदी साहित्य सभा	1920	‘’
63.	डाक बिजली का प्रकरण	बलदेव वक्ष, गौरमेन्टप्रेस, इलाहाबाद	1860	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
64.	तेल की पुस्तक	प्रो. लक्ष्मी चन्द्र, विज्ञान हुनर, माला कार्यालय, शकरकन्द गली, बनारस सिटी	1920	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी तथा हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद
65.	रंग की पुस्तक	प्रो. लक्ष्मी चन्द्रदेवी प्रसाद अग्रवाल	1919	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
66.	रोशनाई बनाने की पुस्तक	प्रो. लक्ष्मी चन्द्र, विज्ञानहुनरमाला कार्यालय बनारस सिटी	1915, 1916,1915	हिन्दुस्तानी अकेडमी लाईब्रेरी एकेडमी इलाहाबाद
67.	वार्निश और पेण्ट	‘’	1917	सेन्ट्रल स्टेट लाईब्रेरी, नॉर्थ मलाका इलाहाबाद
68.	फोटोग्राफी शिक्षा	पं. क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक सुख संचारक कम्पनी, मथुरा	1920	हिन्दुस्तानी सम्मेलन इलाहाबाद,
69.	पदार्थ विद्या	भूदेव मुखोपाध्याय बांकीपुर, पटना	1882	‘’’

परिशिष्ट-चार

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्राप्त आर्य भाषा पुस्तकालय की विज्ञानादि विषयक पुस्तकों की संक्षिप्त सूची

आर्य भाषा पुस्तकालय की पुस्तक सूची से उद्धृत पुस्तकें इसविस्तृत सूची में पुस्तकों के प्रकाशन की कालावधि का सम्बन्ध अधिकांशतः द्विवेदी युग से है किन्तु बहुत सी पुस्तकें इस सूची में ऐसी भी देखने को मिल जाएंगी जिनका प्रकाशन वर्ष या तो 1900 ई. से पहले का है या 1920 ई. के बाद का है। ये सूचियाँ केवल नमूने के तौर पर दी जा रही हैं। मूल सूची में इससे भी अधिक विषयों पर अनेकानेक पुस्तकों की जानकारी मिल सकती है।

मनोविज्ञान पर पुस्तकें

क्र.सं.	**लेखक का नाम**	**पुस्तक का नाम**	**प्रकाशक**	**प्रकाशन वर्ष**
1.	कुन्दनलाल गुप्त	सरल मनोविज्ञान	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई	1921 ई.
2.	एलेन लिली अनुवादक केदारनाथशर्मा	मन की अद्भुतशक्ति	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	1926 ई.
3.	चम्पत राय कान्ता प्रसाद जैन	मनोविज्ञान	आत्मिक साहित्य मण्डल दिल्ली	1932 ई.
4.	चन्द्रमौलि शुकुल	मनोविज्ञान	गंगा ग्रन्थागार लखनऊ	1981वि.
5.	लालजी राम शुक्ल	बाल मनोविज्ञान	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	1996वि.

विज्ञान निबन्ध और आलोचना पर पुस्तकें

क्र.सं.	**लेखक का नाम**	**पुस्तक का नाम**	**प्रकाशक**	**प्रकाशन वर्ष**
1.	रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी	प्रकृत्ति	इंडियन प्रेस, प्रा.लि.प्रयाग	1911 ई.
2.	जगदानन्द राय	प्राकृतिकी	-	1925 ई.
3.	सुखसम्पति राय भंडारी	विज्ञान और आविस्कार	मध्य भारत हिन्दीसाहित्य समिति इन्दौर	1976 ई.

4.	मैत्र, द्वारिका नाथ	विज्ञान शिक्षा और हिन्दी में उसकी आवश्यकता	नागरी प्रचारिणीसभा, कलकत्ता	1972वि

मिस्मरिज्म और आत्म विद्या पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	इन्द्रदत्त शर्मा	कनिष्ठ योग पूर्ववार्द्ध	ग्रन्थकार जबलपुर	1940 ई.
2.	लक्ष्मी नारायण क्षत्रिय	प्लानचिट गीतावली	ग्रन्थकर्ता त्रिलोचनघाट काशी	1908 ई.
3.	जगतनारायण	परलोक की कहानियाँ	डायमंडजुबली थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस	1938 ई.
4.	सरकार, पीसी	जागती कला	जैन प्रेस, लखनऊ	1986 ई.

कृषि शास्त्र पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	गंगा प्रसाद पाण्डेय	कृषि मित्र	सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ एग्रीकल्चर कृषि विभाग कानपुर	1922 ई.
2.	कोचक, टी. एस.	फॉर्मे बुक कीपिंग	शास्त्री आफिस, बलिपुरा, बुलन्दशहार	1923 ई.

इंजिनियरिंग पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	निहालचन्द ग़ौड़	सिविल इंजिनियरिंग	ग्रन्थकार विक्टोरिया 2.कॉलेज, लश्कर,ग्वालियर	1912ई.
2.	राय नवीनचन्द	निर्माण विद्या भाग-1 निर्माण विद्या भाग-2	पंजाब यूनिवर्सिटी कॉलेज लाहौर	1882 ई.

पशु चिकित्सा पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	जयपाल सिंहजुदेव	गोधन वर्धिनी	डायमंड जुबली प्रेस, बुन्देलखण्ड	1899ई.
2.	मैकूलाल शर्मा	पशु चिकित्सा दूसरा संस्करण	एम.एल. शर्मा,शाहाबाद, हरदोई	1916 ई.
3.	रामनारायण पण्डित	पशुओं के महाघातक रोगों कीगुटिका	ग्रन्थ कारबेरली कॉलेज	1873 ई.

सूची आचारशास्त्र (ब्रह्मचर्य)

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	केशव शास्त्री गांधी, महात्मा अनु. मृत्युंजय प्रसाद	अमर जीवन अनीतिकी राह पर	सैनिटोरियम, देहली सत्तासाहित्य मंडल, दिल्ली	1931 ई.
2.	‘’	ब्रह्मचर्य	‘’	1939 ई.
3.	‘’	ब्रह्मचर्य और आत्म सयंम	एस. एस. मेहता एंड ब्रदर्स काशी	1934 ई.
4.	‘’	ब्रह्ममचर्य के अनुभव	सहित्य मंदिर, दारागंजप्रयाग	1932ई.
5.	‘’	ब्रह्मचर्य पर महात्मा गांधी का अनुभव	तरुण भारत गांधी का अनुभव ग्रन्थावली कार्यालय दारागंज प्रयाग	1989 ई.
6.	गोवर्धन लाल	नीति विज्ञान2 प्रकरण	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकरकार्यालय, बम्बई	1923 ई.
7.	चंद्रशेखर शास्त्री	आत्मनिर्णय	भारती साहित्य मंदिर,	1936ई.
8.	चंद्रशेखर शास्त्री	चरित्र निर्माण	भारती साहित्य मंदिर,	1937 ई.
9.	छविनाथ पांडेय	चरित्र चिंतन	हिंदी पुस्तक एजेंसी हैरिसन रोड कलकत्ता	1981 ई.
10.	जगन्नारायण देव शर्मा	ब्रह्मचर्य विज्ञान	सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल,अजमेर	1920ई.
11.	जाधव दशरथ बलवंत	चरित्र साधन	उपन्यास बहार आफिस काशी	1981 ई.
12.	देवनारायण	ब्रह्मचर्य का महत्त्व	कलकत्ता पुस्तक भंडार	1991 वि

	द्विवेदी		171 ए हैरिसन रोड कलकत्ता	
13.	पंत, दुर्गादत्त	ब्रह्मचर्योपदेश	ऋषिकुल हरिद्वार	1965 ई.
14.	पन्नालाल शर्मा	युवा रक्षक	राजपूत एंग्लो ओरिएंटल प्रेस, आगरा	-
15.	बाबूराम शर्मा	संजीवन बूटी	ग्रंथकार, अहेरीपुर,काशी जिला एटा	1936 वि
16.	भगवानदीन लाला	ब्रह्मचर्य की वैज्ञानिक व्याख्या	सहित्य विद्यालय	-
17.	योगानंद	ब्रह्मचर्य पर महर्षिदयानन्द	आदर्श साहित्य मंडल लखनऊ	-
18.	श्रामनाराण वैद्य शास्त्री	बालोपयोगी वीर्य रहस्य	संतति रहस्य आफिस बगिया मनोराम कानपुर	-
19.	रामप्यारे त्रिपाठी	सदाचार और शिष्टाचार ब्रह्मचर्यशिक्षा	निराकार पुस्तकालय,बनारस	1937 ई.
20.	विश्वेश्वरानंद	ब्रह्मचर्य	ग्रंथकर्ता मुजफ्फरपुर	1903 ई.

कामशास्त्र पर पुस्तकें

1.	अयोध्याप्रसाद भार्गव	संतति शास्त्र	भार्गव बुक डिपो, काशी	1923 ई.
2.	ऋषिलाल अग्रवाल	मनचाही संतान	अग्रवाल प्रेस इलाहाबाद	1928 ई.
3.	एक चिकित्सक	गुप्त चिट्ठी	शिशिरकुमार मित्र, कॉलेजस्ट्रट मार्केट, कलकत्ता	1923 ई.
4.	एस. जी. व्यास	संतति शास्त्र	बंबई भूषण यंत्रालय,मथुरा	1929 ई.
5.	कन्हैयालाल मिश्र	काम रहस्य	ग्रंथकार,इलाहाबाद	1932 ई.

आयुर्वेद पर पुस्तकें

1.	मुरलीधर वर्मा	आयुर्वेद निदानसमीक्षा	ना.प्र.सभा.काशी	-
2.	राधा वल्ल भवैदयक	वेदों में वैदयक ज्ञान	ग्रंथकार विजयगढ़, अलीगढ़	-
3.	सुरेन्द्र कुमार शर्मा	भारत में कुनैन का	सुरेंद्र एंड कंपनी,	1938 ई.

			चिढावा	
4.	जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल	आयुर्वेद का महत्त्व	ग्रंथकार दारागंज प्रयाग	1967 वि
5.	पूनमचंद तनसुख वैद्य	वैद्यक की उन्नति किस प्रकार होगी	ग्रंथकार, ब्यावर	1968 वि.
6.	प्रताप सिंह, कविराज	कविराज प्रताप सिंह का भाषण	अखिल भारतीय 24 वां सम्मेलन, शिकारपुर	1934 वि.
7.	मोहनलाल	आयुर्वेद का महत्त्व	आयुर्वेद महत्त्व बीकानेरी आयुर्वेदिक फार्मेसी देशनोक, बीकानेर	1936 ई.
8.	शांडिल्य त्रिवेदी	आयुर्वेद का महत्त्व	आयुर्वेद प्रचारक, काशी	1933ई.

सूची चिकित्सा शास्त्र

1.	अंबालाल शर्मा	क्षयरोग और उसकी चिकित्सा	नवजीवन फार्मेसी अजमेर	1936 वि.
2.	अकबर अली खां अनुदेवी प्रसाद	तिव्य अकबर	बम्बई भूषण प्रेस,मथुरा	1982 वि.
3.	अग्निवेश	अंजन निदान	वेंकटेश्वर प्रेस मुंबई	1982 वि
4.	‘’	अत्रिदेवी चरक साहित्यखंड	आर्ष साहित्यमंडल अजमेर	1962 वि.
5.	‘’	,, 2 प्र	,,	,,
6.	‘’	,, 2 प्र	,,	,,
7.	‘’	,, 2 प्र	,,	,,
8.	अत्रदेव जी	घर का वैदय	आनंद बुक डिपोसुल्तानपुर	1936 ई.

भूगर्भ शास्त्र पर पुस्तकें

1.	अभयचंद्र जाजू	मणिमोहरा विधानअर्थात रत्नपरीक्षा	ग्रंथकार बी बी हटिया, काशी	
2.	गुरुदास जी	रत्नपरीक्षा 2 प्र	वेंकेटेश्वर प्रेस, मुंबई	1953 वि.
3.	घासी राम जैन	रत्नपरीक्षक	सुदर्शन, मंत्रालय	‘’

			मथुरा	
4.	जोशी शंकरराव	भूकवच	गंगा ग्रंथागार लखनऊ	1987 वि.
5.	रामचन्द्र वर्मा	भूकंप	टट	1985 वि
6.	मनीषी ममर्थदान	रत्नसागर	राजस्थान मंत्रालय अजमेर	1962 वि.

स्त्री तथा बालरोग पर पुस्तकें

1.	अत्रिदेव गुपत	धात्री शिक्षा	गंगा ग्रंथागार,लखनऊ	1989 वि.
2.	अब्दुल हकीम खां अनु.वंशीधर शर्मा	धात्री शिक्षा	कायस्थ एजूकेशनकमेटी अलीगढ़	1905 वि.
3.	आनंद जीवन	शिशुपाल	बालकृष्ण भाटिया, मथुरा	‘’
4.	एन. के. वर्मा	स्त्री स्वास्थ्यरक्षिका	आर.डी. सिन्हा, गंगा प्रसाद, रोडवेज लखनऊ	1920 वि.
5.	ए.वी.वी. आर. शर्मा	युवती रोग ग्रंथकार चिकित्सा	ग्रंथकार तिलहार, जि.शाहजहांपुर	1928 वि.
6.	कमलाकांत	धात्री शिक्षा भाग-1	बिहार बंधु प्रेस, पटना	1878 वि.

बाल साहित्य स्वास्थ्य रक्षा और सफाई पर पुस्तकें

1.	काशीनाथ द्विवेदी	मेरा घर	ग्रंथकार बड़वानी	1941 ई.
2.	केशव कुमार ठाकुर	तंदुरूस्त बालक 2 प्र	आदर्श गंथ माला दारागंज प्रयाग	1932 ई.
3.	छबिनाथ पांडेय आर.एन. बसीकर	सफाई और स्वास्थ्य	बाल साहित्य प्रकाश समिति 171 हरिसन रोड,	1937 ई.
4.	प्रताप नारायण चतुर्वेदी	सूर्य नमस्कार शुद्धिदर्प	भारतवासी प्रेस, दारागंज प्रयाग	
5.	विधिचंद	शुद्धिदर्पण	गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद	1873 ई.
6.	बेनी चरण महेंद्र	शरीर और स्वास्थ्य	गया प्रसाद एवं संस आगरा	1937 ई.

7.	भगवानदीन	स्वास्थ्य विद्या	विद्या प्रचारक बुक डिपो, गया	1916 ई.
8.	मार्सडन, ई.	स्वास्थ्य कथा	मैकमिलन एंड कंपनी,कलकत्ता	
9.	रामजी लाल शर्मा	बाल स्वास्थ्य रक्षा	इंडियन प्रेस, प्रयाग	1913 ई.
10.	शांडिल्य त्रिवेदी	विद्यार्थी कर्तव्य	कृष्ण फार्मेसी, कृष्ण फार्मेसी,	1934ई.
11.	शिवपूजन सहाय	संसार के पहलवान भाग-1	हिन्दी पुस्तक भंडार हलेरिया सराय	1986 वि.

भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें

1.	कल्याण वक्ष माथुर	वायुमंडल	विज्ञान परिषद् प्रयाग	1940 ई.
2.	गोवद्धनजी	भौतिकी	सद्धर्म प्रचारक प्रेस गुरुकुल कांगड़ी	1967 वि.
3.	जयकृष्ण शर्मा	विद्युत प्रकाश		
4.	जोशी, प्रेम बल्लभ, डॉ० गंगानाथ झा	ताप 2 प्र.	विज्ञान परिषद प्रयाग	1978 वि.
5.	निहाल करण सेठी	वैज्ञानिक परिमाण 2 प्र.	’’	1985 वि.
6.	सत्यप्रकाश वंशीधर अनु. मोहनलाल	सिद्ध पदार्थ विज्ञान	सरकारी पुस्तकालय,आगरा	1853 ई.
7.	भीष्मचंद्र शर्मा	बिजली की बैटरियां2 प्र.	बी.सी.शर्मन एंड कंपनी25 लाट्रश रोड, लखनऊ	1933 ई.

प्राणिशास्त्र पर पुस्तकें

1.	महावीर प्रसाद	मधुभक्षिका भाग 1	भारत मित्र प्रेस, 97, मुक्ताराम बाबू स्टेट, कलकत्ता	1903 ई.
2.	बृजेश बहादुर	जन्तु जगत	हिन्दुस्तानी एकेडमी,इलाहाबाद	1930 ई.
3.	श्याम सुन्दरलाल	सीवर जीव मीमांसा	आर्य प्रतिनिधि सभा, अवध	1901 ई.

ज्योतिष पर पुस्तकें

1.	लेखराम शर्मा जगदम्बा प्रसाद	ऐतिहासिक निरीक्षण भाग 2	वैदिक पुस्तक प्रचार फण्ड, मेरठ	1900 ई.
2.	मनराज सिंह	सोलह साल की	खडग विलास प्रेस बांकीपुर पटना	1905 ई.
3.	गंगाधर	जयोतिष कल्पद्रुम	ज्वाला प्रसाद श्यामसुन्दर पुरोहित लखनऊ	1901 ई.

कताई-बुनाई पर पुस्तकें

1.	कन्दर वलवन्त दिवान	तकली	हिन्दुतानी तालिमि संघ वर्धा	1931 ई.
2.	भावे, बिनोवा	मूल उद्योग कातना	’’	1936 ई.

छपाई पर पुस्तकें

1.	दाते, शंकर रामचन्द्र अनुवादक: गोपी बल्लभ उपाध्याय	मुद्रण प्रवेश अर्थात् कम्पोजकला	लोक संग्रह छापाखाना सदाशिव पेट, पूना	1938 ई.
2.	स्वामीदीन	प्रेस की कुंजी दूसरा प्रकरण	यू.पी. आर्ट प्रिटिंग वर्क्सकासगंज	1972 वि.

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. शिवगोपाल मिश्र, "हिन्दी विज्ञान साहित्य का सर्वेक्षण", हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद 2004|

2. डॉ० शिवगोपाल मिश्र, विज्ञान प्रवाह, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2006.

3. डॉ. शिवगोपाल मिश्र, इतस्तत, विज्ञान परिषद् प्रयाग 2015।

4. ऋषभ देव शर्मा - हिंदी में वैज्ञानिक लेखन, 31 अगस्त 20071

5. श्री मनोज श्रीवास्तव, हिन्दी भाषा की शतरंज पर, इंदूर संचार वर्ष 29 अंक 1/2008 पेज 4-5

6. नीरज शर्मा और रजनी ध्यानी, "हिंदी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन, भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका, वर्ष 26 अंक, दिसंबर 2018 पृष्ठ 119-124

7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्य का इतिहास (स्रात -हिन्दी साहित्य का इतिहास-संपा० डॉ० नगेन्द्र, पृ. 47 पैरा 2।

8. डॉ. शिवगोपाल मिश्र और डॉ दिनेश मणि, लोकप्रिय विज्ञान लेखन, विज्ञान परिषद् प्रयाग, संस्करण 1998 ई.

9. डॉ0 सुप्रभात मुखर्जी, सबसे बड़ी चुनौती – वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकास लेख, 21 वि. ले. चु. सं., पृ. 22 पैरा 11

10. डॉ० शिवगोपाल मिश्र और डॉ. विष्णुदत्त शर्मा, स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी विज्ञान लेखन, भाग 1, शोध प्रकाशन अकादमी, 2003

11. सत्येंद्र कुमार सिंह, विजय जी, विकास, विज्ञापन लेखन और पत्रकारिता, नैनी इलाहाबाद, संस्करण 1993।

12. डॉ शिव गोपाल मिश्र, 'हिंदी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' (प्रथम खंड), विज्ञान प्रसार सी 14 कुतुब इंस्टीटूशनल एरिया, नई दिल्ली 1100016, प्रथम संसकरण 2001

13. मनोज कुमार पटैरिया, हिंदी विज्ञान पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000

14. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सैना, भाषा विज्ञान का सिद्धांत और हिंदी भाषा, प्रकाशक आगरा, पृष्ठ 267

15. डॉ. शिवगोपाल मिश्र और डॉ दिनेश मणि, विज्ञान लोकप्रियकरणः प्रारंभिक प्रयास, प्रकाशक विज्ञान प्रसार, 19971

विज्ञान प्रसार सी 14 कुतुब इंस्टीटूशनल एरिया, नई दिल्ली 1100016, प्रथम संसकरण 2001

16. संविधान हिन्दी भाषा और भाषा की राजनीति, संकलित इंदूर संचार पेज 13 अंक 1/20081

17. डॉ. परमानंद पांचाल, विश्व में हिन्दी की स्थिति, राजतरंगिणी अंक 24 पृष्ठ 191

18. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सूर्या प्रकाशन, इन्दौर।

19. श्यामकिशोर वर्मा, "कृषि अनुसंधान में हिन्दी का प्रयोग", लोकप्रिय लेख।

20. डॉ. नागेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका शैली विज्ञान, 1976, पृष्ठ संख्या 18

21. सम्पा० डॉ० शिव गोपाल मिश्र, 21वां सदी में विज्ञान लेखनरू चुनौतिया और संभावनाएं, (राष्ट्रीय संगोष्ठी) प्रकाशक विज्ञान परिषद् प्रयाग वर्ष 2001, पृष्ठ 91

22. विश्व मोहन तिवारी, वैज्ञानिक दृष्टि और उत्कृष्ट समाज, विज्ञान अक्टू० 2001 पृ. 28।

23. डॉ भोलानाथ तिवारी, भाषा चिंतन, स्मृति प्रकाशन महाजनी टोला इलहाबाद संस्करण 1971 ई।

24. हिंदी कोश विज्ञान का उदभव और विकास डॉ० युगेश्वर भारतीय विधा प्रकाशन वाराणसी संस्करण 1971 ई।

25. श्री रविंद्र नाथ ठाकुर अनु० श्री धन्य कुमार जैन, साहित्य धर्म।

26. बृजेश लता, हिंदी में तकनीकी एवं विज्ञान लेखन के बढ़ते कदम, भारतीय कृषि अनुसंधान पत्रिका, 32 (4), 317 - 320, 2017 |

30. डॉ० युगेश्वर, हिंदी कोश विज्ञान का उदभव और विकास, भारतीय विधा

प्रकाशन, वाराणसी संस्करण 1971 ई.

31. बलदा राम साहू, "हिंदी दिवसः हिन्दी में विज्ञान लेखन की समस्याएँ और संभावनाएँ

32. मिश्र शिवगोपाल, "हिन्दी में विज्ञान लेखन कुछ समस्याएँ', इलाहाबाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1986।

33. लाल्टू (2015), "हिंदी में विज्ञान लेखन के समस्या हिंदी राष्ट्रीय सहारा, 12 सेप्ट, 2015.

34. डॉ. प्रेम प्रकाश गौतम, "हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या 417 पैरा 11

35. संजय कुमार, "हिंदी विज्ञान लेखन- समस्याएं एवं संभावनाएं, भारतीय ज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका, 1(1), पृष्ठ संख्या 102-107

36. ब्रजकिशोर कुठियाला, मीडिया व्यग्रता का नहीं, समग्रता का परिचायक होश, साहित्य अमृत, अगस्त 15, पृष्ठ 51

37. शिवगोपाल मित्र, शिवज्ञान पत्रकारिताश् साहित्य अमृत, अगस्त 15, पृष्ठ 76।

38 एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक बाल साहित्यकार सीमूर साइमन का कथन।

सन्दर्भ सूची

सहायक-पस्तकें (संदर्भ ग्रन्थों की सची कालक्रमानसार व्यवस्थित है)

1. सर ऑलिवर लॉज

ए क्रिटिसिज़म ऑफ प्रो. हैकल्स "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" विलियम्स

एण्ड नॉरगेट प्रकाशन, लंदन 1907 ई.

2. ई. एच. हैकल

'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स ' (अंग्रेजी अनुवाद - जोसेफ मैक्केब) वॉटस

एण्ड कम्पनी, लन्दन 1911 ई.

3. रामचन्द्र शुक्ल

विश्व प्रपञ्च

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1962 ई.

4. रामविलास शर्मा

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, 1966 ई.

5. श्री नारायसुर्वेचीतुर्वेदी

आधुनिक हिंदी का अदिकाल

हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1973 ई.

6. रामविलास शर्मा

भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकासपरम्परा

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1975 ई.

7. रामविलास शर्मा

महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण

राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली 1977 ई.

8. सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक) बालकृष्ण भट्ट-प्रतिनिधि संकलन

नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) इण्डिया 1995 ई.

9. भारत यायावर (संकलन/संपादन)

महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली

किताब घर, नई दिल्ली, 1995 ई.

10. द वर्डसवर्थ इन्साइक्लोपीडिया

वर्ड्सवर्थ रिफ्रेन्स खण्ड 3

हेलिकन पब्लिशिंग लि. हर्टफोर्डशायर, इंग्लैंड, 1995 ई.

11. कमला प्रसाद (संपादन)

भारतेंदु हरिश्चंद्र: प्रतिनिधि संकलन

नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) इण्डिया 1996 ई.

12. रामचंद्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य का इतिहास

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत् 2054 वि. (1977 ई.)

13. रामविलास शर्मा

भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्यायें

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, 1999 ई.

14. डॉ० धीरेन्द्र नाथ सिंह

आधुनिक हिंदी के विकास में खड्ग विलास प्रेस की भूमिका

बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद, पटना, 2000 ई.

15. डॉ. मनोज कुमार पटौरिया

हिंदी विज्ञान पत्रकारिता,

तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली 2000 ई.

16. रामविलास शर्मा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना

राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, 2000 ई.

17. दीपक कुमार

साइन्स एण्ड द राज (1857-1905)

ऑक्सफोर्ड यूनिवसिटी प्रेस, 2000 ई.

18. घटक एवं लोकनाथन

क्वान्टम मैकेनिक्स: थियरी एण्ड एप्लीकेशन्स

मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, 2001 ई

19. कुसुम चतुर्वेदी व ओऽम् प्रकाश सिंह (संपादन)

चिन्तामणि - 4 (रामचन्द्र शुक्ल के संकलित निबन्ध)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, दुर्गाकुण्ड वाराणसी, 2002 ई.

20. एम.पी. कौशिक

माडर्न बॉटनी

प्रकाश पब्लिकेशन्स मेरठ, 2002 ई.

21. बर्टेन्ड रसेल

द इम्पैक्ट ऑफ साइन्स ऑन सोसाइटी

रूटलेज प्रकाशन (टेलर व फ्रांसिस ग्रुप) लंदन/ न्यूयार्क, 2003 ई.

22. ज्ञानचंद जैन

श्चन्द्र: एक व्यक्तित्व चित्र

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004 ई.

23. वीर भारत तलवार (संपादन)

राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद': प्रतिनिधि संकलन

नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) इण्डिया 2004 ई.

पत्र-पत्रिकाएं (सन्दर्भित पत्र-पत्रिकाओं की सूची कालक्रमानुसार व्यवस्थित की गई है

1. सरस्वती' (1901से 1920) तक के सभी अंक

(संपादक: पहले श्यामसुन्दर दास फिर महावीर प्रसाद द्विवेद)

इण्डियन प्रेस प्रा. लि. इलाहाबाद

2. 'विज्ञान' की फाइलें विज्ञान परिषद्, प्रयाग

3. आर्यभाषा पुस्तकालय, पुस्तक सूची : प्रथम खण्ड

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2001 (1944 ई.)

4. संधान: अंक 2, 3, तथा 4 (जुलाई-सितम्बर 2001 से जन-मार्च 02)

सम्पादक: लालबहादुर वर्मा एवं सुभाष गाताड़े, इलाहाबाद

5. इमरजेन्स ऑफ मॉडर्न साइन्स एफ. एस.टी.- 1 इग्नू, जुलाई 2002 ई.

6. समयांतर: सम्पादक: पंकज बिष्ट, दिल्ली, फरवरी 2004 ई. (वैज्ञानिक चेतना और हमारा समाज)

7. नया मानदण्ड: जनवरी-मार्च 2004 ई. प्र. सम्पादक कुसुम चतुर्वेदी आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध-संस्थान, वाराणसी